हिन्दी की बोलियाँ

(Hindi Dialects)

जय राम

हिन्दी की बोलियाँ

हिन्दी की बोलियाँ
(Hindi Dialects)

जय राम

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5497-0

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

जिस क्षेत्र का आदमी जहाँ रहता है, उस क्षेत्र की अपनी एक बोली होती है। वहाँ रहने वाला व्यक्ति, अपनी बात दूसरे व्यक्ति को उसी बोली में बोलकर कहता है तथा उसी में सुनता है। जैसे-शेखावाटी (झुन्झुनू, चुरू व सीकर) के निवासी 'शेखावाटी' बोली में कहते हैं एवं सुनते हैं। इसी प्रकार कोटा और बूँदी क्षेत्र के निवासी 'हाड़ौती' मेंय अलवर क्षेत्र के निवासी 'मेवाती' मेंय जयपुर क्षेत्र के निवासी 'ढूँढ़ाड़ी' मेंय मेवाड़ के निवासी 'मेवाड़ी' में तथा जोधपुर, बीकानेर और नागौर क्षेत्रों के निवासी 'मारवाड़ी' में अपनी बात दूसरे व्यक्ति को बोलकर कहते हैं तथा दूसरे व्यक्ति की बात सुनकर समझते हैं।

अत: भाषा का वह रूप जो एक सीमित क्षेत्र मेँ बोला जाए, उसे बोली कहते हैं। कई बोलियों तथा उनकी समान बातों से मिलकर भाषा बनती है। बोली व भाषा का बहुत गहरा संबंध है। भाषा का क्षेत्रीय रूप बोली कहलाता है। अर्थात् देश के विभिन्न भागों में बोली जाने वाली भाषा बोली कहलाती है और किसी भी क्षेत्रीय बोली का लिखित रूप में स्थिर साहित्य वहाँ की भाषा कहलाता है।

भारत की राजभाषा हिन्दी दुनिया में दूसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। बहु भाषी भारत के हिन्दी भाषी राज्यों की आबादी 46 करोड़ से अधिक है। 2011 की जनगणना के मुताबिक भारत की 1.2 अरब आबादी में से 41. 03 फीसदी की मातृभाषा हिंदी है। हिन्दी को दूसरी भाषा के तौर पर इस्तेमाल करने वाले अन्य भारतीयों को मिला लिया जाए तो देश के लगभग 75 प्रतिशत

लोग हिन्दी बोल सकते हैं। भारत के इन 75 प्रतिशत हिंदी भाषियों सहित पूरी दुनिया में तकरीबन 80 करोड़ लोग ऐसे हैं, जो इसे बोल या समझ सकते हैं।

भारत के अलावा इसे नेपाल, मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम, यूगांडा, दक्षिण अफ्रीका, कैरिबियन देशों, ट्रिनिडाड एवं टोबेगो और कनाडा आदि में बोलने वालों की अच्छी-खासी संख्या है। इसके आलावा इंग्लैंड, अमेरिका, मध्य एशिया में भी इसे बोलने और समझने वाले अच्छे-खासे लोग हैं।

हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं, भारत में कुल 18 बोलियाँ हैं, जिनमें अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, हड़ौती,भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया, कुमाउँनी, मगही आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। यह बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उपबोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है।

हिन्दी और इसकी बोलियाँ सम्पूर्ण भारत के विविध राज्यों में बोली जाती हैं। भारत और अन्य देशों में भी लोग हिंदी बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। फिजी, मॉरिशस, गयाना, सूरीनाम, नेपाल और संयुक्त अरब अमीरात की जनता भी हिन्दी बोलती है। फरवरी 2019 में अबू धाबी में हिन्दी को न्यायालय की तीसरी भाषा के रूप में मान्यता मिली।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**विषय बोध**	**1**
	'हिंदी' शब्द की व्युत्पत्ति	4
	इतिहास	5
	हिन्दी व्याकरण का मानकीकरण	6
	भाषा के रूप में 'हिन्दी' के विविध अर्थ	7
	हिन्दी भाषा के विविध रूप	14
	उच्चारित या मौखिक भाषा	14
	लिखित भाषा	14
	हिंदी भाषा अन्य भाषाओं का प्रभाव हिन्दी	22
	की बोलियाँ	23
	देवनागरी का इतिहास	27
	मध्यकाल में देवनागरी	31
	भारत के लिये देवनागरी का महत्त्व	37
	राष्ट्रलिपि	40
2.	**हिन्दी : भाषा और साहित्य**	**44**
	हिन्दी भाषा का विकास क्रम	45
	हिन्दी भाषा के विभिन्न काल	46
	हिन्दी का विकासशील स्वरूप	49

3. हिन्दी का स्वरूप **64**
व्यक्ति बोलियाँ 66
बोली 67
हिन्दी भाषा-क्षेत्र के क्षेत्रीय भाषिक-रूप 70
भारतीय संस्कृति का स्वरूप एवं भाषा-प्रयोग 83
प्रजातंत्र एवं लोकतंत्र में हिन्दी भाषा का स्वरूप 84
अंग्रेजी में भारतीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग 92
हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुरूप वाक्य रचना 93
विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास एवं हिन्दी 94
हिन्दी में विज्ञान संबंधी साहित्य का लेखन-कार्य 94
फॉण्ट 97
ऑपरेटिंग सिस्टम में हिन्दी 97
फॉण्ट परिवर्तक एवं लिप्यन्तरण 98
शब्दकोश 98
हिंदी भाषा के स्वरूप 102
प्रयोजनमूलक हिन्दी के स्वरूप 105
प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रयोगात्मक क्षेत्र 106
हिन्दी का वैश्विक प्रसार 110
4. हिंदी : बोलियाँ और उपभाषाएँ **112**
पश्चिमी हिंदी 114
पूर्वी हिंदी 114
अन्य बोलियाँ 116
कठबोली के लक्षण 117
कठबोली का प्रसार और उत्पत्ति 118
उपभाषा विज्ञान 121
हिन्दी और उसका विकास 131
पहाड़ी हिंदी 131
दक्खिनी हिंदी 131
पश्चिमी और पूर्वी हिंदी की तुलना 132
तुलनात्मक अध्ययन 133
बोलचाल की भाषा का सामान्य परिचय 134

5. अवधी भाषा एवं बोली **136**
अवधी भाषी क्षेत्र का भौगोलिक विस्तार 137
परिचय 137
व्याकरण 138
अवधी साहित्य 140
6. कन्नौजी भाषा **144**
कन्नौजी का क्षेत्र 145
कन्नौजी की उप बोलियाँ 145
कन्नौजी की ध्वनियाँ 145
7. खड़ी बोली का इतिहास **147**
परिचय 148
साहित्यिक सन्दर्भ 149
नामकरण 149
भारतेन्दु पूर्व युग 153
सर्वप्रथम प्रयोग 157
8. ब्रजभाषा एवं बोली का विकास **159**
भौगोलिक विस्तार 161
साहित्य यात्रा 163
ब्रजभाषा का प्रयोग 164
ब्रजभाषा साहित्य सर्वेक्षण 166
ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग 166
क्षेत्रीय भाषाओं के तत्त्व 167
9. बुंदेली एवं बघेली बोलियाँ **170**
बुंदेली का इतिहास 170
बुंदेली का स्वरूप 172
क्षेत्रीय बुंदेलखंडी 173
बुन्देली का व्याकरण 175
बुन्देली का स्वर स्फुर्ण भेद 175
10. भोजपुरी भाषा एवं बोली **180**
भौगोलिक वर्गीकरण 181
नामकरण 181
क्षेत्रविस्तार 182

भोजपुरी जन एवं साहित्य 184
संस्कृत से ही निकली भोजपुरी 185
11. राजस्थानी की बोलियाँ 186
साहित्य 187
राजस्थानी की बोलियाँ 188
12. मैथिली भाषा का इतिहास 190
लिपि 191
विकास 191
साहित्य 192
स्थिति 192
मैथिली साहित्य 192
मैथिली लिपि 192
13. मगही भाषा 199
विशेषताएँ 200
मगही कथा (कहानी) साहित्य 202
मगही कथा (उपन्यास) साहित्य 202
मगही के प्रमुख साहित्यकार 203
14. छत्तीसगढ़ी भाषा 205
छत्तीसगढ़ी साहित्य 206
पद्य साहित्य 207
गद्य साहित्य 208
बोली में मधुरता 209
15. गढ़वाली भाषा 210
गढ़वाली की बोलियाँ 210
गढ़वाली भाषा का इतिहास 211
जाढ़ 213
जौन्सारी 214
वन गुजर 214
16. खोरठा एवं पंचपरगनिया भाषा 217
पंचपरगनिया भाषा 218

1

विषय बोध

भाषा वह साधन है जिसके द्वारा हम अपने विचारों को व्यक्त करते है और इसके लिये हम वाचिक ध्वनियों का उपयोग करते हैं। भाषा मुख से उच्चारित होनेवाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह है, जिनके द्वारा मन की बात बतलाई जाती है। किसी भाषा की सभी ध्वनियों के प्रतिनिधि स्वन एक व्यवस्था में मिलकर एक सम्पूर्ण भाषा की अवधारणा बनाते हैं। व्यक्त नाद की वह समष्टि जिसकी सहायता से किसी एक समाज या देश के लोग अपने मनोगत भाव तथा विचार एक दूसरे पर प्रकट करते हैं। मुख से उच्चारित होने वाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह जिनके द्वारा मन की बात बतलाई जाती है। बोली। जबान। वाणी। विशेष इस समय सारे संसार में प्रायः हजारों प्रकार की भाषाएँ बोली जाती है, जो साधारणतः अपने भाषियों को छोड़ और लोगों की समझ में नहीं आती।

अपने समाज या देश की भाषा तो लोग बचपन से ही अभ्यस्त होने के कारण अच्छी तरह जानते हैं, पर दूसरे देशों या समाजों की भाषा बिना अच्छी तरह नहीं आती। भाषाविज्ञान के ज्ञाताओं ने भाषाओं के आर्य, सेमेटिक, हेमेटिक आदि कई वर्ग स्थापित करके उनमें से प्रत्येक की अलग अलग शाखाएँ स्थापित की है और उन शाखाकों के भी अनेक वर्ग उपवर्ग बनाकर उनमें बड़ी बड़ी भाषाओं और उनके प्रांतीय भेदों, उपभाषाओं अथाव बोलियों को रखा है। जैसे हमारी हिंदी भाषा भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषाओं के आर्य वर्ग की भारतीय

आर्य शाखा की एक भाषा है और ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी आदि इसकी उपभाषाएँ या बोलियाँ हैं। पास-पास बोली जाने वाली अनेक उपभाषाओं या बोलियों में बहुत कुछ साम्य होता है और उसी साम्य के आधार पर उनके वर्ग या कुल स्थापित किए जाते हैं। यही बात बड़ी बड़ी भाषाओं में भी है जिनका पारस्परिक साम्य उतना अधिक तो नहीं, पर फिर भी बहुत कुछ होता है। संसार की सभी बातों की भाँति भाषा का भी मनुष्य की आदिम अवस्था के अव्यक्त नाद से अब तक बराबर विकास होता आया है और इसी विकास के कारण भाषाओं में सदा परिवर्तन होता रहता है।

भारतीय आर्यों की वैदिक भाषा से संस्कुत और प्राकृतों का, प्राकृतों से अपभ्रंशों का और अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ है। सामान्यत: भाषा को वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम कहा जा सकता है। भाषा आभ्यंतर अभिव्यक्ति का सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम है। यही नहीं वह हमारे आभ्यंतर के निर्माण, विकास, हमारी अस्मिता, सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान का भी साधन है। भाषा के बिना मनुष्य सर्वथा अपूर्ण है और अपने इतिहास तथा परम्परा से विच्छिन्न है। इस समय सारे संसार में प्राय: हजारों प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं, जो साधारणत: अपने भाषियों को छोड़ और लोगों की समझ में नहीं आतीं।

अपने समाज या देश की भाषा तो लोग बचपन से ही अभ्यस्त होने के कारण अच्छी तरह जानते हैं, पर दूसरे देशों या समाजों की भाषा बिना अच्छी तरह सीखे नहीं आती। भाषाविज्ञान के ज्ञाताओं ने भाषाओं के आर्य, सेमेटिक, हेमेटिक आदि कई वर्ग स्थापित करके उनमें से प्रत्येक की अलग-अलग शाखाएँ स्थापित की हैं और उन शाखाओं के भी अनेक वर्ग-उपवर्ग बनाकर उनमें बड़ी-बड़ी भाषाओं और उनके प्रांतीय भेदों, उपभाषाओं अथाव बोलियों को रखा है। जैसे हिंदी भाषा भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषाओं के आर्य वर्ग की भारतीय आर्य शाखा की एक भाषा है और ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी आदि इसकी उपभाषाएँ या बोलियाँ हैं। पास-पास बोली जाने वाली अनेक उपभाषाओं या बोलियों में बहुत कुछ साम्य होता है और उसी साम्य के आधार पर उनके वर्ग या कुल स्थापित किए जाते हैं। यही बात बड़ी बड़ी भाषाओं में भी है जिनका पारस्परिक साम्य उतना अधिक तो नहीं, पर फिर भी बहुत कुछ होता है।

संसार की सभी बातों की भाँति भाषा का भी मनुष्य की आदिम अवस्था के अव्यक्त नाद से अब तक बराबर विकास होता आया है और इसी विकास

के कारण भाषाओं में सदा परिवर्तन होता रहता है। भारतीय आर्यों की वैदिक भाषा से संस्कृत और प्राकृतों का, प्राकृतों से अपभ्रंशों का और अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ है। प्राय: भाषा को लिखित रूप में व्यक्त करने के लिये लिपियों की सहायता लेनी पड़ती है। भाषा और लिपि, भाव व्यक्तीकरण के दो अभिन्न पहलू हैं। एक भाषा कई लिपियों में लिखी जा सकती है और दो या अधिक भाषाओं की एक ही लिपि हो सकती है। उदाहरणार्थ पंजाबी, गुरूमुखी तथा शाहमुखी दोनो में लिखी जाती है। जबकि हिन्दी, मराठी, संस्कृत, नेपाली इत्यादि सभी देवनागरी में लिखी जाती है।

हिंदी भाषा प्राचीन आर्य भाषा से निकला रूप है। आर्य भाषा वैदिक संस्कृत का प्राचीनतम रूप है, जिसमें वेद, उपनिषद का सृजन हुआ कालीदास, अश्वघोष, व्यास, वाल्मीकि आदि संस्कृत की महान विभूतियाँ हैं की जो पहचान हैं इस भाषा की। संस्कृत भाषा में 500 ईसा पूर्व के बाद बहुत परिवर्तन देखने को मिला। संस्कृत के इस परिवर्तित रूप को 'पालि' भाषा का नाम दिया गया। महात्मा बुध के समय में इस भाषा का काफी प्रचार-प्रसार हुआ। लोकभाषा होने के बावजूद 'पालि' को बहुत ख्याति मिली। महात्मा बुध ने इसी लोकभाषा में अपने उपदेशों का प्रचार किया। लेकिन, पालि भाषा पर भी परिवर्तन का असर हुआ और इसके परिवर्तित रुप को 'प्राकृत' कहा गया। पालि भाषा का अस्तित्त्व 500 ईसा पूर्व से 01 ईस्वी तक रहा। विकास के क्रम में प्राकृत का अस्तित्त्व 01 ईसवी से 500 ईस्वी तक का मिलता है। प्राकृत के क्षेत्रीय असर से अपभ्रंश भाषाएँ प्रतिष्ठित हुई। 500 ईस्वी से 1000 ईसवी तक का समय अपभ्रंश का है। और ऐसा माना जाता है कि अपभ्रंश से ही हिंदी भाषा का जन्म हुआ है।

अपभ्रंश के विभिन्न क्षेत्रीय रूपों से आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म हुआ। इसका समय 1000 ईस्वी के आसपास का माना जाता है। हिंदी भाषा पर कई भाषाओं का असर पड़ा। अर्थ कि दृष्टि से हिंदी शब्द का प्रयोग हिन्द या भारत में बोली जाने वाली किसी भी आर्य, द्रविड़, अथवा अन्य कुल की भाषओं के लिए हो सकता है। यहीं से हिंदी भाषा का विकास आरम्भ होता है, लेकिन लेखन साहित्य रचना अनुमानत: 1150 या उसके बाद ही अस्तित्त्व में आया। पहले अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए और ऐ स्वर थे। धीरे-धीरे और स्वर जुड़ते गए व्याकरण भी अपभ्रंश के ही अनुरूप काम करता था। 1460 के आस पास दोहा, चौपाई, गाथा आदि छंदों में रचनाएँ हुई। विद्यापति, गोरखनाथ, कबीर आदि इस समय के प्रमुख रचनाकार रहे। इनका हिंदी भाषा के विकास

में अतुलनीय योगदान रहा है। हिंदी को इन विलक्षण प्रतिभावान लोगों पर गर्व है। 1500 ईसवी आते-आते हिंदी एक स्वतंत्र भाषा के रूप में सामने आ गई थी। उसके बाद से इसमें कई अन्य भाषाओं का प्रभाव देखने को मिला। स्थान और काल (समय) के अनुसार हिंदी भाषा बदलती गई, जो की इसकी बढ़ती लोकप्रियता का एक कारण था। जटिलता से मुक्त भाषा, और शब्दों की प्रचुरता ने इसे लोकप्रिय भाषा बनाने में अहम भूमिका अदा की। अंग्रेजों के काल से हरीशचंद्र का युग प्रारंभ हुआ। यह समय 1750 से 1778 तक का कहा जा सकता है। इसे हिंदी का आधुनिक काल भी कहा जाता है। प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, फनीश्वरनाथ रेणु आदि का काल भी रहा है। इसमें निबंध, नाटक, कहानी आदि का विकास हुआ। इनके सृजन आज भी उतने ही प्रभावशाली हैं, जितने उस समय हुआ करते थे।

हिन्दी विश्व की एक प्रमुख भाषा है एवं भारत की राजभाषा है। केन्द्रीय स्तर पर भारत में दूसरी आधिकारिक भाषा अंग्रेजी है। यह हिंदुस्तानी भाषा की एक मानकीकृत रूप है, जिसमें संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक है और अरबी-फारसी शब्द कम हैं। हिंदी संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा और भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। हालाँकि, हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है, क्योंकि भारत के संविधान में कोई भी भाषा को ऐसा दर्जा नहीं दिया गया था। चीनी के बाद यह विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा भी है। विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार यह विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है।

'हिंदी' शब्द की व्युत्पत्ति

हिन्दी शब्द का सम्बंध संस्कृत शब्द सिंधु से माना जाता है। 'सिंधु' सिंध नदी को कहते थे और उसी आधार पर उसके आस-पास की भूमि को सिन्धु कहने लगे। यह सिंधु शब्द ईरानी में जाकर 'हिंदू', हिंदी और फिर 'हिंद' हो गया। बाद में ईरानी धीरे-धीरे भारत के अधिक भागों से परिचित होते गए और इस शब्द के अर्थ में विस्तार होता गया तथा हिंद शब्द पूरे भारत का वाचक हो गया। इसी में ईरानी का ईक प्रत्यय लगने से (हिन्दईक) 'हिंदीक' बना जिसका अर्थ है 'हिन्द का'। यूनानी शब्द 'इन्दिका' या अंग्रेजी शब्द 'इंडिया' आदि इस 'हिंदीक' के ही विकसित रूप हैं। हिंदी भाषा के लिए इस शब्द का प्राचीनतम प्रयोग शरफुद्दीन यज्दी' के 'जफरनामा'(1424) में मिलता है।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने अपने ' हिंदी एवं उर्दू का अद्वैत ' शीर्षक आलेख में हिंदी की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए कहा है कि ईरान की प्राचीन भाषा अवेस्ता में 'स' ध्वनि नहीं बोली जाती थी। 'स' को 'ह' रूप में बोला जाता था। जैसे संस्कृत के 'असुर' शब्द को वहाँ 'अहुर' कहा जाता था। अफगानिस्तान के बाद सिंधु नदी के इस पार हिंदुस्तान के पूरे इलाके को प्राचीन फारसी साहित्य में भी 'हिंद', 'हिंदुश' के नामों से पुकारा गया है तथा यहाँ की किसी भी वस्तु, भाषा, विचार को 'एडजेक्टिव' के रूप में 'हिन्दीक' कहा गया है जिसका मतलब है 'हिन्द का'। यही 'हिन्दीक' शब्द अरबी से होता हुआ ग्रीक में 'इन्दिके', 'इन्दिका', लैटिन में 'इन्दिया' तथा अंग्रेजी में 'इण्डिया' बन गया। अरबी एवं फारसी साहित्य में भारत (हिंद) में बोली जाने वाली भाषाओं के लिए 'जबान-ए-हिन्दी', पद का उपयोग हुआ है। भारत आने के बाद अरबी-फारसी बोलने वालों ने 'जबान-ए-हिंदी', 'हिंदी जबान' अथवा 'हिंदी' का प्रयोग दिल्ली-आगरा के चारों ओर बोली जाने वाली भाषा के अर्थ में किया। भारत के गैर-मुस्लिम लोग तो इस क्षेत्र में बोले जाने वाले भाषा-रूप को 'भाखा' नाम से पुकारते थे, 'हिंदी' नाम से नहीं।

इतिहास

हिन्दी भाषा का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना माना गया है। हिन्दी भाषा व साहित्य के जानकार अपभ्रंश की अंतिम अवस्था 'अवहट्ठ' से हिन्दी का उद्भव स्वीकार करते हैं। चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने इसी अवहट्ठ को 'पुरानी हिन्दी' नाम दिया। अपभ्रंश की समाप्ति और आधुनिक भारतीय भाषाओं के जन्मकाल के समय को संक्रांतिकाल कहा जा सकता है। हिन्दी का स्वरूप शौरसेनी और अर्धमागधी अपभ्रंशों से विकसित हुआ है। 1000 ई. के आस-पास इसकी स्वतंत्र सत्ता का परिचय मिलने लगा था, जब अपभ्रंश भाषाएँ साहित्यिक संदर्भों में प्रयोग में आ रही थीं। यही भाषाएँ बाद में विकसित होकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के रूप में अभिहित हुईं। अपभ्रंश का जो भी कथ्य रूप था-वही आधुनिक बोलियों में विकसित हुआ।

अपभ्रंश के सम्बंध में 'देशी' शब्द की भी बहुधा चर्चा की जाती है। वास्तव में 'देशी' से देशी शब्द एवं देशी भाषा दोनों का बोध होता है। प्रश्न यह कि देशीय शब्द किस भाषा के थे? भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में उन शब्दों को 'देशी' कहा है 'जो संस्कृत के तत्सम एवं सद्भव रूपों से भिन्न है। ये 'देशी'

शब्द जनभाषा के प्रचलित शब्द थे, जो स्वभावत: अप्रभंश में भी चले आए थे। जनभाषा व्याकरण के नियमों का अनुसरण नहीं करती, परंतु व्याकरण को जनभाषा की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना पड़ता है, प्राकृत-व्याकरणों ने संस्कृत के ढाँचे पर व्याकरण लिखे और संस्कृत को ही प्राकृत आदि की प्रकृति माना। अत: जो शब्द उनके नियमों की पकड़ में न आ सके, उनको देशी संज्ञा दी गई।

हिन्दी का मानकीकरण–स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से हिन्दी और देवनागरी के मानकीकरण की दिशा में निम्नलिखित क्षेत्रों में प्रयास हुए हैं –

हिन्दी व्याकरण का मानकीकरण

'हिन्दी' शब्द का प्रयोग

'हिन्दी' शब्द के प्रचलन के प्रसंग पर विचार करते समय यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में यह शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है। मुसलमानों के आगमन तक भारत में भाषा के लिए 'भाषा' या 'भारवा' शब्द प्रचलित थे। ये शब्द 1800 ई. के बाद तक प्रचलन में रहे। जहाँ संस्कृत ग्रन्थों की टीका को 'भाषा-टीका' कहा गया है, वहीं फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दी पढ़ाने हेतु नियुक्त होने वाले लल्लू लाल एवं सदल मिश्र को 'भाषा मुंशी' या 'भारवा मुंशी' कहा गया है। मुसलमानों के आगमन (13वीं-14वीं शताब्दी ई.) के साथ मध्यप्रदेश की जनसामान्य की बोली (भाषा) के लिए हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुई प्रभृति नाम प्रचलित हुए।

भाषा के सन्दर्भ में हिन्दी शब्द का आरम्भिक प्रयोग

भाषा के सन्दर्भ में हिन्दी शब्द का आरम्भिक प्रयोग पंडित विष्णु शर्मा की पुस्तक 'पंचतंत्र' की भाषा के लिए हुआ है। यह पुस्तक संस्कृत भाषा में लिखी गयी है। पह्लवी (ईरानी) नरेश नौशेरवाँ (531-579 ई.) के दरबारी कवि वरजवैह (बर्जूयहबजरोया) ने भारत आकर यह अनुवाद पह्लवी (प्राचीन ईरानी) में किया। नौशेरवाँ के विद्वान् मंत्री बर्जुरमहर ने (वस्तुत: जिनके द्वारा यह अनुवाद करवाया गया था) ने उक्त पुस्तक की भूमिका में लिखा है, 'यह अनुवाद जबाने हिन्दी से किया गया है।' ईरानी अनुवाद की लोकप्रियता के उपरान्त इस ग्रन्थ का अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हुआ और सभी में इसकी भाषा को 'जबाने-हिन्दी' ही कहा गया। 7वीं सदी से लेकर 10वीं सदी तक यह शब्द

संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा की संज्ञा के रूप में निरन्तर प्रयुक्त होता रहा। तदुपरान्त मुसलमान रचनाकारों ने 'जबाने हिन्दी' के स्थान पर हिन्दी और हिन्दवी शब्द का प्रयोग आरम्भ किया।

हिन्दुस्तानी शब्द की व्युत्पत्ति

अनेक विद्वानों ने हिन्दुस्तानी शब्द की व्युत्पत्ति, अंग्रेजी के प्रभाव से मानी है, किन्तु कालान्तर में सम्पन्न होने वाले शोध-कार्यों से यह स्पष्ट हो चुका है कि यह शब्द उनके यहाँ आगमन से पूर्व ही प्रचलित हो गया था। शाहजहाँ (1627-1657 ई.) के समय की पुस्तकों (तारीख-ए-फरिश्ता तथा बादशाहनामा) में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे भी पूर्व स्वामी प्राणनाथ (1581-1694 ई.) ने अपनी पुस्तक 'कुलजम स्वरूप' में 'हिन्दुस्तान' शब्द का प्रयोग भाषा के निमित्त किया है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि इस भाषा का व्यापक प्रचलन यूरोपीय लोगों के सम्पर्क से ही शुरू हुआ। उन्होंने हिन्दी, हिन्दवी या अन्य नामों की अपेक्षा 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग अधिक किया है। डच पादरी जे. केटलार (1715 ई.) ने अपने देशवासियों की सुविधा के लिए हिन्दी व्याकरण लिखा और उस हिन्दुस्तानी ग्रामर' कहा कि कालान्तर में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद वहां के भाषा विभाग के अध्यक्ष गिलक्राइस्ट ने भारत की प्रमुख भाषा हिन्दुस्तानी कहा और इससे सम्बन्धित अनेक पुस्तकों का लेखन किया।

भाषा के रूप में 'हिन्दी' के विविध अर्थ

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में हिन्दी शब्द क्षेत्र बोधक था। कालान्तर में यह यहाँ की वस्तुओं और निवासियों के लिए प्रयुक्त होने लगा। अन्ततः यह भाषा के लिए रूढ़ हो गया, परन्तु हिन्दी भाषा के सन्दर्भ में भी आज इसके तीन अर्थ मिलते हैं-(i) व्यापक अर्थ, (ii) सामान्य अर्थ और (iii) विशिष्ट अर्थ।।

व्यापक अर्थ

अपने व्यापक अर्थ में हिन्दी, (बाबू श्यामसुन्दरदास तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार) हिन्दी-प्रदेश में बोली जाने वाली समस्त 18 बोलियों की प्रतिनिधि भाषा है। ये बोलियाँ हैं-

- पश्चिमी हिन्दी में खड़ी बोली, बाँगरू (हरियाणवी), ब्रजभाषा, कन्नौजी और बुन्देली
- पूर्वी हिन्दी में अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी
- पहाड़ी में पूर्वी पहाड़ी (नेपाली), मध्यवर्ती पहाड़ी (जौनसारी)
- राजस्थानी में पूर्वी राजस्थानी (ढुंढाड़ी), उत्तरी राजस्थानी (मेवाती), पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) और दक्षिणी राजस्थानी (मालवी)
- बिहारी में मैथिली, महँगी तथा भोजपुरी।

सामान्य अर्थ

जॉर्ज ग्रियर्सन एवं सुनीति कुमार चटर्जी प्रभृति भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार केवल पूर्वी हिन्दी एवं पश्चिमी हिन्दी की बोलियों को ही हिन्दी भाषा की बोली के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। इस प्रकार इनकी मान्यताओं के धरातल पर हिन्दी को 8 (पश्चिमी हिन्दी की 5 और पूर्वी हिन्दी की 3) बोलियों की प्रतिनिधि भाषा मानते हुए उसका उद्‌भव शौरसेनी और अर्द्धमागधी अपभ्रंश से माना जा सकता है।

विशिष्ट अर्थ

हिन्दी भाषा का समसामयिक आशय है-खड़ी बोली हिन्दी। भारतीय संविधान के अन्तर्गत इसे भारत संघ की राजभाषा के रूप में (अनुच्छेद 120, 210 तथा 343 से 351 तक) एवं 8वीं अनुसूची में देश की 18 प्रमुख बोलियों के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। परिनिष्ठित हिन्दी, मानक हिन्दी या व्यावहारिक हिन्दी के रूप में व्यवहृत होने वाली यही हिन्दी आज देश के (लगभग) 42 प्रतिशत लोगों की मातृभाषा है, साथ ही 30 प्रतिशत अन्य ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें इसका व्यावहारिक ज्ञान है। इसी कारण यह देश की प्रमुखतम सम्पर्क भाषा है।

हिन्दी की शैलियाँ

भाषाविदों के अनुसार हिन्दी के चार प्रमुख रूप या शैलियाँ हैं–

(1) उच्च हिन्दी - हिन्दी का मानकीकृत रूप, जिसकी लिपि देवनागरी है। इसमें संस्कृत भाषा के कई शब्द है, जिन्होंने फारसी और अरबी के कई शब्दों की जगह ले ली है। इसे शुद्ध हिन्दी भी कहते हैं। आजकल इसमें अंग्रेजी के भी कई शब्द आ गये हैं (खास तौर पर बोलचाल की भाषा

में)। यह खड़ीबोली पर आधारित है, जो दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाती थी।

(2) दक्खिनी - उर्दू-हिन्दी का वह रूप जो हैदराबाद और उसके आसपास की जगहों में बोला जाता है। इसमें फारसी-अरबी के शब्द उर्दू की अपेक्षा कम होते हैं।

(3) रेखता - उर्दू का वह रूप जो शायरी में प्रयुक्त होता था।

(4) उर्दू - हिन्दवी का वह रूप जो देवनागरी लिपि के बजाय फारसी-अरबी लिपि में लिखा जाता है। इसमें संस्कृत के शब्द कम होते हैं, और फारसी-अरबी के शब्द अधिक। यह भी खड़ी बोली पर ही आधारित है।

हिन्दी और उर्दू दोनों को मिलाकर हिन्दुस्तानी भाषा कहा जाता है। हिन्दुस्तानी मानकीकृत हिन्दी और मानकीकृत उर्दू के बोलचाल की भाषा है। इसमें शुद्ध संस्कृत और शुद्ध फारसी-अरबी दोनों के शब्द कम होते हैं और तद्भव शब्द अधिक। उच्च हिन्दी भारतीय संघ की राजभाषा है (अनुच्छेद 343, भारतीय संविधान)। यह इन भारतीय राज्यों की भी राजभाषा है–उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा और दिल्ली। इन राज्यों के अतिरिक्त महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल, पंजाब और हिन्दी भाषी राज्यों से लगते अन्य राज्यों में भी हिन्दी बोलने वालों की अच्छी संख्या है। उर्दू पाकिस्तान की और भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर की राजभाषा है, इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बिहार, तेलंगाना और दिल्ली में द्वितीय राजभाषा है। यह लगभग सभी ऐसे राज्यों की सह-राजभाषा है, जिनकी मुख्य राजभाषा हिन्दी है।

'हिन्दी भाषा' का उद्भव उत्पत्ति और विकास

हिन्दी भाषा पूर्णतया वियोगात्मक भाषा है। अपभ्रंश के उत्तरार्द्ध काल में इसका लगभग 40 प्रतिशत स्वरूप स्पष्ट हो गया था। लेकिन एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में इसकी पहचान लगभग 1000 ई. के आस-पास स्थापित होती है। तब से अद्यावधि तक यह विकास के पथ पर निरन्तर गतिशील है। हिंदी भाषा के उद्भव और विकास का इतिहास तीन भागों में बांटा जा सकता है-

आदिकाल (1000 से 1500 ई. तक)

हिन्दी भाषा का आदिकाल राजनीतिक दृष्टि से अस्थिरता का काल कहा जा सकता है। सर्वत्र मत्स्यन्याय की परम्परा व्याप्त थी। जर, जोरू और जमीन

तथा कथित अभिमान के प्रणेता इन लोगों को पशुवत् हिंसक बना रहे थे। इस विनाशलीला से जहाँ कुछ लोग उत्साहित होते थे, वहीं बहुत से लोग विक्षुब्ध भी। कुछेक ने इन विसंगतियों से स्वयं को मुक्त रखा। इसलिए भोग एवं योग अपूर्व समन्वय इस युग की रचनाओं में दृष्टिगत होता है। प्रसंगानुकूल-राजाश्रय, धर्माश्रय में सृजित होने वाली रचनाओं के लिए डिंगल, पिंगल, दक्खिनी, अवधी, ब्रज प्रभृति विविध भाषाएँ, माध्यम भाषा के रूप में अपनायी गयीं। इस अवधि में सृजित साहित्य जो अभी तक उपलब्ध हुआ है, वह मुख्य रूप में राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक में लिखा गया है। प्रारम्भिक व्याकरण हेमचन्द्र के द्वारा लिखा गया, जिसका नाम था-शब्दानुशासन या सिद्ध हेम व्याकरण। इस युग में विकास की दृष्टि से हिन्दी की निम्न ध्वनिगत एवं रूपगत विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं-

- अपभ्रंश में 8 स्वर थे-अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए तथा ऐ। ये मूल स्वर थे। हिन्दी में नए स्वर विकसित हुए-ऐ तथा और इनका उच्चारण क्रमशः अ ए तथा ओ-रूप में होता था। इन्हें संयुक्त स्वर कहा गया।
- अपभ्रंश में ड़ और ढ़ व्यंजन नहीं थे जो कि हिन्दी में प्रचलित हुए।
- न्ह, ल्ह, यह जैसे संयुक्त व्यंजन अपने पूर्व व्यंजन के महाप्राण के रूप में प्रचलित हो, मूल व्यंजन बन गए।
- सहायक क्रियाओं एवं उपसर्गों के अलग प्रयोग से हिन्दी की मूल विशिष्टता- वियोगात्मकता, इसके प्रारम्भिक काल में ही प्रभावी दृष्टिगत होने लगीकाल।
- अपेक्षाकृत कम होते हुए नपुंसक लिंग शब्द धीरे-धीरे समाप्त हो गए।
- वाक्य-रचना का स्वरूप सुनिश्चित हो गया।
- संस्कृत के शब्दों का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ा तथा अरबी, फारसी, तुर्की एवं पश्तो के शब्द भी प्रचुर संख्या में अपनाए गए।

मध्यकाल (1501 से 1800 ई. तक)

यह काल, हिन्दी भाषा और साहित्य की उपलब्धियों को देखते हुए उसका स्वर्णकाल कहा जा सकता है। राजनीतिक स्थिरता, शान्तिपूर्ण वातावरण एवं कलात्मक उत्कर्ष ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। यद्यपि संस्कृत अब भी पाण्डित्य की प्रदर्शिका थी, किन्तु प्रतिभाशाली एवं स्वाभिमानी सन्तों एवं भक्तों ने लोक बोलियों (विशेष रूप से ब्रज और अवधी)

को अपनाकर उसे भाषा के स्तर तक पहुँचा दिया। कृष्ण भक्तों एवं रामभक्तों, विशेषकर सूरदास और तुलसीदास के सुयोग से विकसित इन दोनों बोलियों ने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य एवं शब्दकोश की प्रभूत श्रीवृद्धि की।

- फारसी भाषा में सम्पर्क के कारण हिन्दी में पाँच नयी ध्वनियाँ प्रचलित हुई- क, ख, ग, ज तथा फ।
- अ से होने वाले शब्दांत में अ का उच्चारण समाप्त होने लगा। जैसे-अर्थात् सम्राट्, तथागत् आदि।
- हिन्दी का व्याकरणिक स्वरूप भी लगभग सुनिश्चित हो गया। अपभ्रंश रूप या तो प्रचलन में समाप्त हो गये अथवा हिन्दी के अपने बन गये।
- मुसलमानों से आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने के कारण उनकी विविध भाषाओं-अरबी, फारसी, तुर्की, पश्तो आदि के लगभग 6000 शब्द हिन्दी में अपना लिए गए।
- हिन्दी भाषा की वियोगितात्मकता लगभग पूरी हो गयी और परसर्ग तथा क्रियाओं आदि का अधिक से अधिक स्वतन्त्र प्रयोग होने लगा।
- सूरदास एवं तुलसीदास के साथ-साथ रीतिकालीन आचार्यों के कारण जहाँ हिन्दी में प्रचुर मात्र में तत्सम शब्द सम्मिलित एवं प्रचलित हुए वहीं सन्त, सूफियों या मुक्तक परम्परा के रचनाकारों के प्रभाव से तद्भव एवं देशी तथा देशज शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ।
- व्यापारिक उद्देश्य से भारत आने वाली विभिन्न यूरोपीय जातियों से सम्पर्क के कारण उनकी भाषाओं-पुर्तगाली, स्पेनिश, डच, फ्रेंच तथा अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग प्राय: हिन्दी के अपने व्याकरण के अनुसार प्रचुर मात्र में होने लगा।

आधुनिक काल (1801 ई. से आज तक)

इस अवधि को खड़ी बोली हिन्दी का काल कहा जा सकता है। साहित्यिक दृष्टि से ब्रज भाषा और अवधी एक तरफ जनमानस से दूर होकर विशिष्ट वर्ग की भाषा बन गयी, तो दूसरी तरफ हिन्दी प्रदेश पर अधिकार करने वाले अंग्रेजों ने अपनी प्रशासनिक गतिविधियों की सुकरता हेतु 1800 ई. से ही खड़ी बोली को संरक्षण प्रदान करते हुए अपना लिया। यद्यपि साहित्यिक क्षेत्र में कुछ। दिनों तक खड़ी बोली गद्यविधा और ब्रजभाषा पद्य-विधा का माध्यम भाषा न रही, लेकिन धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना की व्यापकता,

राजनीतिक घटनाओं, सामाजिक जागरण और प्रेस के अस्तित्त्व में आने के कारण खड़ी बोली साहित्यिक सजन की एकमात्र भाषा बन गयी। फोर्ट विलियम कॉलेज के भाषा विभाग के अध्यक्ष गिलक्राइस्ट ने खड़ी बोली हिन्दी के विकास में बंग-भंग के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए 1905 ई. के स्वदेशी आन्दोलन की रचनात्मक भूमिका को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अहिन्दी भाषा-भाषी के क्षेत्र के विशिष्ट जन प्रतिनिधियों ने भी खड़ी बोली को एक स्वर से स्वदेशी (सम्पर्क) भाषा के रूप में स्वीकार किया। फलतः हिन्दी के विद्वानों एवं रचनाकारों के समक्ष उसे एक विशिष्ट भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की चुनौती उपस्थित हुई। इसे इन्होंने पूरे मनोयोग से स्वीकार कर हिन्दी से जुड़ी राष्ट्रीय अपेक्षाओं की पूर्ति कर दिखाया। इस दृष्टि से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम अग्रगण्य है, जिन्होंने खड़ी बोली हिन्दी एवं उसमें (उसके माध्यम से) लिखी जाने वाली रचनाओं का परिष्करण एवं परिमार्जन करके छायावाद के आगमन तक उसे हर दृष्टि से सक्षम भाषा बनने का सुयोग प्रस्तुत किया।

- कचहरी में उर्दू भाषा और फारसी लिपि के प्रचलन के कारण 1947 ई. तक क, ख, ग, ज और फ वर्ण तो प्रचलन में रहे, किन्तु धीरे-धीरे क, ख, 7,- क, ख, ग के रूप में प्रयुक्त होने लगे पर ज और फ प्रचलन में अभी भी बने हुए हैं।
- अंग्रेजी के प्रभाव से उसके '0' वर्ण के लिए एक नयी ध्वनि 'ऑ' प्रचलित हुई। जैसे-कॉलेज, डॉक्टर, कॉलगेट आदि। (ऑ का उच्चारण ओ एवं आ के मध्य करने की चेष्टा की जाती है।)
- अंग्रेजी के प्रभाव से एक नया संयुक्त व्यंजन 'ड्र' भी प्रचलन में आया है। जैसे-ड्रिप, ड्रग आदि।
- शब्दांत में 'अ' का उच्चारण लगभग समाप्त हो चुका है। जैसे राम, श्याम आदि।।
- शिक्षा, वाणिज्य, आकाशवाणी, प्रेस तथा दूरदर्शन के प्रभाव से व्यावहारिक धरातल पर हिन्दी का व्याकरणिक स्वरूप लगभग सुनिश्चित हो चुका है, फिर भी वर्तमान में इसके कम-से-कम तीन स्वरूप प्रचलित हैं, जिसे निम्नवत् देखा जा सकता है-
- हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के साहित्यकारों द्वारा प्रयुक्त होने वाली साहित्यक हिन्दी।

- हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के जनसामान्य या विशिष्ट लोगों द्वारा प्रयुक्त होने वाली हिन्दी। इसके भी कम से कम तीन स्वरूप प्रचलन में है-शिष्ट लोगों कीध्से बातचीत में प्रयुक्त होने वाली हिन्दी जिसमें आरम्भ से अन्त तक संयम एवं अनुशासन का पुट रहता है, पारिवारिक धरातल पर प्रयुक्त होने वाली हिन्दी, जिसमें थोड़ी उन्मुक्तता और थोड़ा अनुशासन तथा संयम का पुट रहता है एवं मित्रों तथा समवयस्कों के मध्य बातचीत में पूर्ण उन्मुक्तता के साथ प्रयुक्त होने वाली हिन्दी जिसमें अनुशासन या संयम का सर्वथा अभाव होता शासन, विज्ञान, उद्योग, व्यापार, चिकित्सा तथा अन्य प्रमुख क्षेत्रों में माध्यम भाषारू के रूप में प्रयुक्त होने के कारण हिन्दी भाषा में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का समन्वय हो रहा है।
- ये शब्द विविध माध्यमों से प्राप्त हो रहे हैं, जैसे-ग्रहण, निर्माण, अनकलन (तकनीक, अकादमी, डीजल) और सचर्यन (निस्तन्त्री)।

अन्य शब्दों में हिन्दी-व्युत्पत्ति और अर्थ

- 'हिन्दी' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित मत प्रचलित है- (प) परम्परावादी संस्कृत पण्डितों के अनुसार, हिन्दी-हिन् (नष्ट करना) . दु (दुष्ट)। अर्थात् हिन्दू का अर्थ है, जो दुष्टों का विनाश करें (हिनस्ति दुष्टान्) (पप) शब्द कल्पद्रुम के अनुसार, 'हिन्दू' शब्द 'हीन. दुष. डु' से बना है जिसका अर्थ है 'हीनों को दूषित करने वाला (हीन दूषयति)। (नोट-ये दोनों मत कल्पना प्रसूत है।)
- डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'हिन्दू' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग 7वीं सदी के अन्तिम चरण के ग्रन्थ 'निशीथचूर्णि' में प्रथम बार मिला है। 'हिन्दू' शब्द फारसी है, जो संस्कृत शब्द सिन्धु का फारसी रूपान्तरण है। 'सिन्धु' शब्द का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद में सामान्य रूप से नदी (सप्त सिंधवः), नदी विशेष तथा नदी के आस-पास के प्रदेश के लिए हुआ है।
- 500 ई. पू. के आस-पास दारा प्रथम के काल में सिन्धु नदी का स्थानीय प्रदेश ईरानी लोगों के हाथों में था।
- संस्कृत के 'सिन्धु' का ईरानी में हिन्दू हो गया जो सिन्धु नहीं के आस-पास के प्रदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ।
- कालान्तर में आर्थिक विकास के साथ हिन्दू' का अर्थ 'भारत' हो गया। इसमें 'इ' पर बलाघात के कारण अन्त्य 'उ' का लोप हो गया। (हिन्दू-हिन्द)।

- 'हिन्द' शब्द में विशेषणार्थक प्रत्यय 'ईक' जोड़ने से 'हिन्दीक' शब्द बना जिसका अर्थ है 'हिन्द काश। कालान्तर में 'क' लुप्त हो जाने से 'हिन्दी' शब्द बना।

हिन्दी भाषा के विविध रूप

हम अपने भावों और विचारों को कभी-कभी लिखकर दूसरों तक पहुँचाते हैं। जब श्रोता सामने होता है तो उससे बोलकर हम अपनी बात कहते हैं, किन्तु जब सामने नहीं होता तो हम लिखकर उस तक अपनी बात पहुँचाते हैं। इसी आधार पर भाषा के दो रूप हो जाते हैं- (i) उच्चारित या मौखिक भाषा तथा (ii) लिखित भाषा।

उच्चारित या मौखिक भाषा

'उच्चारित या मौखिक भाषा' भाषा का बोलचाल का रूप है। उच्चारित भाषा का इतिहास मनुष्य के जन्म के साथ ही जुड़ा हुआ है। जब से मनुष्य ने जन्म लिया होगा, तभी से उसने बोलना आरम्भ कर दिया होगा। उच्चारित भाषा की आधारभूत इकाई 'ध्वनि' है। हर भाषा में अनेक ध्वनियाँ होती है। इन्हें ध्वनियों के परस्पर संयोग से तरह-तरह के शब्द बनते हैं, जो वाक्यों में प्रयुक्त किये जाते हैं। 'उच्चारित भाषा' वास्तव में भाषा का अस्थाई एवं क्षणिक रूप होता है। उच्चारित भाषा का प्रयोग प्रायः तभी किया जाता है, जब श्रोता वक्ता के सामने होता है।

लिखित भाषा

उच्चारित भाषा की तुलना में लिखित भाषा रूप का इतिहास उतना पुराना नहीं है। जब मनुष्य को यह अनुभव हुआ होगा कि वह अपने भावों और विचारों को स्थायित्व प्रदान करें या उन लोगों तक पहुँचाने की कोशिश करें, जो उसके सामने नहीं है तो उसने लिखित भाषा चिह्नों का सहारा लिया होगा। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर प्रत्येक उच्चारित ध्वनि के लिए तरह-तरह की आकृति वाले लिखित चिह्नों की रचना की गई। जिनकों 'लिपि-चिह्न' या 'वर्ण' कहा जाता है। अतः यहाँ उच्चारित आधारभूत इकाई 'वर्ण' है। लिखित -भाषा, भाषा का स्थायी रूप है, जिसमें हम अपने भाव- विचारों को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रख सकते हैं।

यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जिन लोगों को लिखना-पढ़ना नहीं आता, इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें भाषा नहीं आती। वास्तव में हर व्यक्ति जन्म से ही अपनी मातृभाषा को सीख लेता है। कुछ बिना पढ़े-लिखे लोग ऐसे भी होते हैं, जो अनेक भाषाएँ बोल और समझ सकते हैं और उन्हें भाषाओं का जानकार माना जाता है, क्योंकि भाषा का मूल तथा आदि रूप तो 'उच्चारित' ही है, लिखित रूप तो बहुत बाद में विकसित हुआ है।

हिंदी भाषा के उद्‌भव और विकास का इतिहास

भाषा-विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया है और इसके आरंभ काल से लेकर आज तक हिंदी भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने प्रर्याप्त प्रकाश डाला है, तथापि हिंदी भाषा के उद्‌भव की कहानी आज भी हिंदी भाषा विज्ञान के लिए रहस्यमयी बनी हुई है। संसार की कौन सी भाषा आदि भाषा थी और उससे किन-किन हिंदी भाषाओं का किन-किन रूपों में विकास हुआ यह आज भी अनिर्णीत है। अनुमान के आधार पर हिंदी भाषा के उद्‌भव के सम्बन्ध में हिंदी भाषा वैज्ञानिकों ने कुछ प्रारंभिक प्रयास किए हैं और वे ही आज हिंदी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के आधार बने हुए हैं। हिंदी भाषा किसी एक व्यक्ति से उत्पन्न नहीं हुई है, वरन् यह एक विशाल जन समूह की वाणी का सामान्य प्रतिफलन है। इस प्रकार हिंदी भाषा समाज की वाणी का समवायी प्रारूप है। ऐसी स्थिति में किसी भी हिंदी भाषा का अविर्भाव काल को या उद्‌भव को एक निश्चित सीमा रेखा पर नहीं माना जा सकता। यही बात हिन्दी के पक्ष में भी सत्य है। हिंदी भाषा के उद्‌भव और विकास का इतिहास तीन भागों में बाँटा जा सकता है। जिनके बारे में हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं।

i. आदिकाल (1000 ई0 से 1500 ई0 तक)
ii. मध्यकाल (1501 ई0 से 1800 ई0 तक)
iii. आधुनिक काल (1801 ई0 से आज तक)

हिंदी भाषा पर आधुनिक हिंदी भाषा विज्ञान व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक, राजनीतिक, भौगोलिक और सामाजिक कारणों से जब हिंदी भाषाएँ एक-दूसरे के सम्पर्क में आती है तो उनमें एक-दूसरे के बीच आदान-प्रदान के साथ एक -दूसरे को प्रभावित करने और एक-दूसरे से प्रभावित होने की प्रक्रिया भी चलती रहती है।

हिन्दी का इतिहास वस्तुतः वैदिक काल से प्रारंभ होता है। उससे पहले आर्यभाषा भाषा का स्वरूप क्या था इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। साथ ही भारत में आर्यों का आगमन किस काल से हुआ, इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। साधारणतया यह माना जाता है कि 2000 से 1500 ई. पूर्व भारत के उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश में आर्यों के दल आने लगे। यहीं पहले से बसी हुई अनार्य जातियों को परास्त कर आर्यों ने सप्त सिंधु, जिसे हम आधुनिक पंजाब के नाम से जानते हैं, देश में आधिपत्य स्थापित कर लिया। यहीं से वे धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ते गए और मध्यदेश, काशी, कोशल, मगध, विदेह, अंग, बंग तथा कामरूप में स्थानीय अनार्य जातियों को पराभूत करके उन्होंने वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया।

इस प्रकार समस्त उत्तरापथ में अपना राज्य स्थापित करने के बाद आर्य संस्कृति दक्षिणापथ की ओर अग्रसरित हुई और यूनानी राजदूत मेगास्थनीज के भारत आने तक आर्य संस्कृति सुदूर दक्षिण में फैल चुकी थी। आर्यों की विजय केवल राजनीतिक विजय मात्र नहीं थी। वे अपने साथ सुविकसित हिंदी भाषा एवं यज्ञ परायण संस्कृति भी लाए थे। उनकी हिंदी भाषा एवं संस्कृति भारत में प्रसार पाने लगी, किन्तु स्थानीय अनार्य जातियों का प्रभाव भी उस पर पड़ने लगा। मोहन जोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाइयों से सिन्धु घाटी की जो सभ्यता प्रकाश में आई है, उससे स्पष्ट है कि यायावर पशुपालक आर्यों के आगमन से पूर्व सिन्धु घाटी सभ्यता का बहुत अधिक विकास हो चुका था। अतः यह सम्भव है आर्यों की हिंदी भाषा, संस्कृति एवं धार्मिक विचारों पर अनार्य जाति की संस्कृति एवं संपर्क का पर्याप्त प्रभाव पड़ा होगा। अनार्य जातियों के योगदान के कथन से तात्पर्य यह नहीं है कि हिन्दी अथवा प्राकृतों में जो कुछ है वह आर्यों की ही हिंदी भाषाओं से लिया गया है अथवा आर्यों की सारी संपत्ति प्राकृतों और हिंदी को प्राप्त हो गयी। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि युग-युग की हिंदी भाषा में यहाँ तक कि वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में भी बहुत से अनार्य तत्त्व सम्मिलित थे।

भारत में तथा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक अनार्य जातियाँ रहती थीं जिनमें निग्राटु, किरात, ऑस्ट्रिक या निषाद तथा द्रविड़(दस्यु) का प्रसार बहुत व्यापक था। निग्रोटु अनार्य जाति का आगमन अफ्रिका से अवश्य हुआ, किन्तु वे समुद्री तट के आस-पास के क्षेत्रों में रहे और वहीं से दक्षिण पूर्वी द्वीपों की ओर निकल गए। मध्यदेश के लोगों से उनका संपर्क नहीं हो पाया। वैदिक साहित्य

में इनका कोई प्रमाण नहीं मिलता। किरात पहाड़ी लोग थे, जिनके वंशज आज भी हिमालय प्रदेश के पश्चिम से पूर्व तक फैले हुए हैं। इन लोगों का आर्यों के साथ संपर्क हुआ।

फलस्वरूप इनके बीच संस्कृतियों और हिंदी भाषाओं का आदान-प्रदान भी हुआ। यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध और किन्नर आदि पहाड़ी जातियों की संस्कृति परवर्ती आर्य साहित्य में भरपूर मिलती है। इन्हीं के देवताओं, इनकी पूजा विधि, विश्वासों अन्धविश्वासों के साथ-साथ, मणियों, पर्वतीय फल-फूलों, पशु-पक्षी, उपजों के नाम इन जातियों से ग्रहण किए गए। आग्नेय या निषाद जातियाँ पंजाब के पूर्व में बसी थीं। इनकी संस्कृति ग्रामीण थी और कृषि इनका प्रधान कर्म था। आर्यों ने इन्हीं से कृषि कर्म सीखा और उस कर्म में प्रगति की क्योंकि अधिकांश आर्य जातियाँ मध्य एशिया के पहाड़ी प्रदेश में रहती आ रही थीं। नावें चलाना और मछली पकड़ना भी इन निषाद जातियों का अपेक्षा आग्नेय 'हाथी' का जो इतना अधिक महत्व रहा उसका भी यही कारण है। वर्तमान समय में भी राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, बंगाल, ओड़िशा, असम और उत्तर प्रदेश के पहाड़ी इलाकों में मुंडा, सांथाल, कोल, हो, शबर, खासी, मानख्मेर कुंकू, भूमिज आदि अनेक आदिम जातियाँ फैली हुई हैं, जिसकी हिंदी भाषा, बोली और शब्दावली का तलदेश की बोली से सीधा संपर्क रहा। द्रविड़ कुल की जातियाँ सांस्कृतिक दृष्टि से सबसे अधिक उन्नत रहीं।

फलस्वरूप भारत में आर्यों का प्रसार सरलतया संपन्न नहीं हुआ। उनको अनेक प्राकृतिक एवं मनुष्य कृत बाधाओं एवं विरोधों का सामना करना पड़ा। मोहन जोदड़ो, हड़प्पा आदि की खुदाइयों और बलोचिस्तान में प्राप्त ब्राहुई नाम की द्रविड़ हिंदी भाषा के अवशेषों को देखकर इतिहासकारों का यह निश्चित मत है कि सिन्धु सौविर आदि प्रदेशों में द्रविड़ जातियों का प्राबल्य था, जिनसे आर्यों को कठिन संघर्ष करना पड़ा। प्रसार के इस कार्य में अनेक शताब्दियाँ लग गई, इस काल क्रम में हिंदी भाषा भी स्थिर नहीं रह सकी, उसके रूप में परिवर्तन विवर्तन होता गया। जैसे भारतीय आर्य हिंदी भाषा में टवर्गीय ध्वनियाँ अनुकरणात्मक शब्दावली, प्रत्ययों, कर्मवाच्य में अतिरिक्त क्रिया, वाक्य योजना के कुछ तत्त्व द्रविड़ से आए है।। इस प्रकार इन द्रविड़ संस्कृति, जाति-जनजातियों की संस्कृतियों के अलावा समय-समय पर शक, हुण, मंगोल, तुर्क, चीनी, अरब, शान आदि अनेक जातियाँ यहाँ आई और यहाँ की सभ्यता और संस्कृति में

घुलमिल गईं। इन सबने भारतीय हिंदी भाषाओं (हिंदी) के निर्माण और विकास में अपना योगदान दिया।

हिन्दी भाषा के साहित्य का विभाजन या वर्गीकरण–

1. आदिकाल - वीर गाथा काल
2. भक्ति काल - पूर्व मध्यकाल
3. रीति काल - उत्तर मध्य काल
4. आधुनिक काल - भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग

भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण

विकास क्रम की दृष्टि से भारतीय आर्य भाषा को तीन कालों में विभाजित किया गया है। भारतीय आर्य भाषा समूह को काल-क्रम की दृष्टि से निम्न भागों में बांटा (वर्गीकृत किया) गया है -

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (2000 ई.पू. से 500 ई.पू. तक)
   (1) वैदिक संस्कृत (2000 ई.पू. से 800 ई.पू. तक)
   (2) संस्कृत अथवा लौकिक संस्कृत (800 ई.पू. से 500 ई.पू. तक)
2. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (500 ई.पू. से 1000 ई. तक) यद्यपि इससे पहले भी प्राकृतें थी।
   (1) पालि (500 ई.पू. से 1 ई. तक)
   (2) प्राकृत (1 ई. से 500 ई. तक)
   (3) अपभ्रंश (500 ई. से 1000 ई. तक)
3. आधुनिक भारतीय आर्यभाषा(1000 ई. से अब तक) (हिंदी और हिंदीतर बंगला, गुजराती, मराठी, सिंधी, पंजाबी आदि।)

प्रारम्भिक अवस्था में मानव ने अपने भावों-विचारों को अपने अंग संकेतों से प्रषित किया होगा बाद में इसमें जब कठिनाई आने लगी तो सभी मनुष्यों ने सामाजिक समझौते के आधार पर विभिन्न भावों, विचारों और पदार्थों के लिए अनेक ध्वन्यात्मक संकेत निश्चित कर लिए। यह कार्य सभी मनुष्यों ने एकत्र होकर विचार विनिमय द्वारा किया। इस प्रकार भाषा का क्रमिक गठन हुआ और एक सामाजिक पृष्ठभूमि में सांकेतिक संस्था द्वारा भाषा की उत्पत्ति हुई।

प्रत्येक भाषा लोगों की आत्मा की निशानी और शक्ति है, जो स्वाभाविक रूप से इसे उन्हें अभिव्यक्त करती है। इसलिए प्रत्येक के अपने विचार-स्वभाव, जीवन, ज्ञान और अनुभव व्यक्त करना का तरीका विकसित होता है 3। इसलिए

किसी राष्ट्र के लिए या मानव समूह का सबसे बड़ा मूल्य है, अपनी भाषा को संरक्षित करना और इसे एक मजबूत और जीवित संस्कृति का साधन बनाना। एक राष्ट्र, जाति या एक व्यक्ति, जो अपनी भाषा खो देता है, अपना संपूर्ण जीवन या उसका वास्तविक जीवन नहीं जी सकता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में, संस्कृत के उद्‌भव के बाद, कई नई भाषाएँ समय के साथ विकसित हुई और बाद के पूर्ण उन्मूलन के बिंदु तक उनकी स्रोत भाषा को बदल दिया गया।कोई भी सिद्धांत या संभावना इस बात की जानकारी प्रदान नहीं करता है कि संस्कृत के लिए स्रोत भाषा एशिया माइनर से नहीं बल्कि उपमहाद्वीप के भीतर से आई है और यह कि संस्कृत का एक पुराना संस्करण ही स्रोत भाषा थी। वैदिक लोगों की उत्पत्ति और पृष्ठभूमि के बारे में इतिहासकारों के बीच काफी विवाद रहा है।न्यूजीलैंड के ऑकलैंड विश्वविद्यालय की विकासवादी जीवविज्ञानी क्विनटिन एटकिंसन ने अपने शोध के दौरान पाया कि इंडो-यूरोपीयन समूह की भाषाएँ पश्चिमी एशिया के एक ही इलाके में पैदा हुई हैं। उनके अनुसार ऐसा करीब 8000 से 9500 हजार साल पहले हुआ था। शोध के दौरान उन्होंने करीब 100 से ज्यादा प्राचीन और समकालीन भाषाओं का कंप्यूटर के माध्यम से अध्यन किया और पाया कि यह सभी भाषाएँ अनातोलिया के इलाकों में पैदा हुई हैं।

सिंधु सभ्यता मूल रूप से एक भारतीय मामला था, जिस पर बाहर की दुनिया का कम या कोई प्रभाव नहीं था और वे शायद वैदिक लोगों के पहले के चचेरे भाई थे, कुछ द्रविड़ तत्त्वों के साथ पुरानी संस्कृत के रूढ़िवादी रूप को भाषा के रूप में प्रयोग करते थे,और कृषि, धातु विज्ञान, शहरी नियोजन, व्यापार और वाणिज्य के विशेषज्ञ थे। सभ्यता शायद 6000 ईसा पूर्व के आसपास शुरू हुई क्योंकि ईरान के सीमाओं तक, उपमहाद्वीप के विशाल क्षेत्र में खेती और खाद्य एकत्रीकरण समुदाय फैला हुआ है। इसने दो चरणों में अपना चरम स्थान प्राप्त किया। पहले चरण में, शायद लगभग 4500 ईसा पूर्व, यह छोटे गाँव की बस्तियों में विकसित हुआ और फिर 3500 ईसा पूर्व या उससे भी पहले सुव्यवस्थित और समृद्ध शहरी शहरों में विकसित हुआ। सिंधु लोग संभवत: सरस्वती नदी के एक क्षेत्र में रहते थे, जो अब विलुप्त हो चुका है, इससे पहले कि वे अन्य क्षेत्रों में चले गए, जलवायु परिवर्तन से मजबूर हो गए।

संभवत: 2500 ईसा पूर्व के आस-पास सिंधु संस्कृति द्वारा वैदिक संस्कृति अपना ली गई और संस्कृत संचार की प्रमुख भाषा के रूप में, कम से कम समाज

के कुलीन और शासक वर्गों के बीच में स्थापित हो चुकी थी। इस समय तक संस्कृत पहले से ही एक पूर्ण विकसित भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी जैसा कि वेदों में पाए गए सबसे पहले के संस्कृत श्लोकों से स्पष्ट होता है।

संस्कृत के प्रत्येक स्वर और व्यंजन में एक विशेष और अविवेकी बल होता है, जो चीजों की प्रकृति और विकास या मानव की पसंद से मौजूद होता है, ये मूलभूत ध्वनियाँ हैं, जो तांत्रिक द्विजमंत्रों के आधार पर निहित हैं और मंत्र की प्रभावकारिता का गठन करती हैं। मूल भाषा के प्रत्येक स्वर और प्रत्येक व्यंजन के कुछ प्राथमिक अर्थ होते थे, जो इस आवश्यक शक्ति या बल से उत्पन्न हुए थे और अन्य व्युत्पन्न अर्थों के आधार थे। स्वरों के साथ, व्यंजन और किसी भी संयोजन के बिना, स्वरों ने स्वयं कई प्राथमिक जड़ें बनाईं, जिनमें से द्वितीयक जड़ों को अन्य व्यंजन के अतिरिक्त विकसित किया गया था। सभी शब्द इन जड़ों से बने थे।

अशोक के समय में दो तरह की प्राकृत प्रचलित थी–एक पश्चिमी, दूसरी पूर्वी। इनमें से प्रत्येक का गुण-धर्म जुदा-जुदा है–प्रत्येक का लक्षण अलग-अलग है। पश्चिमी प्राकृत का मुख्य भेद शौरसेनी है। वह शूरसेन प्रदेश की भाषा थी। गंगा-यमुना के बीच के देश में और उसके आस पास, उसका प्रचार था। पूर्वी प्राकृत का मुख्य भेद मागधी है। वह उस प्रांत की भाषा थी जो आज कल बिहार कहलाता है। इन दोनों देशों के बीच में एक और भी भाषा प्रचलित थी। वह शौरसेनी और मागधी के मेल से बनी थी और अर्द्ध-मागधी कहलाती थी। सुनते हैं, जैन-तीर्थ कर महावीर इसी अर्द्ध-मागधी में जैन-धर्म का उपदेश देते थे। पुराने जैन ग्रंथ भी इसी भाषा में हैं। अर्द्ध-मागधी की तरह की और भी भाषा प्रचलित थी।

हिंदी की शब्दावली मुख्यत: संस्कृत से ली गई है। अन्य इंडो-आर्यन भाषाओं की तरह हिंदी अपने वर्तमान आकार में 10वीं शताब्दी के आस-पास आकार लेने लगी। लेकिन 14वीं शताब्दी से पहले यह सौरासेनी अपभ्रंश से अत्यधिक प्रभावित था। दिलचस्प बात यह है कि सौरासेनी ने पंजाबी को भी जन्म दिया।

सबसे पुरानी हिंदी मिस्टिको–भक्ति काव्य–गोरख नाथ 1150 के पद्य और वेणी, महान नाथ पंथ के शिक्षक और अन्य समकालीन योगी हठ-योग के दर्शन और अभ्यास का उपदेश भी इसी अवधि में दिया गया है। लेकिन उनकी भाषा बहुत बदली हुई है और यह तय करना मुश्किल है कि इनमें से कितनी रचनाएँ

वास्तविक हैं। इन कविताओं में शुद्ध जीवन की आवश्यकता, भौतिक समृद्धि से अलगाव और वास्तविक ज्ञान पर जोर दिया गया, जिसने बाद के काल के भक्त कवियों के लिए जमीन तैयार की।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल का समय 1500 ईसा पूर्व से लेकर 500 ईसापूर्व तक माना गया है इसमें वेदों ब्राह्मण ग्रंथो एवं पाणनि की अष्टाध्यायी की रचना हुई। हिंदुस्तान की वर्तमान संस्कृतोत्पन्न भाषाओं का जन्म कोई 1000 ईस्वी के लगभग हुआ। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल 500 ईसा पूर्व से 1000 ईस्वी सन तक माना जाता है इस समय इस समय लोक भाषा का विकास हुआ और उन्हें पालि (500 ईसा पूर्व से -1 ईसा पूर्व तक) प्राकृत (1 ईसा से 500 ईस्वी तक) अपभ्रंश (500 ईस्वी से 1000 ईस्वी तक) भाषा का नाम दिया गया। अभी तक माना जाता था कि ब्राह्मी लिपि का विकास चौथी से तीसरी सदी ईसा पूर्व में मौर्यो ने किया था, पर भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के ताजा उत्खनन से पता चला है कि तमिलनाडु और श्रीलंका में यह 6वीं सदी ईसा पूर्व से ही विद्यमान थी। यह लिपि प्राचीन सरस्वती लिपि (सिन्धु लिपि) से निकली, अतः यह पूर्ववर्ती रूप में भारत में पहले से प्रयोग में थी।

सरस्वती लिपि के प्रचलन से हट जाने के बाद प्राकृत भाषा लिखने के लिये ब्रह्मी लिपि प्रचलन में आई। ब्रह्मी लिपि में संस्कृत में ज्यादा कुछ ऐसा नहीं लिखा गया जो समय की मार झेल सके। भारतीय आचार्यों ने शब्दों की दो स्थितियाँ–सिद्ध एवं असिद्ध दी हैं। इनमें "असिद्ध" शब्द को केवल "शब्द" तथा "सिद्ध" शब्द को "पद" के रूप में परिणत किया जाता है। "सिद्धि" के सुंबत (नाम) एवं तिङंत (क्रिया) तथा "असिद्ध" के कई भेद प्रभेद किए गए हैं। यहाँ तक कि संस्कृत का प्रत्येक शब्द "धातुज" ठहराया गया है। व्याकरण शास्त्र का नामकरण एवं उनकी परिभाषा इसी प्रक्रिया को ध्यान में रख कर की गई है यथा, शब्दानुशसन (महर्षि पतंजलि एवं आचार्य हेमचंद्र) तथा "व्याक्रियंते विविच्यंते शब्दारू अनेन इति व्याकरणम्" पाश्चात्य विद्वान् धात्वंश को आवश्यक नहीं मानते, वे आधार रूपांशों (Base&Elements) को नाम एवं आख्यात् दोनों के लिये अलग अलग स्वीकार करते हैं। वस्तुतः बहुत-सी भाषाओं के लिये धात्वंश आवश्यक नहीं।

प्राकृतध्पाली भाषा में लिखे गये मौर्य सम्राट अशोक के बौद्ध उपदेश आज भी सुरक्षित है, जो शब्द संस्कृत से आ कर प्राकृत में मिल गए हैं वे "तत्सम" शब्द कहलाते हैं। और मूल प्राकृत शब्द जो सीधे प्राकृत से आए हैं "तद्भव"

कहलाते हैं। पहले प्रकार के शब्द बिलकुल संस्कृत हैं। दूसरे प्रकार के प्रारंभिक प्राकृत से आए हैं अथवा यों कहिए कि वे उस प्राकृत या प्राकृत की उस शाखा से आए हैं जिससे खुद संस्कृत की उत्पत्ति हुई हैं। हिंदी ही पर नहीं, किंतु हिंदुस्तान की प्रायः सभी वर्तमान भाषाओं पर, आज सैकड़ों वर्ष से संस्कृत का प्रभाव पड़ रहा है। संस्कृत के अनंत शब्द आधुनिक भाषाओं में मिल गए हैं। परंतु उसका प्रभाव सिर्फ वर्तमान भाषाओं के शब्द-समूह पर ही पड़ा है।

500 ई. के आस-पास उत्तर भारत में, अपभ्रंश बोलियाँ प्राकृत से विकसित हुई। उन्होंने 13वीं शताब्दी ईस्वी तक एक प्रकार के लिंगुआ फ्रेंका के रूप में कार्य किया और दिल्ली सल्तनत के फारसी शासकों द्वारा हिंदवी के रूप में संदर्भित किया गया, जिन्होंने 1206 से 1526 तक भारत के बड़े-बड़े क्षेत्रों पर शासन किया। हिंदी भाषा अपभ्रंश के आसपास से बिखर रही थी। 11वीं शताब्दी ईस्वी, उनमें से अधिकांश 12वीं तक पूरी तरह से अलग थे, हालांकि कई स्थानों पर अपभ्रंश भाषाएँ अभी भी समानांतर में बोली जाती थीं।यह दिल्ली सल्तनत के अधीन था कि फारसी भाषा ने पहले स्थानीय अपभ्रंश बोलियों के साथ मिश्रण करना शुरू किया था, जो बाद में हिंदी और उर्दू भाषा बन गई।

उत्तरी भारत में बोली जाने वाली भाषाएँ, इंडो-ईरानी शाखा के इंडो-आर्यन संस्कृत समूह से पनपी हैं, जो बड़े भारत-यूरोपीय परिवार से संबंधित है। संस्कृत, आज की पूरी तरह से मृत भाषा है, लेकिन संस्कृत और पाली, जो प्राचीन काल से जीवित रहने वाली दो भाषाएँ हैं, आज भी महत्त्वपूर्ण हैं– संस्कृत भारत और हिंदू धर्म की शास्त्रीय भाषा है, जिसमें अधिकांश धर्मग्रंथ (वृंदावन), महाकाव्य (महाभारत, भगवत गीता) और प्राचीन साहित्य लिखा जाता है। पाली का उपयोग थेरवाद बौद्ध धर्म की प्रचलित और विद्वतापूर्ण भाषा के रूप में किया जाता है, क्योंकि बौद्ध धर्म की उत्पत्ति सबसे पहले बिहार, भारत में हुई थी। उत्तर भारत की अधिकांश आधुनिक भाषाएँ इन दो भाषाओं जैसे हिंदी, उर्दू, पंजाबी, गुजराती, बंगाली, मराठी, कश्मीर, सिंधी, कोंकणी, राजस्थानी, असमिया और उड़िया से उपजी हैं।

हिंदी भाषा अन्य भाषाओँ का प्रभाव

अपने पूरे इतिहास में, हिंदी ने कई अलग-अलग भाषाओं के उधार लिए शब्दों को अवशोषित किया बोली पर मुख्य बाहरी प्रभाव जो बाद में हिंदुस्तानी बन गया, दिल्ली सल्तनत के प्रशासकों और सैनिकों और बाद में मुगुल साम्राज्य

के माध्यम से फारसी था। हिंदुस्तानी में ज्यादातर अरबी शब्द फारसी से आते हैं, जिसमें बहुत सारे अरबी से उधार शब्द हैं।

इसके अतिरिक्त, चूंकि 1960 के दशक तक पुर्तगाल के पास भारत में क्षेत्र थे, इसलिए हिंदी में "टेबल" (पुर्तगाली मेसा से) या कमीज, "शर्ट", जैसे कैमिसा से पुर्तगाली शब्द की उचित मात्रा है। बेशक, अंग्रेजी औपनिवेशीकरण और आधुनिक वैश्वीकरण के माध्यम से, हिंदी में "प्रोफेसर" से "बॉटल" या प्रोफेसर जैसे बोटल जैसे अंग्रेजी शब्द भी अच्छी संख्या में हैं।

जाहिर है, अन्य भारतीय भाषाओं ने भी हिंदी को नए शब्दों के साथ प्रदान किया है, जैसे कि हिंदी शब्दों ने अन्य भाषाओं जैसे कि तमिल या मराठी में लिया है।

हिंदी और उर्दू एक भाषा विभाजन या एक पुनर्मिलन? उर्दू को सबसे पहले मुगल साम्राज्य में खड़ी बोली के एक संस्करण के रूप में देखा जाता है, जिसमें जबान-ए उर्दू-ए मुअला, जिसे "अदालत की भाषा (या शिविर)" कहा जाता है। यह हिंदी के समानांतर अस्तित्त्व में था और अंततः देश की स्थापना के समय पाकिस्तान की आधिकारिक भाषा बन गई। उर्दू और हिंदी दोनों को हिंदुस्तानी का रजिस्टर माना जाता है–ये एक ही भाषा के दो संस्करण, जैसे कि ब्रिटिश अंग्रेजी और अमेरिकी अंग्रेजी दोनों अंग्रेजी के रजिस्टर हैं। हिंदी और उर्दू दोनों हिंदुस्तानी भाषाएँ हैं। हिंदी केवल एक भाषा नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कृति का एक विशाल दर्पण भी है। इसकी मृदु-ध्वनियाँ भारतीय कविता को परिभाषित करती हैं। वास्तव में हिंदी पूरे देश को संगीतमय सम्मोहन से बांधती है और एक जीवंत समाज की परिकल्पना प्रदान करती है। भाषाओं की भव्य योजना में यह अपेक्षाकृत युवा है,। बहुत से लोग हिंदी भाषा सीखने के लिए प्रयास कर रहे हैं, क्योंकि भारत अधिक सामाजिक और राजनीतिक रूप से शक्तिशाली हो रहा है, भारत एक वैश्विक महाशक्ति भूमिका में बढ़ रहा है और हिंदी में विश्वगुरु बनने की अपार संभावनाएँ हैं।

हिन्दी की बोलियाँ

हिन्दी का क्षेत्र विशाल है तथा हिन्दी की अनेक बोलियाँ (उपभाषाएँ) हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना भी हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। ये बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन

बोलियों की उपबोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है।

हिन्दी की बोलियों में प्रमुख हैं- अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया, कुमाउँनी, मगही आदि। किन्तु हिन्दी के मुख्य दो भेद हैं - पश्चिमी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी।

लिपि

किसी भाषा को लिखने के लिए जिन चिन्हों की जरूरत होती है उन चिन्हों को लिपि कहते है। लिपि भाषा का लिखित रूप होता है। इसके माध्यम से मौखिक रूप की ध्वनियों को लिखकर प्रकट करने के लिए लिपि का प्रयोग किया जाता है। सारी भाषाओँ के लिखने की लिपि अलग होती है। हिंदी की लिपि देवनागरी होती है, अंग्रेजी भाषा की लिपि रोमन, उर्दू की लिपि फारसी और पंजाबी की लिपि गुरुमुखी है।

देवनागरी लिपि की विशेषताएँ –

1. इसे दाएं से बाएँ लिखा जाता है।
2. हर वर्ण का आकार समान होता है।
3. ये उच्चारण के अनुरूप लिखी जाती है।
4. देवनागरी लिपि ध्वन्यात्मक है। ध्वन्यात्मकता देवनागरी लिपि की सर्वप्रमुख विशेषता है। ध्वन्यात्मकता को सरल भाषा में समझें तो इसका अर्थ है-जैसा बोला जाए वैसा लिखा जाए और जैसा लिखा जाए वैसा ही बोला जाए।
5. देवनागरी में प्रत्येक लिपि चिह्न का एक निश्चित ध्वन्यात्मक मूल्य है। इसके द्वारा उच्चरित ध्वनियों को व्यक्त करना बहुत सरल है।
6. देवनागरी लिपि एक वैज्ञानिक लिपि है। इस लिपि में वर्णों का संयोजन बहुत ही व्यवस्थित, सुसंगठित व क्रमबद्ध ढंग से किया गया है।
7. प्रत्येक वर्ण को उसकी विशेषता और प्रकार्य के आधार पर स्थान प्रदान किया गया है। स्वरों तथा व्यंजनो की सुनियोजित एवं क्रमबद्ध व्यवस्था है।

8. देवनागरी लिपि में हरेक ध्वनि के लिए एक लिपि चिह्न निश्चित है। जैसे- 'कला' शब्द में 'क' की ध्वनि के लिए एक लिपि चिह्न 'क' नियत है। इस ध्वनि के 'ज्ञ' 'ब' अथवा 'फ' आदि अनेक चिह्नों का भ्रामक प्रयोग नहीं होता।
9. लिपि चिह्नों की अधिकता देवनागरी की एक प्रमुख विशेषता है। देवनागरी लिपि में 52 से अधिक लिपि चिह्नों और कुछ अन्य आगत वर्णों (ऑ, फ) का प्रयोग होता है, जो प्राय: हर प्रकार की ध्वनि को लिपिबद्ध करने में सक्षम हैं।
10. देवनागरी की वर्णमाला सर्वाधिक व्यवस्थित वर्णमाला है। इस वर्णमाला में सभी वर्णों को उनकी उच्चारणादि विशेषताओं के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

उदाहरणत: कंठ से उच्चरित वर्णों को एक वर्ग 'क वर्ग' में रखा गया है। इसी प्रकार अल्पप्राण-महाप्राण वर्णों को भी एक निश्चित क्रम में रखा गया है। निश्चित ही देवनागरी लिपि में वर्णों का सुनिश्चित वर्गीकरण किया गया है।

11. व्यंजन चिह्नों की आक्षरिकता- देवनागरी लिपि में प्रत्येक व्यंजन के साथ 'अ' वर्ण का संयोग रहता है। जैसे- क़्अ = क। लिपि का यह गुण आक्षरिकता कहलाता है। इससे लेखन में समय और स्थान की बचत होती है।

देवनागरी एक भारतीय लिपि है जिसमें अनेक भारतीय भाषाएँ तथा कई विदेशी भाषाएँ लिखी जाती हैं। यह बायें से दायें लिखी जाती है। इसकी पहचान एक क्षैतिज रेखा से है जिसे 'शिरोरेखा' कहते हैं। संस्कृत, पालि, हिंदी, मराठी, कोंकणी, सिंधी, कश्मीरी हरियाणवी, डोगरी, खस, नेपाल भाषा (तथा अन्य नेपाली भाषाएँ), तामाङ भाषा, गढ़वाली, बोडो, अंगिका, मगही, भोजपुरी, नागपुरी, मैथिली, संथाली, राजस्थानी आदि भाषाएँ और स्थानीय बोलियाँ भी देवनागरी में लिखी जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ स्थितियों में गुजराती, पंजाबी, बिष्णुपुरिया मणिपुरी, रोमानी और उर्दू भाषाएँ भी देवनागरी में लिखी जाती हैं। देवनागरी विश्व में सर्वाधिक प्रयुक्त लिपियों में से एक है।

अधिकतर भाषाओं की तरह देवनागरी भी बायें से दाएँ लिखी जाती है। प्रत्येक शब्द के ऊपर एक रेखा खिंची होती है (कुछ वर्णों के ऊपर रेखा नहीं होती है) इसे शिरोरेखा कहते हैं। देवनागरी का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है। यह एक ध्वन्यात्मक लिपि है, जो प्रचलित लिपियों (रोमन, अरबी, चीनी आदि) में सबसे अधिक वैज्ञानिक है। इससे वैज्ञानिक और व्यापक लिपि शायद केवल

अध्वव लिपि है। भारत की कई लिपियाँ देवनागरी से बहुत अधिक मिलती-जुलती हैं, जैसे- बांग्ला, गुजराती, गुरुमुखी आदि। कम्प्यूटर प्रोग्रामों की सहायता से भारतीय लिपियों को परस्पर परिवर्तन बहुत आसान हो गया है।

भारतीय भाषाओं के किसी भी शब्द या ध्वनि को देवनागरी लिपि में ज्यों का त्यों लिखा जा सकता है और फिर लिखे पाठ को लगभग 'हू-ब-हू' उच्चारण किया जा सकता है, जो कि रोमन लिपि और अन्य कई लिपियों में सम्भव नहीं है, जब तक कि उनका विशेष मानकीकरण न किया जाये, जैसे आइट्रांस।

इसमें कुल 52 अक्षर हैं, जिसमें 14 स्वर और 38 व्यंजन हैं। अक्षरों की क्रम व्यवस्था (विन्यास) भी बहुत ही वैज्ञानिक है। स्वर-व्यंजन, कोमल-कठोर, अल्पप्राण-महाप्राण, अनुनासिक्य-अन्तस्थ-उष्म इत्यादि वर्गीकरण भी वैज्ञानिक हैं। एक मत के अनुसार देवनगर (काशी) में प्रचलन के कारण इसका नाम देवनागरी पड़ा। इस तरह से भारत तथा एशिया की अनेक लिपियों के संकेत देवनागरी से अलग हैं पर उच्चारण व वर्ण-क्रम आदि देवनागरी के ही समान हैं, क्योंकि वे सभी ब्राह्मी लिपि से उत्पन्न हुई हैं (उर्दू को छोडकर)। इसलिए इन लिपियों को परस्पर आसानी से लिप्यन्तरित किया जा सकता है। देवनागरी लेखन की दृष्टि से सरल, सौन्दर्य की दृष्टि से सुन्दर और वाचन की दृष्टि से सुपाठ्य है।

भारतीय अंकों को उनकी वैज्ञानिकता के कारण विश्व ने सहर्ष स्वीकार कर लिया है। लिपि -शब्द का अर्थ है -'लीपना 'या 'पोतना ' विचारो का लीपना अथवा लिखना ही लिपि कहलाता है। हिंदी और संस्कृत भाषा की लिपि देवनागरी है। अंग्रेजी भाषा की लिपि रोमन पंजाबी भाषा की लिपि गुरुमुखी और उर्दू भाषा की लिपि फारसी है। हिन्दी में लिपि चिह्न देवनागरी के वर्णो में ग्यारह स्वर और इकतालीस व्यंजन हैं। व्यंजन के साथ स्वर का संयोग होने पर स्वर का जो रूप होता है, उसे मात्रा कहते हैं, जैसे- अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ ि ु ू ृ े ै ो ौ क का कि की कु कू के कै को कौ

देवनागरी शब्द की व्युत्पत्ति

देवनागरी या नागरी नाम का प्रयोग 'क्यों' प्रारम्भ हुआ और इसका व्युत्पत्तिपरक प्रवृत्तिनिमित्त क्या था- यह अब तक पूर्णत: निश्चित नहीं है।

(क) 'नागर' अपभ्रंश या गुजराती 'नागर' ब्राह्मणों से उसका संबंध बताया गया है। पर दृढ़ प्रमाण के अभाव में यह मत संदिग्ध है।

(ख) दक्षिण में इसका प्राचीन नाम 'नंदिनागरी' था। हो सकता है 'नंदिनागर' कोई स्थानसूचक हो और इस लिपि का उससे कुछ संबंध रहा हो।

(ग) यह भी हो सकता है कि 'नागर' जन इसमें लिखा करते थे, अतः 'नागरी' अभिधान पड़ा और जब संस्कृत के ग्रंथ भी इसमें लिखे जाने लगे तब 'देवनागरी' भी कहा गया।

(घ) सांकेतिक चिह्नों या देवताओं की उपासना में प्रयुक्त त्रिकोण, चक्र आदि संकेतचिह्नों को 'देवनागर' कहते थे। कालांतर में नाम के प्रथमाक्षरों का उनसे बोध होने लगा और जिस लिपि में उनको स्थान मिला– वह 'देवनागरी' या 'नागरी' कही गई। इन सब पक्षों के मूल में कल्पना का प्राधान्य है, निश्चयात्मक प्रमाण अनुपलब्ध हैं।

देवनागरी का इतिहास

'नागरी' शब्द की उत्पत्ति के विषय में मतभेद है। कुछ लोग इसका केवल 'नगर की' या 'नगरों में व्यवहत' ऐसा अर्थ करके पीछा छुड़ाते हैं। बहुत लोगों का यह मत है कि गुजरात के नागर ब्रह्मणों के कारण यह नाम पड़ा। गुजरात के नागर ब्राह्मण अपनी उत्पत्ति आदि के संबंध में स्कंदपुराण के नागर खण्ड का प्रमाण देते हैं। नागर खंड में चमत्कारपुर के राजा का वेदवेत्ता ब्राह्मणों को बुलाकर अपने नगर में बसाना लिखा है। उसमें यह भी वर्णित है कि एक विशेष घटना के कारण चमत्कारपुर का नाम 'नगर' पड़ा और वहाँ जाकर बसे हुए ब्राह्मणों का नाम 'नागर'। गुजरात के नागर ब्राह्मण आधुनिक बड़नगर (प्राचीन आनंदपुर) को ही 'नगर' और अपना स्थान बतलाते हैं।

अतः नागरी अक्षरों का नागर ब्राह्मणों से संबंध मान लेने पर भी यही मानना पड़ता है कि ये अक्षर गुजरात में वहीं से गए जहाँ से नागर ब्राह्मण गए। गुजरात में दूसरी ओर सातवीं शताब्दी के बीच के बहुत से शिलालेख, ताम्रपत्र आदि मिले हैं, जो ब्राह्मी और दक्षिणी शैली की पश्चिमी लिपि में हैं, नागरी में नहीं। गुजरात में सबसे पुराना प्रामाणिक लेख, जिसमें नागरी अक्षर भी हैं, गुर्जरवंशी राजा जयभट (तीसरे) का कलचुरि (चेदि) संवत् 456 (ई0 स0 399) का ताम्रपत्र

हैं। यह ताम्रशासन अधिकांश गुजरात की तत्कालीन लिपि में है, केवल राजा के हस्ताक्षर (स्वहस्ती मम श्री जयभटस्य) उतरीय भारत की लिपि में हैं, जो नागरी से मिलती जुलती है। एक बात और भी है। गुजरात में जितने दानपत्र उत्तरीय भारत की अर्थात् नागरी लिपि में मिले हैं वे बहुधा कान्यकुब्ज, पाटलि, पुंड्रवर्धन आदि से लिए हुए ब्राह्मणों को ही प्रदत्त हैं। राष्ट्रकूट राजाओं के प्रभाव से गुजरात में उतरीय भारत की लिपि विशेष रूप से प्रचलित हुई और नागर ब्राह्मणों के द्वारा O;c°or होने के कारण वहाँ नागरी कहलाई। यह लिपि मध्य आर्यावर्त की थी सबसे सुगम, सुंदर और नियमबद्ध होने कारण भारत की प्रधान लिपि बन गई।

'नागरी लिपि' का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में वह 'ब्राह्मी' ही कहलाती थी, उसका कोई अलग नाम नहीं था। यदि 'नगर' या 'नागर' ब्राह्मणों से 'नागरी' का संबंध मान लिया जाय तो अधिक से अधिक यही कहना पड़ेगा कि यह नाम गुजरात में जाकर पड़ गया और कुछ दिनों तक उधर ही प्रसिद्ध रहा। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथ 'ललितविस्तर' में जो उन 64 लिपियों के नाम गिनाए गए हैं, जो बुद्ध को सिखाई गई, उनमें 'नागरी लिपि' नाम नहीं है, 'ब्राह्मी लिपि' नाम हैं। 'ललितविस्तर' का चीनी भाषा में अनुवाद ई. स. 308 में हुआ था। जैनों के 'पन्नवणा' सूत्र और 'समवायांग सूत्र' में 18 लिपियों के नाम दिए हैं, जिनमें पहला नाम बंभी (ब्राह्मी) है। उन्हीं के भगवतीसूत्र का आरंभ 'नमो बंभीए लिबिए' (ब्राह्मी लिपि को नमस्कार) से होता है।

नागरी का सबसे पहला उल्लेख जैन धर्मग्रंथ नंदीसूत्र में मिलता है, जो जैन विद्वानों के अनुसार 453 ई. के पहले का बना है। 'नित्यासोडशिकार्णव' के भाष्य में भास्करानंद 'नागर लिपि' का उल्लेख करते हैं और लिखते हैं कि नागर लिपि' में 'ए' का रूप त्रिकोण है (कोणत्रयवदुद्भवी लेखो वस्य तत् नागर लिप्या साम्प्रदायिकैरेकारस्य त्रिकोणाकारतयैब लेखनात)। यह बात प्रकट ही है कि अशोकलिपि में 'ए' का आकार एक त्रिकोण हैं, जिसमें फेरफार होते होते आजकल की नागरी का 'ए' बना है। शेषकृष्ण नामक पंडित ने, जिन्हें साढ़े सात सौ वर्ष के लगभग हुए, अपभ्रंश भाषाओं को गिनाते हुए 'नागर' भाषा का भी उल्लेख किया है।

सबसे प्राचीन लिपि भारतवर्ष में अशोक की पाई जाती है, जो सिन्ध नदी के पार के प्रदेशों (गांधार आदि) को छोड़ भारतवर्ष में सर्वत्र बहुधा एक ही रूप की मिलती है। अशोक के समय से पूर्व अब तक दो छोटे से लेख मिले हैं। इनमें से

एक तो नेपाल की तराई में 'पिप्रवा' नामक स्थान में शाक्य जातिवालों के बनवाए हुए एक बौद्ध स्तूप के भीतर रखे हुए पत्थर के एक छोटे से पात्र पर एक ही पंक्ति में खुदा हुआ है और बुद्ध के थोड़े ही पीछे का है। इस लेख के अक्षरों और अशोक के अक्षरों में कोई विशेष अंतर नहीं है। अतंर इतना ही है कि इनमें दार्घ स्वरचिह्नों का अभाव है। दूसरा अजमेर से कुछ दूर बड़ली नामक ग्राम में मिला हैं महावीर संवत् 84 (= ई. स. पूर्व 443) का है। यह स्तंभ पर खुदे हुए किसी बड़े लेख का खंड है। उसमें 'वीराब' में जो दीर्घ 'ई' की मात्रा है वह अशोक के लेखों की दीर्घ 'ई' की मात्रा से बिल्कुल निराली और पुरानी है।

जिस लिपि में अशोक के लेख हैं वह प्राचीन आर्यो या ब्राह्मणों की निकाली हुई ब्राह्मी लिपि है। जैनों के 'प्रज्ञापनासूत्र' में लिखा है कि 'अर्द्धमागधी' भाषा। जिस लिपि में प्रकाशित की जाती है वह ब्राह्मी लिपि है। अर्द्धमागधी भाषा मथुरा और पाटलिपुत्र के बीच के प्रदेश की भाषा है, जिससे हिंदी निकली है। अत: ब्राह्मी लिपि मध्य आर्यावर्त की लिपि है, जिससे क्रमश: उस लिपि का विकास हुआ जो पीछे नागरी कहलाई। मगध के राजा आदित्यसेन के समय (ईसा की सातवीं शताब्दी) के कुटिल मागधी अक्षरों में नागरी का वर्तमान रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

ईसा की नवीं और दसवीं शताब्दी से तो नागरी अपने पूर्ण रूप में लगती है। किस प्रकार आशोक के समय के अक्षरों से नागरी अक्षर क्रमश: रूपांतरित होते होते बने हैं यह पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने 'प्राचीन लिपिमाला' पुस्तक में और एक नकशे के द्वारा स्पष्ट दिखा दिया है।

मि. शामशास्त्री ने भारतीय लिपि की उत्पत्ति के संबंध में एक नया सिद्धांत प्रकट किया है। उनका कहना कि प्राचीन समय में प्रतिमा बनने के पूर्व देवताओं की पूजा कुछ सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी, जो कई प्रकार के त्रिकोण आदि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे। ये त्रिकोण आदि यंत्र 'देवनगर' कहलाते थे। उन 'देवनगरों' के मध्य में लिखे जाने वाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालांतर में अक्षर माने जाने लगे। इसी से इन अक्षरों का नाम 'देवनागरी' पड़ा'।

भारत देवनागरी लिपि की क्षमता से शताब्दियों से परिचित रहा है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार सर्वप्रथम देवनागरी लिपि का प्रयोग गुजरात के नरेश जयभट्ट (700-800 ई.) के शिलालेख में मिलता है। आठवीं शताब्दी में चित्रकूट, नवीं में बड़ौदा के ध्रुवराज भी अपने राज्यादेशों में इस लिपि का उपयोग किया करते थे। इस तरह से सब ठीक था।

758 ई. का राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग का सामगढ़ ताम्रपट मिलता है, जिस पर देवनागरी अंकित है। शिलाहारवंश के गंडरादित्य के उत्कीर्ण लेख की लिपि देवनागरी है। इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी हैं इसी समय के चोलराजा राजेन्द्र के सिक्के मिले हैं जिन पर देवनागरी लिपि अंकित है। राष्ट्रकूट राजा इंद्रराज (दसवीं शती) के लेख में भी देवनागरी का व्यवहार किया है। प्रतिहार राजा महेंद्रपाल (891-907) का दानपत्र भी देवनागरी लिपि में है।

कनिंघम की पुस्तक में सबसे प्राचीन मुसलमानों सिक्के के रूप में महमूद गजनवी द्वारा चलाये गए चाँदी के सिक्के का वर्णन है जिस पर देवनागरी लिपि में संस्कृत अंकित है। मुहम्मद विनसाम (1192-1205) के सिक्कों पर लक्ष्मी की मूर्ति के साथ देवनागरी लिपि का व्यवहार हुआ है। शमशुद्दीन इल्तुतमिश (1210-1235) के सिक्कों पर भी देवनागरी अंकित है। सानुद्दीन फिरोजशाह प्रथम, जलालुद्दीन रजिया, बहराम शाह, अलालुद्दीन मरूदशाह, नसीरुद्दीन महमूद, मुईजुद्दीन, गयासुद्दीन बलवन, मुईजुद्दीन कैकूबाद, जलालुद्दीन हीरो सानी, अलाउद्दीन महमद शाह आदि ने अपने सिक्कों पर देवनागरी अक्षर अंकित किये हैं। अकबर के सिक्कों पर देवनागरी में 'राम' सिया का नाम अंकित है। गयासुद्दीन तुगलक, शेरशाह सूरी, इस्लाम शाह, मुहम्मद आदिलशाह, गयासुद्दीन इब्ज, ग्यासुद्दीन सानी आदि ने भी इसी परम्परा का पालन किया।

ब्राह्मी और देवनागरी लिपि–भाषा को लिपियों में लिखने का प्रचलन भारत में ही शुरू हुआ। भारत से इसे सुमेरियन, बेबीलोनीयन और यूनानी लोगों ने सीखा। प्राचीनकाल में ब्राह्मी और देवनागरी लिपि का प्रचलन था। ब्राह्मी और देवनागरी लिपियों से ही दुनियाभर की अन्य लिपियों का जन्म हुआ। ब्राह्मी लिपि एक प्राचीन लिपि है ,जिससे कई एशियाई लिपियों का विकास हुआ है। ब्राह्मी भी खरोष्ठी की तरह ही पूरे एशिया में फैली हुई थी। ऐसा कहा जाता है कि ब्राह्मी लिपि 10,000 साल पुरानी है, लेकिन यह भी कहा जाता है कि यह लिपि उससे भी ज्यादा पुरानी है।

सम्राट अशोक ने भी इस लिपि को अपनाया–महान् सम्राट अशोक ने ब्राह्मी लिपि को धम्मलिपि नाम दिया था। ब्राह्मी लिपि को देवनागरी लिपि से भी प्राचीन माना जाता है। कहा जाता है कि यह प्राचीन सिंधु-सरस्वती लिपि से निकली लिपि है। हड़प्पा संस्कृति के लोग सिंधु लिपि के अलाव इस लिपि का भी इस्तेमाल करते थे, तब संस्कृत भाषा को भी इसी लिपि में लिखा जाता था।

मध्यकाल में देवनागरी

देवनागरी लिपि मुस्लिम शासन के दौरान भी इस्तेमाल होती रही है। भारत की प्रचलित अतिप्राचीन लिपि देवनागरी ही रही है। विभिन्न मूर्ति-अभिलेखों, शिखा-लेखों, ताम्रपत्रों आदि में भी देवनागरी लिपि के सहस्राधिक अभिलेख प्रापृ हैं, जिनका काल खंड सन 1008 ई. के आस-पास है। इसके पूर्व सारनाथ में स्थित अशोक स्तम्भ के धर्मचक्र के निम्न भाग देवनागरी लिपि में भारत का राष्ट्रीय वचन 'सत्यमेव जयते' उत्कीर्ण है। इस स्तम्भ का निर्माण सम्राट अशोक ने लगभग 250 ई. पूर्व में कराया था। मुसलमानों के भारत आगमन के पूर्व से, भारत की देशभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी या उसका रूपान्तरित स्वरूप था, जिसके द्वारा सभी कार्य सम्पादित किए जाते थे। मुसलमानों के राजत्व काल के प्रारम्भ (सन 1200 ई) से सम्राट अकबर के राजत्व काल (1556 ई.-1605 ई.) के मध्य तक राजस्व विभाग में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का प्रचलन था। भारतवासियों की फारसी भाषा से अनभिज्ञता के बावजूद उक्त काल में, दीवानी और फौजदारी कचहरियों में फारसी भाषा और उसकी लिपि का ही व्यवहार था। यह मुस्लिम शासकों की मातृभाषा थी।

भारत में इस्लाम के आगमन के पश्चात कालान्तर में संस्कृत का गौरवपूर्ण स्थान फारसी को प्राप्त हो गया। देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृत भारतीय शिष्टों की शिष्ट भाषा और धर्मभाषा के रूप में तब कुंठित हो गई। किन्तु मुस्लिम शासक देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृत भाषा की पूर्ण उपेक्षा नहीं कर सके। महमूद गजनवी ने अपने राज्य के सिक्कों पर देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृत भाषा को स्थान दिया था।

औरंगजेब के शासन काल (1658 ई.- 1707 ई.) में अदालती भाषा में परिवर्तन नहीं हुआ, राजस्व विभाग में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि ही प्रचलित रही। फारसी किबाले, पट्टे रेहन्नामे आदि का हिन्दी अनुवाद अनिवार्य ही रहा। औरंगजेब राजत्व काल औरंगजेब परवर्ती मुसलमानी राजत्व काल (1707 ई से प्रारंभ) एवं ब्रिटिश राज्यारम्भ काल (23 जून 1757 ई. से प्रारंभ) में यह अनिवार्यता सुरक्षित रही। औरंगजेब परवर्ती काल में पूर्वकालीन हिन्दी नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन के उत्तरार्ध में उक्त हिन्दी अनुवाद की प्रथा का उन्मूलन अदालत के अमलों की स्वार्थ-सिद्धि के कारण हो गया और ब्रिटिश शासकों ने इस ओर ध्यान दिया। फारसी किबाले,

पट्टे, रेहन्नामे आदि के हिन्दी अनुवाद का उन्मूलन किसी राजाज्ञा के द्वारा नहीं, सरकार की उदासीनता और कचहरी के कर्मचारियों के फारसी मोह के कारण हुआ। इस मोह में उनका स्वार्थ संचित था। सामान्य जनता फारसी भाषा से अपरिचित थी। बहुसंख्यक मुकदमेबाज मुवक्किल भी फारसी से अनभिज्ञ ही थे। फारसी भाषा के द्वारा ही कचहरी के कर्मचारीगण अपना उल्लू सीधा करते थे।

शेरशाह सूरी ने अपनी राजमुद्राओं पर देवनागरी लिपि को समुचित स्थान दिया था। शुद्धता के लिए उसके फारसी के फरमान फारसी और देवनागरी लिपियों में समान रूप से लिखे जाते थे। देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी परिपत्र सम्राट अकबर (शासन काल 1556 ई.- 1605 ई.) के दरबार से निर्गत-प्रचारित किये जाते थे, जिनके माध्यम से देश के अधिकारियों, न्यायाधीशों, गुप्तचरों, व्यापारियों, सैनिकों और प्रजाजनों को विभिन्न प्रकार के आदेश-अनुदेश प्रदान किए जाते थे। इस प्रकार के चौदह पत्र राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर में सुरक्षित हैं। औरंगजेब परवर्ती मुगल सम्राटों के राज्यकार्य से सम्बद्ध देवनागरी लिपि में हस्तलिखित बहुसंख्यक प्रलेख उक्त अभिलेखागार में द्रष्टव्य हैं, जिनके विषय तत्कालीन व्यवस्था-विधि, नीति, पुरस्कार, दंड, प्रशंसा-पत्र, जागीर, उपाधि, सहायता, दान, क्षमा, कारावास, गुरुगोविंद सिंह, कार्यभार ग्रहण, अनुदान, सम्राट की यात्र, सम्राट औरंगजेब की मृत्यु सूचना, युद्ध सेना-प्रयाण, पदाधिकारियों को सम्बोधित आदेश-अनुदेश, पदाधिकारियों के स्थानान्तरण-पदस्थानपन आदि हैं।

मुगल बादशाह हिन्दी के विरोधी नहीं, प्रेमी थे। अकबर (शासन काल 1556 ई0- 1605 ई.) जहांगीर (शासन काल 1605 ई.- 1627 ई.), शाहजहां (शासन काल 1627 ई.-1658 ई.) आदि अनेक मुगल बादशाह हिन्दी के अच्छे कवि थे।

मुगल राजकुमारों को हिन्दी की भी शिक्षा दी जाती थी। शाहजहां ने स्वयं दाराशिकोह और शुजा को संकट के क्षणों में हिंदी भाषा और हिन्दी अक्षरों में पत्र लिखा था, जो औरंगजेब के कारण उन तक नहीं पहुंच सका। आलमगीरी शासन में भी हिन्दी को महत्व प्राप्त था। औरंगजेब ने शासन और राज्य-प्रबंध की दृष्टि से हिन्दी-शिक्षा की ओर ध्यान दिया और उसका सुपुत्र आजमशाह हिन्दी का श्रेष्ठ कवि था। मोजमशाह शाहआलम बहादुर शाह जफर (शासन काल 1707 इ1-1712 ई.) का देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी काव्य प्रसिद्ध है। मुगल बादशाहों और मुगल दरबार का हिन्दी कविताओं की प्रथम मुद्रित झांकी 'राग

सागरोद्भव संगीत रागकल्पद्रुम' (1842-43ई.), शिवसिंह सरोज आदि में सुरक्षित है।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में देवनागरी

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में एक तरफ अँग्रेजों के आधिपत्य के कारण अँग्रेजी के प्रसार-प्रचार का सुव्यवस्थित अभियान चलाया जा रहा था तो दूसरी तरफ राजकीय कामकाज में और कचहरी में उर्दू समादृत थी। धीरे-धीरे उर्दू के फैशन और हिन्दी विरोध के कारण देवनागरी अक्षरों का लोप होने लगा। अदालती और राजकीय कामकाज में उर्दू का बोलबाला होने से उर्दू पढ़े-लिखे लोगों की भाषा बनने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक उर्दू की व्यापकता थी। खड़ी बोली का अरबी-फारसी रूप ही लिखने-पढ़ने की भाषा होकर सामने आ रहा था। हिन्दी को इससे बड़ा आघात पहुँचा।

कहा जाता है कि हिन्दी वाले भी अपनी पुस्तकें फारसी में लिखने लगे थे, जिसके कारण देवनागरी अक्षरों का भविष्य ही खतरे में पड़ गया था। जैसा कि बालमुकुन्दजी की इस टिप्पणी से स्पष्ट होता है-

जो लोग नागरी अक्षर सीखते थे, वे फारसी अक्षर सीखने पर विवश हुए और हिन्दी भाषा हिन्दी न रहकर उर्दू बन गयी। हिन्दी उस भाषा का नाम रहा जो टूटी-फूटी चाल पर देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती थी।

उस समय अनेक विचारक, साहित्यकार और सामाजकर्मी हिन्दी और नागरी के समर्थन में उस समय मैदान में उतरे। यह वह समय था जब हिन्दी गद्य की भाषा का परिष्कार और परिमार्जन नहीं हो सका था अर्थात् हिन्दी गद्य का कोई सुव्यवस्थिति और सुनिश्चित नहीं गढ़ा जा सका था। खड़ी बोली हिन्दी घुटनों के बल ही चल रही थी। वह खड़ी होने की प्रक्रिया में तो थी, मगर नहीं हो पा रही थी।

सन् 1796 ई0 - देवनागरी लिपि में मुद्राक्षर आधारित प्राचीनतम मुद्रण (जॉन गिलक्राइस्ट, हिंदूस्तानी भाषा का व्याकरण, कोलकात्ता)।

सन 1867 - आगरा और अवध राज्यों के कुछ हिन्दुओं ने उर्दू के स्थान पर हिन्दी को राजभाषा बनाये जाने की माँग की।

सन 1968 - बनारस के बाबू शिवप्रसाद ने आरम्भिक मुसलमान शासकों पर भारत के ऊपर फारसी भाषा और लिपि थोपने का आरोप लगाया। ('इतिहासतिमिरनाशक' नामक पुस्तक में)

सन् 1881 – बिहार में उर्दू के स्थान पर देवनागरी में लिखी हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया गया।

सन् 1884 – प्रयाग में मालवीयजी के प्रयास से हिन्दी हितकारिणी सभा की स्थापना की गई।

सन् 1893 ई. – काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना।

सन् 1894 – मेरठ के पंडित गौरीदत्त ने न्यायालयों में देवनागरी लिपि के प्रयोग के लिए ज्ञापन दिया जो अस्वीकृत हो गया।

20 अगस्त सन् 1896 – राजस्व परिषद ने एक प्रस्ताव पास किया कि सम्मन आदि की भाषा एवं लिपि हिन्दी होगी, परन्तु यह व्यवस्था कार्य रूप में परिणित नहीं हो सकी।

सन् 1897 – नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा गठित समिति ने 60,000 हस्ताक्षरों से युक्त प्रतिवेदन अंग्रेज सरकार को दिया। इसमें विचार व्यक्त किया गया था कि संयुक्त प्रान्त में केवल देवनागरी को ही न्यायालयों की भाषा होने का अधिकार है।

15 अगस्त सन् 1900 – शासन ने निर्णय लिया कि उर्दू के अतिरिक्त नागरी लिपि को भी अतिरिक्त भाषा के रूप में व्यवहृत किया जाये।

1905 में न्यायमूर्ति शारदा चरण मित्र ने एक लिपि विस्तार परिषद की स्थापना की, जिसका उद्देश्य भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि (देवनागरी) को सामान्य लिपि के रूप में प्रचलित करना था।

1907 में 'एक लिपि विस्तार परिषद' के लक्ष्य को आंदोलन का रूप देते हुए शारदा चरण मित्र ने परिषद की ओर से 'देवनागर' नामक मासिक पत्र निकाला, जो बीच में कुछ व्यवधान के बावजूद उनके जीवन पर्यन्त, यानी 1917 तक निकलता रहा।

1935 में काका कालेलकर की अध्यक्षता में नागरी लिपि सुधार समिति बनायी गयी।

9 सितंबर 1949 – संविधान के अनुच्छेद 343 में संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी निधारित की गयी।

सन् 1975 में आचार्य विनोबा भावे के सत्प्रयासों से नागरी लिपि परिषद्, नई दिल्ली की स्थापना हुई, जो नागरी संगम नामक त्रैमासिक पत्रिका निकालती है।

विभिन्न भाषाओं में प्रयुक्त देवनागरी

संस्कृत, हिन्दी, मराठी, उर्दू, सिन्धी आदि को लिखने में प्रयुक्त देवनागरी में थोड़ा बहुत अन्तर पाया जाता है।

(1) फारसी के प्रभावस्वरूप कुछ परंपरागत तथा नवागत ध्वनियों के लिए कुछ लोग नागरी में भी नुक्ते का प्रयोग करते हैं।

(2) मराठी लिपि के प्रभाव स्वरूप पुराने 'अ' के स्थान पर 'अ' या ओ अु आदि रूपों में सभी स्वरों के लिए 'अ' ही का प्रयोग होने लगा था। ये अब नहीं होता।

(3) अंग्रेजी के प्रभाव के स्वरूप से ऑफिस, कॉलेज जैसे शब्दों में ऑ का प्रयोग होने लगा हैं।

(4) उच्चारण के प्रति सतर्कता के कारण कभी-कभी हर्स्व ए, हर्स्व ओ को दर्शाने के लिए कुछ लोग (बहुत कम) घा, ऑ का प्रयोग करते है।

(5) यूनिकोड देवनागरी में सिन्धी आदि अन्य भाषाओं को लिखने की सामर्थ्य के लिए कुछ नये 'वर्ण' भी सम्मिलित किए गये हैं (जैसे, ऽ ऽ ऽ ऽ) जो परम्परागत रूप से देवनागरी में प्रयुक्त नहीं होते थे।

कम्प्यूटर-युग में देवनागरी

कम्प्युटर युग में सबसे आरम्भ में देवनागरी के लिए विभिन्न (कृतिदेव, आकृति आदि) फॉण्टों का प्रयोग किया गया, जिन्हें अब 'लिगेसी फॉण्ट' (कालातीत फॉण्ट) कहते हैं। बाद में यूनिकोड का प्रचलन हुआ। आजकल देवनागरी के लिए अनेकानेक यूनिकोड फॉण्ट (जैसे मंगल, गार्गी, आदि) उपलब्ध हैं। यूनिकोड के आगमन के कारण देवनागरी लगभग सभी ऑपरेटिंग सिस्टमों और सभी अभिकलनी युक्तियों (डेस्कटॉप्प, लैपटॉप, तैब, स्मार्टफोन आदि) पर और सभी सॉफ्टवेयरों (अनुप्रयोगों) पर काम कर रही है।

भाषाविज्ञान की दृष्टि से देवनागरी

भाषावैज्ञानिक दृष्टि से देवनागरी लिपि अक्षरात्मक (सिलेबिक) लिपि मानी जाती है। लिपि के विकाससोपानों की दृष्टि से 'चित्रत्मक', 'भावात्मक' और 'भावचित्रत्मक' लिपियों के अनंतर 'अक्षरात्मक' स्तर की लिपियों का विकास माना जाता है। पाश्चात्य और अनेक भारतीय भाषाविज्ञानविज्ञों के मत से लिपि की अक्षरात्मक अवस्था के बाद अल्फाबेटिक (वर्णात्मक) अवस्था का

विकास हुआ। सबसे विकसित अवस्था मानी गई है ध्वन्यात्मक (फोनेटिक) लिपि की। 'देवनागरी' को अक्षरात्मक इसलिए कहा जाता है कि इसके वर्ण-अक्षर (सिलेबिल) हैं- स्वर भी और व्यंजन भी। 'क', 'ख' आदि व्यंजन सस्वर हैं- अकारयुक्त हैं। वे केवल ध्वनियाँ नहीं हैं अपितु सस्वर अक्षर हैं। अत: ग्रीक, रोमन आदि वर्णमालाएँ हैं। परंतु यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि भारत की 'ब्राह्मी' या 'भारती' वर्णमाला की ध्वनियों में व्यंजनों का 'पाणिनि' ने वर्णसमाम्नाय के 14 सूत्रों में जो स्वरूप परिचय दिया है- उसके विषय में 'पतंजलि' (द्वितीय शती ई.पू.) ने यह स्पष्ट बता दिया है कि व्यंजनों में संनियोजित 'अकार' स्वर का उपयोग केवल उच्चारण के उद्देश्य से है। वह तत्त्वत: वर्ण का अंग नहीं है। इस दृष्टि से विचार करते हुए कहा जा सकता है कि इस लिपि की वर्णमाला तत्त्वत: ध्वन्यात्मक है, अक्षरात्मक नहीं।

देवनागरी लिपि के दोष

(1) कुल मिलाकर 403 टाइप होने के कारण टंकण, मुद्रण में कठिनाई।
(2) कुछ लोग शिरोरेखा का प्रयोग अनावश्यक मानते हैं।
(3) अनावश्यक वर्ण (ऋ, ६, ऌ, ६, ष)– अधिकांश लोग इनका शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते।
(4) द्विरूप वर्ण (अ, ज्ञ, क्ष, त्र, छ, झ, ण, श) आदि को दो-दो प्रकार से लिखा जाता है।
(5) समरूप वर्ण (ख में ख़ का, घ में ध का, म में भ का भ्रम होना)।
(6) वर्णों के संयुक्त करने की व्यवस्था एकसमान नहीं है।
(7) अनुस्वार एवं अनुनासिक के प्रयोग में एकरूपता का अभाव।
(8) त्वरापूर्ण लेखन नहीं, क्योंकि लेखन में हाथ बार-बार उठाना पड़ता है।
(9) वर्णों के संयुक्तीकरण में र के प्रयोग को लेकर अनेक लोगों को भ्रम की स्थिति।
(11) इ की मात्र ि( ) का लेखन वर्ण के पहले, किन्तु उच्चारण वर्ण के बाद।

देवनागरी पर महापुरुषों के विचार

आचार्य विनोबा भावे संसार की अनेक लिपियों के जानकार थे। उनकी स्पष्ट धारणा थी कि देवनागरी लिपि भारत ही नहीं, संसार की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। अगर भारत की सब भाषाओं के लिए इसका व्यवहार चल

पड़े तो सारे भारतीय एक दूसरे के बिल्कुल नजदीक आ जाएंगे। हिंदुस्तान की एकता में देवनागरी लिपि हिंदी से ही अधिक उपयोगी हो सकती है। अनन्त शयनम् अयंगार तो दक्षिण भारतीय भाषाओं के लिए भी देवनागरी की संभावना स्वीकार करते थे। सेठ गोविन्ददास इसे राष्ट्रीय लिपि घोषित करने के पक्ष में थे।

(1) हिन्दुस्तान की एकता के लिये हिन्दी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत अधिक काम देवनागरी लिपि दे सकती है।

आचार्य विनोबा भावे

(2) देवनागरी किसी भी लिपि की तुलना में अधिक वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित लिपि है।

सर विलियम जोन्स

(3) मानव मस्तिष्क से निकली हुई वर्णमालाओं में नागरी सबसे अधिक पूर्ण वर्णमाला है।

जान क्राइस्ट

(4) उर्दू लिखने के लिये देवनागरी लिपि अपनाने से उर्दू उत्कर्ष को प्राप्त होगी।

(5) प्राचीन भारत के महत्तम उपलब्धियों में से एक उसकी विलक्षण वर्णमाला है, जिसमें प्रथम स्वर आते हैं और फिर व्यंजन जो सभी उत्पत्ति क्रम के अनुसार अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकृत किये गए हैं। इस वर्णमाला का अविचारित रूप से वर्गीकृत तथा अपर्याप्त रोमन वर्णमाला से, जो तीन हजार वर्षों से क्रमशः विकसित हो रही थी, पर्याप्त अंतर है।

भारत के लिये देवनागरी का महत्त्व

बहुत से लोगों का विचार है कि भारत में अनेकों भाषाएँ होना कोई समस्या नहीं है जबकि उनकी लिपियाँ अलग-अलग होना बहुत बड़ी समस्या है। गांधीजी ने 1940 में गुजराती भाषा की एक पुस्तक को देवनागरी लिपि में छपवाया और इसका उद्देश्य बताया था कि मेरा सपना है कि संस्कृत से निकली हर भाषा की लिपि देवनागरी हो।

इस संस्करण को हिंदी में छापने के दो उद्देश्य हैं। मुख्य उद्देश्य यह है कि मैं जानना चाहता हूँ कि, गुजराती पढ़ने वालों को देवनागरी लिपि में पढ़ना कितना अच्छा लगता है। मैं जब दक्षिण अफ्रीका में था तब से मेरा स्वप्न है कि संस्कृत से निकली हर भाषा की एक लिपि हो और वह देवनागरी हो। पर यह अभी भी स्वप्न ही है। एक-लिपि के बारे में बातचीत तो खूब होती हैं, लेकिन वही 'बिल्ली के गले में घंटी कौन बांधे' वाली बात है। कौन पहल करे ! गुजराती कहेगा 'हमारी लिपि तो बड़ी सुन्दर सलोनी आसान है, इसे कैसे छोड़ूंगा?' बीच में अभी एक नया पक्ष और निकल के आया है, वह ये, कुछ लोग कहते हैं कि देवनागरी खुद ही अभी अधूरी है, कठिन है, मैं भी यह मानता हूँ कि इसमें सुधार होना चाहिए। लेकिन अगर हम हर चीज के बिल्कुल ठीक हो जाने का इंतजार करते रहेंगे तो सब हाथ से जायेगा, न जग के रहोगे न जोगी बनोगे। अब हमें यह नहीं करना चाहिए। इसी आजमाइश के लिए हमने यह देवनागरी संस्करण निकाला है। अगर लोग यह (देवनागरी में गुजराती) पसंद करेंगे तो 'नवजीवन पुस्तक' और भाषाओं को भी देवनागरी में प्रकाशित करने का प्रयत्न करेगा।

इस साहस के पीछे दूसरा उद्देश्य यह है कि हिंदी पढ़ने वाली जनता गुजराती पुस्तक देवनागरी लिपि में पढ़ सके। मेरा अभिप्राय यह है कि अगर देवनागरी लिपि में गुजराती किताब छपेगी तो भाषा को सीखने में आने वाली आधी दिक्कतें तो ऐसे ही कम हो जाएँगी।

इस संस्करण को लोकप्रिय बनाने के लिए इसकी कीमत बहुत कम राखी गयी है, मुझे उम्मीद है कि इस साहस को गुजराती और हिंदी पढ़ने वाले सफल करेंगे।

इसी प्रकार विनोबा भावे का विचार था कि–हिन्दुस्तान की एकता के लिये हिन्दी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत अधिक काम देवनागरी लिपि देगी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि सभी भाषाएँ देवनागरी में भी लिखी जाएँ। सभी लिपियाँ चलें लेकिन साथ-साथ देवनागरी का भी प्रयोग किया जाये। विनोबा जी 'नागरी ही' नहीं 'नागरी भी' चाहते थे। उन्हीं की सद्प्रेरणा से 1975 में नागरी लिपि परिषद की स्थापना हुई।

भारतीय भाषाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भारत की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं की (उर्दू और सिंधी को छोड़कर) लिपियां ब्राह्मी लिपि से ही

उद्‌भूत हैं। देवनागरी, ब्राह्मी लिपि की सबसे व्यापक, विकसित और वैज्ञानिक लिपि है, जो भारतीय भाषाओं की सहोदरा लिपि होने के नाते इन सबके बीच स्वाभाविक रूप से संपर्क लिपि का कार्य कर सकती है। यदि हम इन भाषाओं के साहित्य को उनकी अपनी-अपनी लिपियों के अलावा एक समान लिपि देवनागरी लिपि में भी उपलब्ध करा दें, तो इन भाषाओं का साहित्य अन्य भाषाभाषियों के लिए भी सुलभ हो सकेगा। नागरी लिपि इन भाषाओं के बीच सेतु का कार्य कर सकेगी।

इसी लिए आधुनिक युग के हमारे अग्रणी नेताओं, प्रबुद्ध विचारको और मनीषियों ने राष्ट्रीय एकता के लिए देवनागरी के प्रयोग पर बल दिया था। निश्चय ही ये सभी विचारक हिंदी क्षेत्रों के नहीं थे, अपितु इतर हिंदी प्रदेशों के ही थे। उनका मानना था कि भावात्मक एकता की दृष्टि से भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि का होना आवश्यक है और यह लिपि केवल देवनागरी ही हो सकती हैं। श्री केशववामन पेठे, राजा राममोहन राय, शारदाचरण मित्र (1848-1916) ने नागरी लिपि के महत्त्व को समझते हुए देश भर में इसके प्रयोग को बढ़ाने की आवाज उठायी थी।

शारदाचरण मित्र ने इसे 'राष्ट्र लिपि' बताया और अगस्त 1905 में एक 'लिपि विस्तार परिषद' की स्थापना की। उन्होने 1907 में 'देवनागर' नाम से एक पत्रिका भी निकाली, जिसमें कन्नड़, तेलुगु, बांग्ला आदि की रचनाएँ नागरी लिपि में प्रकाशित की जाती थीं। लोकमान्य तिलक और गांधीजी ने देश की एकता के लिए एक लिपि की आवश्यकता पर बल दिया। गुजरात में जन्मे महर्षि दयानंद सरस्वती, दक्षिण के कृष्णस्वामी अय्यर तथा अनन्तशयनम् अयंगर और मुहम्मद करीम छागला ने भी नागरी लिपि के महत्त्व पर बल दिया। महात्मा गांधी चाहते थे कि भारत में भाषायी एकता के लिए एक समान लिपि की आवश्यकता है। एक स्थान पर उन्होने लिखा है 'लिपि विभिन्नता के कारण प्रांतीय भाषाओं का ज्ञान आज असंभवा सा हो गया है। बांग्ला लिपि में लिखी हुई गुरुदेव की गीतांजलि को सिवाय बंगालियों के और कौन पढ़ेगा पर यदि वह देवनागरी में लिखी जाये, तो उसे सभी लोग पढ़ सकते हैं। 'आज दक्खनी हिंदी की भी यही स्थिति है, जिसका लगभग 400 वर्षों का अपार साहित्य फारसी लिपि में होने के कारण हिंदी शोधार्थियों की दृष्टि से ओझल है। कहना न होगा कि लिपिभेद के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास की इस कड़ी को हम अभी तक जोड़ नहीं पाये हैं।

उर्दू और हिंदी भी लिपि भेद के कारण मूलरूप से एक होते हुए भी अलग अलग भाषाएँ बनी हुई हैं। यदि उर्दू भाषा की वैकल्पिक लिपि के रूप में नागरी को अपना लें, तो उर्दू को लोकप्रिय बनाने में बड़ी सहायता मिलेगी। महाराष्ट्र के भूतपूर्व राज्यपाल स्वर्गीय श्री अलीयावर जंग ने कहा था, 'मेरा मत है कि उर्दू साहित्यकार को अपनी लिपि चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए, लेकिन देवनागरी लिपि को देश में जोड़लिपि के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।

आचार्य विनोबा भावे ने नागरी लिपि के महत्व को स्वीकार करते हुए यहां तक कहा था 'हिंदुस्तान की एकता के लिए हिंदी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत अधिक काम देवनागरी देगी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि सभी भाषाएँ सिर्फ देवनागरी में भी लिखी जाएं। 'सभी लिपियां चलें लेकिन साथ साथ देवनागरी का भी प्रयोग किया जाये। विनोबा जी 'नागरी ही' नहीं 'नागरी भी' चाहते थे। उन्हीं की सद्प्रेरणा से 1975 में नागरी लिपि परिषद की स्थापना हुई, जो भारत की एकतात्र ऐसी संस्था है, जो नागरी लिपि के प्रचार प्रसार में लगी है। 1961 में पं जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में सम्पन्न मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन में भी यह सिफारश की गयी कि, 'भारत की सभी भाषाओं के लिए एक लिपि अपनाना वांछनीय हैं। इतना ही नहीं, यह सब भाषाओं को जोड़ने वाली एक मजबूत कड़ी का काम करेगी और देश के एकीकरण में सहायक होगी। भारत की भाषायी स्थिति में यह जगह केवल देवनागरी ले सकती है। '16-17 जनवरी 1960 को बेंगलोर में आयोजित 'ऑल इण्डिया देवनागरी कांग्रेस' में श्री अनंतशयनम् आयंगर ने भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी को अपनाये जाने का समर्थन किया था। नि:संदेह देवनागरी लिपि में वे गुण हैं, वह सभी भारतीय भाषाओं को जोड़ सकती है। यह संसार की सबसे अधिक वैज्ञानिक और ध्वन्यात्मक लिपि जो है।

राष्ट्रलिपि

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने जिस प्रकार 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' - की घोषणा करके राष्ट्र को स्वतंत्रता का मंत्र दिया, उसी प्रकार उन्होंने राष्ट्र लिपि के रूप में नागरी तथा राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की घोषणा काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सन 1905 में की थी। तिलकजी ने यह ऐतिहासिक घोषणा भारतीय कांग्रेस के सन् 1905 के बनारस अधिवेशन के

अवसर पर की थी। इस घोषणा के महत्त्व को समझकर देश के नेताओं ने संविधान सभा में हिंदी को राजभाषा के स्थान पर राष्ट्रभाषा और नागरी लिपि को राष्ट्र लिपि स्वीकार किया होता तो वह आज देश की एकता और अखंडता का सक्षम माध्यम होती।

लोकमान्य तिलकजी ने प्राचीन ताम्रपत्र एवं ग्रंथों में हस्तलिखित नागरी लिपि के प्रयोग का उल्लेख करते हुए भाषा शास्त्र की दृष्टि से उसका प्रतिपादन किया था और उन्होंने कहा था कि 'भारत में मापतौल की एक ही पद्धति चलती है। उसी प्रकार हिन्दुस्तान में सर्वत्र एक ही लिपि का प्रचार होना चाहिए।

सन् 1910 में मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री वी कृष्ण स्वामी अय्यर ने विभिन्न लिपियों के व्यवहार से बढ़ने वाली अनेकता और भारतीय भाषाओं के बीच पनपती दूरी पर चिंता व्यक्त करते हुए सहलिपि के रूप में देवनागरी का समर्थन किया। श्री रामानन्द चटर्जी ने 'चतुर्भाषी नामक पत्र निकाला जिसमें बंगला, मराठी, गुजराती और हिंदी की रचनाएँ देवनागरी लिपि में छपती थी। राजा राममोहनराय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ही नहीं, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय भी देवनागरी लिपि के प्रबल समर्थक थे। विद्यासागर जी चाहते थे कि भारतीय भाषाओं के लिए नागरी लिपि का व्यवहार अतिरिक्त लिपि के रूप में किया जाए, जबकि बंकिम बाबू का मत था कि भारत में केवल देवनागरी लिपि का व्यवहार किया जाना चाहिए। बहादुरशाह जफर के भतीजे वेदार बख्त ने 'पयाम-ए-आजादी' पत्र साथ-साथ देवनागरी और फारसी लिपि में प्रकाशित किया। महर्षि दयानंद ने अपना सारा वाड्मय देवनागरी में लिखा। उनके प्रभाव से देवनागरी का व्यापक प्रचार हुआ।

मेरठ में गौरीदत्त शर्मा ने सन् 1870 के लगभग 'नागरीसभा' का गठन किया और स्वामीजी की प्रेरणा से अनेक लोग नागरी के प्रसार में जी जान से जुट गये। आज मेरठ में देवनागरी कालेज उन्हीं की कृपा से सफल है। श्री भूदेव मुखोपाध्याय ने बिहार की अदालतों में देवनागरी का प्रयोग आरंभ कराया, जिसकी प्रशंसा संस्कृत के उपन्यासकार अंबिकादत्त व्यास ने अपने गीतों में की है। भारतेंदु हरिशचन्द्र, कालाकांकर नरेश, राजा रामपाल सिंह, अलीगढ़ के बाबू तोता राम, बाबू श्यामसुंदर दास, बाबू राधाकृष्ण दास और पं. मदनमोहन मालवीय के सत्प्रयत्न रंग लाएँ और उत्तर प्रदेश के न्यायालयों में देवनागरी के वैकल्पिक प्रयोग का रास्ता साफ हुआ। महात्मा गांधी राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी अपनाने के कट्टर हिमायती थे। पं. जवाहर लाल नेहरू सभी

भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली मजबूत कड़ी के रूप में देवनागरी लिपि को अपनाने के समर्थक थे।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद चाहते थे कि भारत की प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य देवनागरी के माध्यम से हर भारतीय को आस्वादन के लिए उपलब्ध होना चाहिए। स्वातंत्रवीर सावरकर नागरी को 'राष्ट्रलिपि' के रूप में मान्यता देने के पक्ष में थे। लाला लाजपतराय राष्ट्रव्यापी मेल और राजनैतिक एकता के लिए सारे भारत में देवनागरी का प्रचार, आवश्यकता मानते थे। 1924 में शहीद भगत सिंह ने लिखा था- 'हमारे सामने इस समय मुख्य प्रश्न भारत का एक राष्ट्र बनाने के लिए एक भाषा होना आवश्यक है, परन्तु यह एकदम नहीं हो सकता। उसके लिए कदम-कदम चलना पड़ता है। यदि हम सभी भारत की एक भाषा नहीं बना सकते तो कम से कम लिपि तो एक बना देनी चाहिए। रेवरेण्ड जॉन डिनी लिखते हैं- 'चूंकि लाखों भाषाभाषी पहले से ही नागरी लिपि जानते हैं, इसलिए मैं महसूस करता हूँ कि बिल्कुल नहीं लिपि के प्रचलन की अपेक्षा किंचित संवर्द्धित नागरी लिपि को ही अपनाना अधिक वास्तविक होगा।

17 मार्च 1967 को सेठ गोविंददास जी ने एक बहुत बड़े समुदाय के सामने प्रस्ताव रखा कि सारी प्रादेशिक भाषाएँ देवनागरी लिपि में ही लिखी जाएं। इस देश की एकता को बनाए रखने के लिए और एक-दूसरे के साथ सम्पर्क बढ़ाने के लिए और इस देश की हर भाषा के साहित्य को समझना है तो हमें एक लिपि की आवश्यकता है। वह लिपि देवनागरी लिपि ही हो सकती है।

देवनागरी में गालिब, मीर, नजीर आदि की पुस्तकें लगभग 1 करोड़ रुपये की बिक चुकी हैं। आज जनजातियों की बेहद उपेक्षा हुई। उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा से अलग-थलग कर विदेशी मिशनरियों के आसरे छोड़ दिया गया। उन्हें भारतीय होने का गौरव मध्य क्षेत्र में संथाल, मुण्डा, चकमा आदि तथा दक्षिण क्षेत्र में मिला जहां चेंचू, कांटा, कुरुम्ब जनजातियाँ रहती हैं। अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में ओगो, शोम्पेन आदि जनजातियां पाई जाती हैं।

सहलिपि के रूप में देवनागरी राष्ट्रलिपि का रूप ग्रहण कर सकती है। इससे श्रम, समय और धन की बचत तो होगी ही राष्ट्रीय भावना और पारस्परिक आत्मीयता की अभिवृद्धि भी होगी। इससे पृथक्तावाद के विषाणुओं का विनाश होगा और अखण्डता की भावना सबल होगी। भारतीय साहित्य के वास्तविक स्वरूप पर परिचय मिलेगा तथा सारी भाषाएँ एक-दूसरे के निकट आकर

स्नेह-सूत्र में गुम्फित हो जाएंगी। उनके बीच की विभेद की दीवार ढह जाएगी और आसेतु हिमालय सामाजिक समरता परिपुष्ट होगी। यही नहीं, सारी भारतीय भाषाओं को अखिल भारतीय बाजार मिलेगा, उनकी खपत बढ़ेगी और शोध को अखिल भारतीय स्तर प्राप्त होगा। न केवल शब्द-भंडार का साम्य, बल्कि भाव और प्रवृत्तियों का साम्य भी परिलक्षित होगा और एक भाषा बोलने वाला दूसरी भाषा और इसके साहित्य के सौष्ठव तथा वैशिष्ट्य का भरपूर आस्वादन कर सकेगा। इसीलिए खुशवंत सिंह ने उर्दू साहित्य को देवनागरी में लिखने का समर्थन किया है।

2

हिन्दी : भाषा और साहित्य

हिन्दी की जड़ें प्राचीन भारत की संस्कृत भाषा में तलाशी जा सकती हैं। परंतु हिन्दी साहित्य की जड़ें मध्ययुगीन भारत की अवधी, मागधी, अर्धमागधी तथा मारवाड़ी जैसी भाषाओं के साहित्य में पाई जाती हैं। हिंदी में गद्य का विकास बहुत बाद में हुआ और इसने अपनी शुरुआत कविता के माध्यम से जो कि ज्यादातर लोकभाषा के साथ प्रयोग कर विकसित की गई। हिंदी का आरंभिक साहित्य अपभ्रंश में मिलता है। हिंदी में तीन प्रकार का साहित्य मिलता है। गद्य पद्य और चम्पू। हिंदी की पहली रचना कौन-सी है इस विषय में विवाद है, लेकिन ज्यादातर साहित्यकार देवकीनन्दन खत्री द्वारा लिखे गये उपन्यास चंद्रकांता को हिन्दी की पहली प्रामाणिक गद्य रचना मानते हैं। भाषा वैज्ञानिक हमें शब्द देते हैं, लेकिन साहित्यकार उन शब्दों को चुनकर एक रचना को जन्म देते हैं। भाषा वैज्ञानिक वाक्य संरचना का ज्ञान कराते हैं, लेकिन साहित्यकार वाक्य का अर्थ सुरक्षित रखते हुए रचना में लालित्य पैदा करते हैं।

भाषा वैज्ञानिक लेखन में भाषा अनुशासन का पाठ पढाते हैं, लेकिन साहित्यकार किसी भी भाषायी अनुशासन से परे शब्दों के जोड-तोड के जादू से पाठक के दिलों में समा जाते हैं। भाषा और साहित्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भाषा है तो साहित्य है और जब साहित्य होता है तब भाषा स्वत: ही विकासमान होती है। वर्तमान में हिन्दी भाषा दुनिया भर में अपनी पहचान बना चुकी है। इस विकास का एकमात्र आधार है समन्वय। हिन्दी भाषा ने न केवल

भारत की अपितु विश्व की अनेक भाषाओं के शब्दों से अपने आपको परिपूर्ण किया और आज भी अनेक शब्दों को अपने अंदर समाहित कर रही है। यदि हम हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो अनेक पहलू निकलकर आएँगे।

हिन्दी भाषा का विकास क्रम

हिन्दी साहित्य की दृष्टि से सम्वत् 769 से 1318 के काल को आदिकाल की संज्ञा दी गयी है। इस काल में संस्कृत, अपभ्रंश (प्राकृत एवं पालि) एवं हिन्दी भाषा, साहित्य की भाषाएँ थीं। संस्कृत उच्च एवं राजवर्ग की, अपभ्रंश धर्म प्रसार की एवं हिन्दी लोक प्रवृत्ति की भाषा बन गयी थी। इस काल में संस्कृत में व्याकरण का अनुशासन चरम पर था इस कारण संस्कृत भाषा का विस्तार ठहर गया और धर्म प्रसार के लिए सरल भाषा का प्रयोग करने की आवश्यकता अनुभव की गयी इस कारण अपभ्रंश या प्राकृत भाषा का निर्माण होने लगा। इस काल में तुर्की, फारसी और अरबी भाषा भारत में आ चुकी थी। भारत में अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ भी विद्यमान थीं अत: संस्कृत और प्राकृत के बाद हिन्दी भाषा तीव्रता से विस्तार लेने लगी। हिन्दी भाषा चूँकि सभी भाषाओं के मेल से बनी थी इस कारण इसमें शब्दों की प्रचुरता रही और इसी कारण यह भाषा आगे चलकर साहित्य की भाषा बनी।

अंग्रजों के आगमन के बाद सन् 1780 से अंग्रेजी भाषा को स्थापित करने के लिए शिक्षा प्रणाली विकसित की गयी और कॉलेज खुलने प्रारम्भ हुए। अत: कुछ नवीन शब्द अंग्रेजी के भी हिन्दी भाषा में सम्मिलित हो गए। विद्वानों का मत है कि संस्कृत भाषा में जब से व्याकरण की अनिवार्यता लागू की गयी, तब से संस्कृत भाषा के विस्तार पर विराम लग गया अत: हिन्दी भाषा के विकास में अन्य भाषाओं एवं व्याकरण का कठोर अनुशासन नहीं होने से वह वर्तमान तक विस्तार लेती चली गयी। स्वतंत्रता के समय हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता मिली। यही कारण है कि आज हिन्दी सम्पूर्ण भारत में बोली और समझी जा रही है। हिन्दी आज भारत में 18 करोड लोगों की मातृभाषा है और 30 करोड लोगों ने द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी को स्थान दिया है। विदेशों में भी अमेरिका, मॉरिशस, साउथ अफ्रीका, यमन, युगाण्डा, सिंगापुर, नेपाल, न्यूजीलेण्ड, जर्मनी आदि देशों में भी भारतीय मूल के निवासियों की भाषा हिन्दी ही है। भारत से गए अप्रवासी भारतीयों ने भी हिन्दी को अपनी भाषा बनाया हुआ

है अत: आज हिन्दी दुनिया के प्रत्येक कोने में बोली जाती है। इतना ही नहीं 1999 के एक सर्वेक्षण के आधार पर हिन्दी विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं में पाँचवें स्थान पर है और 1998 के एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार हिन्दी भाषा द्वितीय स्थान पर है। हिन्दी में तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों का भी स्थान है तथा अंग्रेजी के शब्दों को भी सम्मिलित करने के बाद इसकी शब्द संख्या का भी निरन्तर विस्तार हो रहा है। अत: आज हिन्दी में सर्वाधिक शब्द संख्या है।

हिन्दी भाषा के विभिन्न काल

डॉ. नगेन्द्र की पुस्तक? हिन्दी साहित्य का इतिहास? और डॉ. लक्ष्मी लाल वैरागी की पुस्तक? हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास? तथा इन्टरनेट पर उपलब्ध जानकारी के अनुसार हिन्दी भाषा के तीन प्रमुख काल माने जाते हैं।

आदिकाल–डॉ. नगेन्द्र के अनुसार संस्कृत भाषा का काल ईसा पूर्व 1500 से 500 ई.पू. का है, पालि भाषा का काल 500 से पहली ईस्वी तक, अपभ्रंश काल 500 से 1000 ई. तक और हिन्दी का काल 1000 ई. से आगे का काल है। अत: हिन्दी का आदिकाल 1000 से 1500 ई. माना जाता है।

मध्यकाल–1500 से 1800 ई. तक का काल मध्यकाल माना गया है।

आधुनिक काल–1800 से वर्तमान तक का काल आधुनिक काल माना गया है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार? स्वतंत्रता के समय अन्य देश भी स्वतंत्र हुए और लोकतंत्र तथा साम्यवादी सरकारें समान रूप से निराशाजनक सिद्ध हुई। व्यक्ति या तो व्यवस्था का पुर्जा हो गया या प्रविधि का। उसका अपना व्यक्तित्त्व और पहचान खो गयी। इस खोऐ हुए व्यक्तित्त्व की खोज प्रक्रिया का नाम आधुनिकता है।?

डॉ. वैरागी ने भी अपनी पुस्तक में हिन्दी के इन कालों की व्याख्या की है और दोनों ही विद्वानों ने एक अलग व्याख्या भी की है, जिसके अनुसार निम्न कालखण्डों का विवरण दिया है- रीतिकाल, वीरगाथाकाल, चारणकाल, सिद्ध सामन्त काल, छायावाद और प्रगतिवादी काल।

हिन्दी भाषा जब अस्तित्त्व में आयी तब भारतीय राजनीति का संक्रमण काल था। इस कारण भारतीय साहित्य या हिन्दी साहित्य भी प्रभावित हुआ। राजनैतिक गुलामी के कारण साहित्य पर बहुत प्रभाव पडा। जहाँ साहित्य समाज की वास्तविकता से जनता को अवगत कराता था, उनका मार्गदर्शन करता था, प्रेरित करता था वहीं साहित्य चारणों की परम्परा में चला गया। मुगलकाल में रीति

सिद्ध और रीति मुक्त कवियों का उदय हुआ। अंग्रेजों के काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का युग प्रारम्भ हुआ जिसे आधुनिक हिन्दी का काल भी कहा जाता है। भारतेन्दु का काल 1850 से 1884 का काल माना जाता है और इसके बाद प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, जयशंकर प्रसाद, फणीश्वर नाथ रेणु, सचिदानन्द वात्स्यायन, महादेवी आदि का काल रहा। इस काल में अंग्रेजों ने अंग्रेजी और ईसाइयत के प्रचार के लिए कॉलेज खोलने प्रारम्भ किए। समाचार पत्रों ने भी अपनी जगह बनाना प्रारम्भ किया, इस कारण साहित्य पद्य से निकलकर गद्य तक आ गया। अतः भारतेन्दु के काल को आधुनिक काल कहा गया। इसमें निबंध, नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, रेखा चित्र, समालोचना आदि का विकास हुआ।

छायावाद का काल 1918 से 1936 का काल माना गया। इस काल में आत्माभिव्यक्त स्वच्छंद काव्य की रचना हुई। श्री मुकुटधर पाण्डे ने कहा कि यह काव्य नहीं है अपितु कविता की छाया मात्र है। इसी नाम को आगे चलकर स्वीकृति मिली और छायावाद के नाम से एक कालखण्ड जाना गया।

छायावाद के बाद प्रगतिवाद आया। डॉ. वैरागी लिखते हैं कि? एक वाक्य में कहें तो जो चिन्तन के क्षेत्र में मार्क्सवाद है, वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद है, साम्यवाद की दिशा में मार्क्सवाद के सहारे आगे बढना प्रगतिवाद है। प्रगतिवादी साहित्य का लक्ष्य साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करना, शोषित वर्ग की दुरवस्था का वर्णन करना और शोषण तथा शोषित वर्ग के विरुद्ध शोषितों को उत्तेजित करना है।?

स्वतंत्रता के बाद जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिला, तब अनेक हिन्दी भाषा के साहित्यकारों का जन्म हुआ। लेकिन इस काल में प्रगतिवादी साहित्य का बोलबाला रहा। यह वाद सामूहिकतावाद और निश्चयवाद के विरुद्ध खडा था। उनकी दृष्टि में मनुष्य स्वतंत्र था। यहाँ मैं एक घटना के प्रति ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगी, जिसे डॉ. नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक में भी लिखा है कि 1893 में जब शिकागो में विश्वधर्म संसद को विवेकानन्द ने सम्बोधित किया तब न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून ने लिखा था कि? विश्व धर्म संसद में विवेकानन्द सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। उनको सुनने के बाद ऐसा लगता था कि उस महान् देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बडी मूर्खता है? डॉ. नगेन्द्र आगे लिखते हैं कि पश्चिम की भौतिकता से चमत्कृत देशवासियों को पहली बार यह अहसास हुआ कि हमारी अपनी परम्परा में भी कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं, जिन्हें संसार के समक्ष

गौरवपूर्ण ढंग से रखा जा सकता है। अत: जब इस देश में प्रगतिवाद के नाम पर धर्मबंधन से मुक्त स्वतंत्रता को साहित्य में स्थान मिल रहा था, उस समय एक वर्ग भारतीय श्रेष्ठ परम्पराओं एवं संस्कृति के सिद्धान्तों को साहित्य में स्थान दे रहा था।

वर्तमान में एक तरफ प्रगतिवाद के नाम पर व्यक्ति की सम्पूर्ण स्वतंत्रता की बात की जा रही है तो दूसरी तरफ भारतीय संस्कृति के अनुरूप परिवारवाद को व्यक्ति से बडा माना जा रहा है। प्रगतिवाद के कारण ही शोषित और शोषक की नवीन परिभाषाएँ दी गयीं और पश्चिम को शोषण रहित, स्वतंत्र समाज का दर्जा दिया गया और भारत को शोषक एवं पुरातनपंथी का दर्जा दिया गया। यहाँ एक बात और विचारणीय है कि लार्ड कॉर्नवालिस ने सन् 1793 में बंगाल, बिहार, उडीसा में जमींदारी प्रथा लागू कर जमीन को व्यक्तिगत सम्पति के रूप में बदल दिया। इसी के साथ पंचायत व्यवस्था भी समाप्त की गयी और उसकी जगह कचहरी आ गयी। इसी तरह जंगलों पर भी जनजातीय समाज का अधिकार समाप्त कर दिया गया। अत: भारतीय समाज में शोषण की परम्परा अंग्रेजों के काल के बाद प्रारम्भ हुई। आज प्रगतिवादी भारतीय परम्पराओं को शोषण का कारण मानते हैं, जबकि भारतीय परम्परा में न तो महिलाओं को पर्दे में रखा जाता था और न ही मैला ढोने की परम्परा थी। ये दोनों ही परम्परा मुगलकाल के बाद आयी।

अत: वर्तमान साहित्यकार को इतिहास का ज्ञान हुए बिना वह प्रगतिवाद की व्याख्या नहीं कर सकता। विवेकानन्द ने इसीलिए दुनिया को भारतीय संस्कृति का ज्ञान कराया था। आज इसी प्रकार महिला विमर्श और दलित विमर्श के नाम पर एक वर्ग संघर्ष खडा किया जा रहा है। मजेदार बात तो यह है कि महिला विमर्श, पुरुष लिख रहे हैं और दलित विमर्श अदलित लिख रहे हैं। साहित्य समाज के मध्य एकता स्थापित करने की बात करता है, लेकिन आज प्रगतिवाद के नाम पर संघर्ष को स्थापित करने की बात की जा रही है। इसी कारण महिलाओं और दलितों के अधिकारों को दिलाने के स्थान पर महिलाओं को केवल महिला बनाना और दलितों को भी दलित ही रखते हुए वर्ग संघर्ष को हवा दी जा रही है।

अन्त में, मैं इतना ही कहना चाहूँगी कि हिन्दी भाषा और साहित्य वर्तमान युग की आवश्यकता है। आज के युवा को जब तक हिन्दी साहित्य के साथ नहीं जोडा जाएगा तब तक दुनिया में शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती। प्रगतिवाद

के नाम पर व्यक्ति की भौतिक और मानसिक प्रगति की बात की जानी चाहिए और इसके लिए भारतीय साहित्य का पुनर्लेखन आवश्यक है।

हिन्दी का विकासशील स्वरूप

विकासशीलता भाषा का प्रकृत गुण है उसकी जीवंतता का लक्षण है। जीवन के नानाविष व्यापारों की अभिव्यक्ति के लिए व्यवहृत होने वाली वह प्रत्येक भाषा जो अपना संसर्ग दूसरी भाषाओं से बनाए रखती है और ज्ञान के नित नूतन संदर्भों से जुड़ती रहती है, अपनी जीवंतता बनाए रखती है और विकसित होती रहती है। दूसरे शब्दों में, व्यवहारधर्मिता और गतिमयता भाषा की विकासशीलता को सूचित करने वाली दो प्रमुख विशेषताएं है।

पदार्थ अथवा विकास की दो गतियाँ अथवा दिशाएं हैं–

(1) प्रौढ़ अथवा शसक्त होते जाना और

(2) प्रकृति द्वारा निर्धारित ऊँचाई तक बढ़ना। चूंकि मनुष्य बुद्धि सम्पन्न चेतन प्राणी है, उसकी प्रौढ़ता और विकास का पता उसके बुद्धि कौशल, विवेक, चितन, आचार व्यवहार और उसकी सभ्यता से लगता है और दूसरी ओर उसके अंगों की माप से उसके शारीरिक विकास का निश्चय होता है। दोनों का समुचित विकास ही सच्चा व्यक्तित्त्व निर्माता है।

भाषा का विकास भी इसी प्रकार की दो दिशाओं में होता है। एक ओर वह प्रौढ़ होती चलती है और दूसरी ओर उसका प्रसार होता जाता है। पहली स्थिति उसकी अर्थगर्भिता की सूचक है और दूसरी उसकी व्यापक स्वीकृति की। पहली से यदि उसके अंतरंग विकास का द्योतन होता है तो दूसरी से बहिरंग का। दोनों के सम्मिलन से भाषा समृद्ध और विशेष प्रभावशालिनी बनती है।

हिन्दी के विकासशील होने का अर्थ भी यही है कि वह एक ओर अपने अंतरंग का विकास करती चले और दूसरी ओर व्यापक स्वीकृति पाती जाए। यों सामान्यत: यह आशा किसी भी भाषा से की जानी चाहिए, किंतु हिन्दी पर इसका विशेष दायित्व इसलिए है कि भारतीय संविधान के अनुसार उसे संघ की राजभाषा और विभिन्न प्रदेशों के बीच सम्पर्क भाषा की भूमिका भी निभानी है। स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठे कि हिन्दी किन दिशाओं में और कितनी विकसित है या कि उससे विकास के लिए क्या अपेक्षाएँ हो सकती हैं। हिन्दी इन अपेक्षाओं को कहां तक पूरा कर पा रही है या उसके लिए कौन से साधक या बाधक तत्त्व हैं और उनसे कैसे निपटा जाए।

भाषा के विकास की जिन दो स्थितियों की ऊपर चर्चा की गई है, उन्हें हम क्रमशः गुणात्मक विकास तथा संख्यात्मक विकास भी कह सकते हैं। निसंदेह संख्यात्मक विकास भी किसी भाषा के इतिहास में, उसके अधिकार का निश्चायक होता है, किंतु उसकी स्थिति एक ऐसे उपकारक तत्त्व की सी है जिसकी सत्ता किसी दूसरे तत्त्व की तुलना में गौण महत्त्व की होती है। भाषा के संदर्भ में गुणात्मक ही प्रधान रूप से महत्त्वपूर्ण है। इसके बिना कोई भाषा अधिकारिक प्रयोक्ताओं को सहयोग प्राप्त नहीं कर सकती। हिन्दी के पक्ष में संख्यात्मकता का बड़ा बल रहा है और आज भी वह है, किंतु न तो सदैव उसी को एकमात्र आधार मानकर उस पर निर्भर रहा जा सकता है और न इसे भुलाया जा सकता है कि उसके संख्यात्मक विकास में पहले भी उसका गुणात्मक विकास ही कारण था। आज की स्थिति में उस दिशा में उसका विकास और भी अधिक वांछित है। गुणात्क विकास की दो विशेषताएँ हो सकती हैं, ललित साहित्य के रूप में उसकी प्रौढ़ता का विकास और ज्ञानात्मक साहित्य की रचना और उसकी अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास।

आज जिस संदर्भ में हिन्दी का विचार किया जा रहा है, उसमें ललित साहित्य के रूप में उसकी प्रौढ़ता का दर्शन उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह बात इस संदर्भ में बहुत प्रासंगिक नहीं है कि हिन्दी राष्ट्र की इस या उस भाषा की तुलना में कम सशक्त और प्रौढ़ है। राष्ट्र के सामने जो चुनौती है वह ललित साहित्य को लेकर नहीं है, व्यावहारिक धरातल पर भाषिक संपर्क और उसके माध्यम से पारस्परिक सहयोग की भूमि तैयार करने की है।

ललित साहित्य हो अथवा ज्ञानात्मक, दोनों ही संदर्भों में, किसी भाषा को दो स्तरों पर विकसित होना ओर अपनी क्षमता का परिचय देना पड़ता है। एक के अंतर्गत साहित्य की नाना प्रकार की विधाएँ रखी जा सकती हैं और देखा जा सकता है कि उसमें अधिकाधिक कितनी विधाओं में रचना हो रही है, दूसरा है विशेष विधाओं के लिए उपयुक्त भाषा और शब्दावली का विधान। हिन्दी के विकास के प्रसंग में भी इन दोनों बातों का समान महत्त्व है।

मनुष्य की बुद्धि ने जीवन और जगत के रहस्य को जानने और और उसकी अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग करने का सदियों पहले से जो उपक्रम किया है उसके परिणाम स्वरूप अनेकविष ज्ञान शाखाओं के द्वार उन्मुक्त हुए हैं। दर्शन, गणित, ज्योतिष आयुर्वेद, कला शिल्प तथा खगोल विद्या आदि अनेक विद्या शाखाओं तक मनुष्य की पहुंच बहुत पहले ही हो चुकी थी। कालापसरण के साथ

ज्यों ज्यों मनुष्य के रागात्मक संबंध बनते बिगड़ते गये उसके जीवन की संकुलता बढ़ती गई और प्रकृति तथा मानव जीवन को लेकर स्वयं मनुष्य नए रहस्यों में उलझता और नए आविष्कार करता चला गया। यंत्र युग ने मनुष्य की अनेक पुरानी अवधारणाओं को बदला और उनकी जगह नई विधाओं तथा नई तकनीक ने ले ली। परिणामत: न केवल अनेक नई शाखाओं का विकास हुआ, या किसी एक विद्याशाखा के अन्तर्गत गृहीत विचारों में से कुछ स्वतुत्र विद्या शाखा के रूप में अधिकाधिक बढ़ता गया। तात्पर्य यह है कि आज ज्ञान के अनंत विस्तार को वाणी देने का काम सरल नहीं रह गया है। आज की विकासशील भाषा को इन सबको समेटते चलना है। पूछा जा सकता है कि क्या हिन्दी ऐसा कर पाई है?

आश्चर्यजनक नहीं होगा, यदि इस प्रश्न का उत्तर हिन्दी के पक्ष से नकारात्मक रूप में दिया जाये। जिस भाषा को सदियों विदेशी भाषाओं के शासन ने दबोच कर रखा और शिक्षा तथा कार्य व्यवहार में माध्यम के रूप में उभरने नहीं दिया है, उससे यह आशा की ही कैसे जा सकती है? यांत्रिक युग का यह एक बड़ा दूषण है कि मनुष्य पूंजी और व्यवसायिकता की दृष्टि से अपने कार्य कलाप को नियमित या नियंत्रित करता है। अतएव आधुनिक युग में जब यांत्रिकता के कारण यह संभव था कि हिन्दी का विकास हो तब भी शिक्षा तथा कार्य व्यवहार में माध्यम के रूप में उस स्थान न मिलने के कारण व्यवसायिक जगत में उसकी अर्थोपयोगिता सिद्ध नहीं हो पाई और इसलिए वांछित दिशाओं में बढ़ने का अवसर नहीं मिला। स्वतंत्रता पाने के बाद कुल 35 वर्षों के काल में जिन विषयों से वह शिक्षण माध्यम से जुड़ी उनमें उसका पर्याप्त विकस हुआ है। 'पर्याप्त' से तात्पर्य यह है कि स्नातक कक्षाओं तक विषय को समझने समझाने के लिए समाजशास्त्रीय और कुछ वैज्ञानिक विषयों में भी पुस्तकें अब उपलब्ध हैं और हिन्दी माध्यम से कला, वाणिज्य और विज्ञान में शिक्षा दी जा सकती है। दी जा रही है, यह कहना अधिक ठीक होगा। यह शिक्षा मात्र हिन्दी प्रवेश तक सीमित हो ऐसा नहीं है। आंध्र प्रदेश में उसकी राजधानी हैदराबाद नगर में तीनों संकायों का हिन्दी माध्यम महाविद्यालय वर्षों से सफलतापूर्वक चल रहा है। फिर भी यह स्वीकार कर लेने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि इन विषयों में भी हिन्दी अभी पूर्णतय: स्वाबलंबिनी नहीं बन सकी है। साथ ही तकनीकि और विधि या आयुर्विज्ञान जैसे क्षेत्र प्राय: अछूते पड़े हैं।

इस स्थिति के प्रति असंतोष व्यक्त करते समय यदि इस बात को ध्यान में रखा जाए कि एक तो जिन विषयों में अंग्रेजी तथा दूसरी विदेशी भाषाओं में

विपुल साहित्य प्रकाशित हो चुका है, जिनमें नित नूतन आविष्कार और परिष्करण हो रहा है, जिनमें प्रचार प्रसार के लिए पत्र पत्रिकाओं की अच्छी सुविधा उपलब्ध है और जिन विषयों की अभिव्यक्ति की एक बंधी सधी सिद्ध भाषा न केवल बन चुकी है, बल्कि उन विषयों में शिक्षित प्रयोक्ता जिनका अभ्यस्त बन चुका है और विदेशी भाषा का अभ्यास करते करते, जिसे अपनी भाषा पर अधिकार नहीं रह गया है और इसलिए यह अनजानी और अटपटी लगने लगी है, उनके विषय में यह आशा करना कि तीस पैंतीस वर्ष के अन्तराल में किसी भाषा में उनकी नींव भी पड़ जायेगी और स्रोत भाषा जैसा समृद्ध साहित्य भी तैयार हो जायेगा, दुराशा मात्र ही होगा। अनुवाद का ही सहारा लिया जाए तो भी वैसा होना संभव नहीं है। भारत जैसे विशाल देश में जहां बहुसंख्यक प्रादेशिक भाषाओं को भी विकसित होना है और जिसे तकनीकी, औद्योगिक, और वैज्ञानिक विकास में यंत्र-युग की एक नई शक्ति बनने का चाव है।

जहाँ दरिद्रता और अशिक्षता के दबाव में एक तो यों ही मनुष्य अनुपयोग या अपव्यय हो रहा हो और दूसरे अन्य सारे विकास की तुलना में शिक्षा का विकास एक गौण विषय बन गया हो, इस प्रकार के विकास में त्वरित सिद्धि की संभावना कम ही है। ऐसी स्थिति में संपूर्ण साहित्य को अपने में समेट कर चलने की अपेक्षा उचित यह होगा कि लक्ष्य भाषा की ऐसी आधारभूत सामग्री तैयार की जाए जिससे उसमें वांछित विषय की अभिव्यक्ति सुकर हो सके और आगे के लिए मौलिक चिंतन और लेखन की नींव पड़ सके। तैयारी इस बात की करनी है कि अब से अपनी बात अपने देश की भाषा में कहनी है इस बात की नहीं कि सबसे नाता तोड़ कर अपने आप में सिमट और सिकुड़ जाना है। अपने से अधिक सम्पन्न, समृद्ध और विकसित देशों की होड़ में खड़े होने के लिए न केवल यंत्रों की उपलब्धि काफी है, बल्कि उस साहित्य की जानकारी भी जरूरी है जिसमें उनकी उपयोगिता और संभावनाएँ भी वर्णित हैं। स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था में स्रोत भाषा से जी नहीं चुराया जा सकता। आज का युग अंतराबलंबन का है और विकसित देशों में भी अपनी समृद्ध भाषा में लिखे गये साहित्य के अतिरिक्त इतर देशीय भाषाओं में लिखित साहित्य से लाभ उठाया जाता है। फिर यह समझना कि हिन्दी में अपना कार्यव्यवहार आरंभ कर देने पर उसे छोड़ कर कोई दूसरी भाषा सामने रह ही नहीं जायेगी बड़ी भारी भूल है।

हिन्दी के प्रतिष्ठित हो जाने पर भी उससे उससे अधिक समृद्ध और विकसित भाषा या भाषाओं का उपयोग बना रहेगा और विचारों के आदान प्रदान

के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उसकी आवश्यकता भी बनी रह सकती है, किंतु उस स्थिति में आज की तरह हमारा सारा बल उस विदेशी भाषा को उसकी सारी सूक्ष्मताओं में पकड़ने और उसका हर दृष्टि से अधिकारी बनने पर नहीं होगा, बल्कि परकीय और दूसरी भाषा की तरह उसे जानने और उससे सार ग्रहण कर लेने पर होगा। हिन्दी को इसी धर्म में विकासशील बने रहना है, सर्वथा किसी द्वार को चंद करके अपना अधिराज कायम कर लेना उसका अभीष्ट नहीं है, क्योंकि वैसा करने से स्वयं उसके विकास को ठेस पहुंचती है।

विधागत विशेष ज्ञान के प्रस्तुतीकरण के साथ साथ हिन्दी को अंतर्देशीय व्यवहार की भाषा के रूप में भी पनपना और विकसित होना है। यहां भी उसका संबंध विभिन्न विषयों से रहेगा, किन्तु विधा या विषय की गहन सूक्ष्म विवेचवना को अभिव्यक्ति देने की अपेक्षा यहां पारस्परिक व्यवहार के अपने तकाजे होते हैं। भाषा के संदर्भ में ये तकाजे उसकी रूप रचना से संबंध रखते हैं। रूप रचना से हमारा तात्पर्य भाषा की शब्द सम्पत्ति, परिभाषिक शब्दावली का गठन, अभिव्यक्ति की सरलता या बोधगम्यता, पथ्यपरकता, लाघव और विषय सम्बद्धता से है। व्यावहारिक धरातल पर विकसित होने वाली किसी भी भाषा को इन या ऐसे ही अनेक तत्त्वों को अपने में समाहित करना पड़ता है। ध्यान रखना चाहिए कि व्यावहारिकता का अर्थ भाषा में कोई अंतर्विरोध है। इस प्रकार की स्वतंत्रता बोली रूप की सीमा से आगे नहीं बढ़ती। अपएव व्यवहार दृष्टि से किसी भाषा की तैयारी का अर्थ है उसके मानक रूप का सर्व सुलभ और सहज बोधगम्य रूप में तैयार होना। इसी संदर्भ में हिन्दी की स्थिति भी विचारणीय है।

व्यवहार्य भाषा के रूप में हिन्दी की सिद्धता का सबसे पहला आधार उसकी शब्दावली और शब्द संपति ही हो सकता है। यहां हमारा सामना 4 मुख्य प्रश्नों से होता है।

क्या हिन्दी के पास सब प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए शब्दावली है?

क्या वह शब्दावली इतनी व्यापक है कि जिना भाषाभाषियों के बीच उसे श्यवहुत होना है उन्हें भी उसमें कुछ परिचित सा लगे और यथाप्रसंग अपनी भाषा के शब्दों को उसमें प्रयुक्त देखकर वे न केवल इस बात का आत्मतोषलाभ कर सकें कि उनका सहयोग भी उस भाषा को प्राप्त है, बल्कि यह भी अनुभव करें कि उसका प्रयोग उनके लिए एकदम सहज न भी हो तो भी वह कठिन नहीं है।

क्या उसमें नए नए शब्दों की रचना की क्षमता है और क्या उसमें विविध ज्ञानशाखाओं के लिए परिभाषिक शब्दावली है? प्रश्न और भी हो सकते हैं।

इन प्रश्नों पर क्रमशः विचार करें। जहां तक सब प्रकार की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, मोटे तौर पर किसी भी भाषा से यह अपेक्षा की जा सकती है कि उसमें सूक्ष्म, जटिल और गहन भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने और उन्हे सुबोध बनाने के लिए अनुकूल शब्दावली हो, साथ ही उसमें उक्त लाघव भी हो। यों तो विद्वानों की राय में सभी भाषाएँ विकसित होती रहती हैं, आवश्यकता अनुसार उनमें नए शब्दों का आदान या उनकी रचना में रूपांतरण होता रहता है। किंतु विकासशील भाषाओं की यह समस्या कुछ अधिक गम्भीर होती है। जिस व्यवहार से होकर वे गुजरी हीं नहीं उसकी भरपूर अभिव्यक्ति की शक्ति भी उनमें नहीं हो सकती। फिर यदि उन भाषाओं को केवल शाब्दिक अनुवाद की भाषा का रूप दे दिया जाये तो वे न केवल अप्रकृत हो उठेंगीं, अपितु उनकी सहज संभावनाएं भी कुंठित हो जांएगी। आरंभिक संक्रमण कालीन स्थिति में उसका उपयोग इसी शाब्दिक जरूरी नहीं है।

हिन्दी का यह दुर्भाग्य रहा है कि प्रशासनिक व्यवहार में उसका उपयोग इसी शाब्दिक अनुवाद के लिए किया गया है अपने प्रकृत स्वभाव को छोड़कर अंग्रेजी वाक्य विन्यास और शब्दावली के पीछे मक्खीमार रूप में भटकने के कारण उसका एक ऐसा कृत्रिम रूप उभरा है, जो सर्वजनबोध्य होना तो दूर स्वयं हिन्दी भाषियों के लिए भी दुर्बोध और कष्ट साध्य जान पड़ता है। उससे एक प्रकार की निरर्थक जटिलता उत्पन्न हुई है। यह निश्चय ही उसके विकासशीलता के लिए धातक है। साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी ने सूक्ष्म, जटिल और गहन भावों की अभिव्यक्ति की पर्याप्त क्षमता अर्जित की है और उसका उपयोग व्यवहार भाषा के धरातल पर भी किया जा सकता है, किंतु यदि नए चिंतन, नए आविष्कार और नए अभिव्यक्ति कौशल के कारण वह कहीं कहीं अंग्रेजी की समकक्षता में नहीं खड़ी हो पाती, तो उसका अर्थ यह नहीं है कि उसकी संभावनाओं को भी अनदेखा कर दिया जाये। उसकी प्रकृति की रक्षा करते हुए उसके विकास और संवर्द्धन के दूसरे उपायों का सहारा लेना चाहिए।

दूसरे प्रश्न का उत्तर इन्हीं दो उपायों में समाहित है। भाषा भावों विचारों की वाहिका होती है। किंतु कोई भी भाषा संपूर्णतया आत्मनिर्भर नहीं होती। उसकी क्षमता ग्रहण से बढ़ती है। उसी से उसमें व्यापकता आती है। हिन्दी को अपनी क्षमता बढ़ाने और उक्त प्रकार की अभिव्यक्ति का लक्ष्य भेद करने के लिए इसी

ग्रहण उपाय से काम लेना होगा। भाषा का व्यापार विचित्र प्रकार का होता है। वह दूसरों की ऋणी होकर ही धनी होती है और उदार कहलाती है। हिन्दी को जिन भाषाओं के सहचर्य में बढ़ना और बड़ा होना है, उनसे शब्द ग्रहण करना उसके हित में है। इन हितकारियों में सबसे ऊँचा स्थान अपने देश की सहचरी भाषाओं का होना चाहिए, उसके बाद अंग्रेजी का। तात्पर्य यह है कि जहां तक किसी अभिव्यक्ति के लिए अपने देश की भाषा में शब्द मिल सकते हैं, उन्हें स्वीकार करते चलना चाहिए। कारण यह कि उससे परस्पर बंधुता बढ़ती है, पारस्परिक संवाद की भूमि तैयार होती है और हिन्दी में उन शब्दों की नई रचना की संभावनाएँ बनी रहती है, लेकिन अंग्रेजी से शब्द ग्रहण करने और अपने देश की भाषाओं से शब्द ग्रहण करने में अभी इस बात का अंतर बना रहेगा कि चूंकि अंग्रेजी इस देश में भी शिक्षितों के बीच सार्वजनिक भाषा बनाकर रही है और अपने देश की भाषाओं के बीच इस प्रकार का संपर्क बहुत ही क्षीण रहा है, अतएव अंग्रेजी शब्दों को जितनी शीघ्रता से व्यापक स्वीकृति मिल सकती है उतनी शीघ्रता से वैसा एकमत्य प्रादेशिक भाषाओं के संबंध में, कम से कम आरंभ में, संभव न होगा।

दूसरी अंग्रेजी शब्द सीधे हिन्दी में किए जा सकते है, किंतु भारतीय भाषाओं के बीच हुई आपसी दूरी के कारण यह काम सीधे हिन्दी भाषियों द्वारा नहीं किया जा सकता है। इसके लिए इन दूसरी भाषाओं को अपनी ओर से प्रदाता की भूमिका अपनानी पड़ेगी और यह तभी संभव है जब हिन्दीतर भाषाभाषियों द्वारा हिन्दी का व्यवहार हो। वे ही आवश्यकता होने पर अपनी भाषा के शब्दों को हिन्दी की बुनावट में ढाल सकेगें। यह काम और तीव्र गति से संभव हुआ होता यदि हिन्दी प्रदेशों में त्रिभाषा सूत्र को अपनाकर इतर भाषाओं को आत्मसात कर लिया होता।

फिर भी यह ध्यान रखना होगा कि शब्द ग्रहण अनियंत्रित गति से नहीं होता। यह नहीं है कि मनमाने ढंग से चाहे जिस शब्द को प्रयुक्त कर दिया जाए। जिन शब्दों में जितनी ही अधिक अर्थव्यंजकता, संक्षिप्तता, उच्चारण सुकरता और सुखद नादमयता होगी वे उतने ही अधिक शीघ्रता से ग्रहण किये जा सकते हैं। किंतु एक तो इस प्रकार का ग्रहण तब तक नहीं होता, जब तक कि मूल भाषा में योग्य शब्द मिलते रहते हैं, दूसरे जब कभी ग्रहण के प्रति खिन्नता बरती जाती है तो वह ऐसे स्थलों पर जहां दूसरी भाषा केवल व्यापक बनने के नाम पर किसी दूसरी भाषा के इतने अधिक शब्द नहीं ले सकती कि

वह उनसे शक्ति पाते-पाते स्वयं दुर्बल और अक्षम प्रमाणित होन लगे। हमारे अंग्रेजी जब-जब बात बात में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करते हैं और क्रिया, सर्वनाम या अव्यय को छोड़कर जब पूरा वाक्य अंग्रेजी के शब्दों से लद जाता है तो वह हिन्दी का गौरव नहीं बढ़ाता न उसे विशेष अर्थमय बनाता है, बल्कि इसके विपरीत या तो उसकी या उसके प्रयोक्ता की अक्षमता की प्रमाणित करता है और दोनों को उपहास का विषय बनाता है। अतएव आदान की भी एक सीमा है और मूल भषाओं की सम्भावनाओं की खत्म करके वैसा नहीं किया जा सकता। आदान-प्रवाह आपतित शब्दों का ही होता है और वह भी उसकी व्यंजकता आदि को उपयोगी पाकर ही। हिन्दी में न तो ऐसे शब्दों का ग्रहण अनुचित होगा और न ही ऐसे शब्दों का होगा जो भारतीय अन्यान्य भाषाओं में एक ही अर्थ में प्रचलित हैं और थोड़े बहुत रूप भेद के रहते भी सबोधता की दृष्टि से उपयोगी हैं।

किसी भाषा की शक्ति और सम्पन्नता केवल इस बात पर ही निर्भर नहीं होती कि वह अपने शब्दकोष में कितने शब्द संभाले हुए है, बल्कि यह भी उसके लिए अनिवार्य है कि उसमें नवीन शब्दों की रचना की शक्ति हो। यह रचना शक्ति जहां प्रकृति प्रत्यय के योग से आती हैं, वहीं तत्सम, देशज और इतर शब्दों के तद्भवीकरण और रूपांतरीकरण से भी सिद्ध होती है। अनेक बार भाषा देशज शब्दों को ही उनके मूल रूप में अथवा उन्हें व्याकरण सिद्ध करके ऐसा रूप दे देती है कि वे उन्नत होकर तुल्यबल वाले और सम्मानीय बन जाते हैं। विकासशील भाषा के लिए यह गुण अमृत तुल्य है। हिन्दी में भी यह सद्गुण है, पर उसका झुकाव तत्समता की ओर है। मध्यकालीन कवियों में अरबी फारसी के कितने ही शब्दों को अपनी भाषा में न केवल ज्यों का त्यों खपा लिया था, बल्कि उनको अपने रूप में भी ढाल लिया था। वह क्रम चलते रहना चाहिए था, किंतु तत्समता के साथ साथ मूल उच्चारण की सुरक्षा का आधुनिक काल में ऐसा प्रवाह आया कि क्रम भंग हो गया। हम समझते हैं कि हिन्दी को अपनी उस शक्ति का उपयोग करने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। केवल तत्समीकरण उपयोगी न होगा।

हिन्दी में इस समय दोनों प्रवृत्तियां चल रहीं है। एक पक्ष है, जो तत्सम संस्कृत शब्दावली का प्रयोग करता है और दूसरा पक्ष समाजवादी या जनवादी है, जो उर्दू शब्दों के मिश्रण से उभरती भाषा का अपने लेखन में प्रयोग कर रहा है। हिन्दी आलोचना में तो यह स्थिति है, किंतु अन्य विषयों में अभी

दूसरी शैली का प्रयोग नहीं हो रहा है। वहां अभी चूंकि हिन्दी का प्रायः अनुवाद भाषा के रूप में प्रयोग हो रहा है और अर्थशास्त्र आदि के लेखक मूलतः या तो अभी भी अंग्रेजी में सोंचने के अभ्यस्थ हैं या अपने लेखन में आधारा ग्रंथों के रूप में उन्हें अंग्रेजी ग्रंथों से ही सहारा मिलता है और हमारी पारिभाषिक शब्दावली भी संस्कृतनिष्ठ है, वे संस्कृतनिष्ठ शैली का प्रयोग कर रहे हैं। भविष्य में यदि हिन्दी का ऐसा रूप निखर सके, जो संस्कृतनिष्ठ तो हो पर जिसमें हिन्दी की अपनी सरल अभिव्यक्ति को दबाकर कठिन संस्कृत पदावली का या इसी तरह अरबी फारसी के कठिन शब्दों का प्रयोग न हो और आवश्यकता होने पर इतर भारतीय भाषाओं के शब्दों का मेल हो, तो हितकर होगा।

हिन्दी में पारिभाषिक शब्दाबली का बहुत कुछ निर्माण हो चुका है। फिर भी भाषा के विचार के साथ नई नई शब्दावली भी बनती रहती हैं, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी इस क्षेत्र में किसी अन्तिम सीमा पर पहुंच गई है। किंतु यह हिन्दी के ही क्यों, संसार की किसी भी भाषा के विषय में नहीं कहा जा सकता। एक बार पारिभाषिक शब्दावली की नींव पड़ जाने पर उस क्रम को आगे बढ़ाते जाना सहज और सरल हो जाता है, यदि विचार और अभिव्यक्ति भी उसी भाषा में हो। चूंकि इस प्रकार की शब्दावली की रचना में संक्षिप्तता को एक विशेष सद्गुण माना जाता है अतएव हिन्दी के लिए यही सबसे सुगम और सहज मार्ग माना गया कि उसकी शब्दावली को संस्कृत का आधार दिया जाये ताकि उसकी सामसिकता, संधि और और इतर विधियों का लाभ मिले। साथ ही यह भी माना गया है कि संस्कृत पर आधारित शब्दावली को अन्यान्य भाषाभाषी भी ग्रहण कर सकेंगें और वह शब्दावली सबके लिए सहज माध्यम हो सकेगी। सहज संपर्क के लिए देश में एक ही पारिभाषिक शब्दावली का होना आवश्यक है। किंतु इस विषय में भी मतभेद और आपत्तियों की कमी नहीं है।

भिन्न प्रदेशों में संस्कृत के ही शब्दों से एक ही अंग्रेजी शब्द के लिए भिन्न शब्दों का निर्माण, प्रचलित अंग्रेजी शब्दों को ज्यों का त्यों अपनाने की आकांक्षा, नवनिर्मित शब्दों का अनभ्यस्त कानों को अटपटा लगना, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बोध और संप्रेषण के लिए उपयोगिता और अपनी अपनी भाषा में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के द्वारा उसकी समृद्धि की चिंता ने हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली की स्वीकृति के विपक्ष में अनेक समस्याएँ उत्पन्न की हैं, जिससे

उसका विकास प्रभावित हुआ है। यहां तक कि तब तो रेडियो की तुलना में आकाशवाणी शब्द भी खीझ और उपेक्षा का विषय हो गया है।

हम यहां भाषा की राजनीति में न जाकर केवल यह मानकर चलते हैं कि हिन्दी को अपने ही हित के लिए दृढ़ता से उस नीति का अनुसरण करना है जिससे वह समृद्ध और सशक्त होती जाये और उसकी सर्वग्राह्यता बनी रहे। इसमें संदेह नहीं है कि पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के विषय में संस्कृत का आधार ही लेना होगा, किंतु उसके साथ ही यह भी ध्यान रखा जाए कि मनुष्य को अतीत की स्मृति सताती तो बहुत है और वह उसे वर्तमान की अपेक्षा सुखद भी मान लिया करता है फिर भी कोई वर्तमान को छोड़कर वही जीवन नहीं जीना चाहता। अतीत तो उसे केवल शक्ति और संतोष देता है, उसके संस्कार बड़ी सूक्ष्मता से उसके वर्तमान में तार तार बिंधे रहते हैं, लेकिन नए संदर्भ में अपनी उपयोगिता सिद्ध करते हुए। भाषा का व्यवहार भी कमोवेश वैसा ही होता है। वर्तमान में जो हमारे स्वभाव बन गया है और जिस भाषा का प्रयोग शिक्षितों के बीच होता आ रहा है, उसे सहसा त्यागकर संस्कृत की ओर लौटने की कल्पना सुखद तो हो सकती है, लेकिन उतनी ही दूर तक जहां तक वह हमारे वर्तमान और अभ्यास के मेल में रहे।

अतएव हम समझते हैं कि पारिभाषिक शब्दों में सबसे पहले सम्मानीय और स्वीकार्य तो वे हैं, जो संस्कृत और अरबी फारसी से आकर आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी खप गये हैं और जिनकी अलग से पहिचान कराने की किसी को आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरे वे हैं, जो आधुनिक ज्ञान की सही अभिव्यक्ति के लिए हमारे यहां दर्शन, धर्म नीति और साहित्य आदि से अभी भी लिए जा सकते हैं और अपन उच्चारण सौंकर्य के कारण सहज ग्राह्य होने की सम्भावना रखते हैं। तीसरे वे हैं, जो वर्तमान में अंग्रेजी के माध्यम से आये हैं और जिनको हम अपनी भाषा के उच्चारण में ढाल कर अपने लिए और वैसे ही दूसरों के लिए भी, सह्य और अर्थवान बनाए रह सकते हैं। चौथे वे हैं जिन्हें भिन्न पर्याय के रूप में भारतीय भाषाओं में प्रचलित देखते हैं और जिनके बीच से अधिक प्रचलन और अधिक स्वीकृति या सहमति के आधार पर चयन किया जा सकता है। पाँचवे जो कई शब्दों के योग के कारण उच्चारण में उत्पन्न असुविधा या विलंब से बचने के लिए संकेत शब्दावली के रूप में अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं मेंसमान रूप से मान्य हैं और छठे तथा अंतिम वे हैं, जो न तो किसी रूप में ढाले जा

सकते हैं, न जिनके लिए कोई सरल और अर्थवान पर्याय हम दे सकते हैं। उन्हे ज्यों का त्यों लेना ही पड़ेगा और उस दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जिस दिन वे धिस पिट कर या तो हमारे अनुकूल हो जाएंगे या उस ज्ञान शाखा में बढ़ते बढ़ते किसी दिन इस धरती का कोई नया शब्द सहसा जन्म ले लेगा।

भाषा की रूप रचना का संबंध पारिभाषिक अथवा अन्य प्रकार की शब्दावली के अतिरिक्त उसके व्याकरण, उसके लाघव और उसकी जटिलता या सरलता से भी है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है सूक्ष्म और सही अर्थाभिव्यक्ति। व्याकरण भाषा का नियामक है और उसे परिनिष्ठित बनाता है। भाषा में वह एक रूपता लाता है और उसे निरंकुशता से बचाता है। एकरूपता सरलता की वाहिका भी होती है। और सूक्ष्म अभिव्यक्ति की सहायिका भी। अन्यथा अनेक शब्द रूपों और संबंध तत्त्वों के एक ही बात के लिए प्रचलन से सुनिश्चित और अटपटापन बना रहता है और अर्थ की दुविधा बनी रहती है। अन्य भाषाभाषियों को किसी भी दूसरी भाषा के सीखने में व्याकरण की भिन्नता के कारण सामान्यतः कुछ कठिनाई का अनुभव होता ही है, पर उससे कोई भाषा इस तरह प्रभावित नहीं होती कि अपने मूल रूप को परिवर्तित कर दे।

परिवर्तन आता है कुछ लोगों के विशिष्ट प्रयोगों के प्रचलन से। उन प्रयोंगों की भी अर्थ की दृष्टि से कोई न कोई सार्थकता होनी चाहिए अतः हिन्दी के व्याकरण को भी बदला जा सकता है तो इस प्रकार के सार्थक और विशिष्ट प्रयोगों से ही भाषा को सीखने में व्याकरण को बाधक मानकर उसे सहज गति से लेना चाहिए और उस के माध्यम से हिन्दी पर अधिकार प्राप्त करना चाहिए। हिन्दी के विकास के लिए उसमें अनावश्यक जोड़-तोड़ करने से भाषा की एकरूपता सिद्ध होगी न उस जोड़ तोड़ की कोई सीमा रहेगी। व्याकरण की सीमा में रहते हुए भाषा के संबंध तत्त्वों के ग्रहण त्याग, शब्द संगठन, सूक्ष्म भेद, पुनुरुक्ति अथवा विस्तार में से बचत और स्पष्ट किंतु पैने और एकदम लक्ष्यानुसारी हिन्दी के लेखन का प्रयत्न जितना उसके विकास में साधक हो सकता है, उतना दूसरा तत्त्व नहीं। हमारी समझ से विषय और रूप की उस सन्निधि की उपलब्धि में ही हिन्दी का विकास निहित है। यहां इस विषय में अधिक विस्तार के लिए अवकाश नहीं है, अन्यथा वास्तविकता यह है कि उक्त बातों को कुछ और अधिक स्पष्टता से प्रस्तुत करना उचित होता।

हिन्दी भाषा और साहित्य में चिट्ठाकारिता की भूमिका

हर समाज की अपनी भाषा और संस्कृति होती है और हर भाषा का अपना साहित्य होता है। हिन्दी भाषा का भी अपना साहित्य और समाज है। कहना न होगा यह समाज और इसका साहित्य अत्यंत समृद्ध रहा है। आधुनिक समय में मीडिया, विज्ञापन, पत्रकारिता और सिनेमा ने हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति की भूमि को उर्वर बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। ब्लाग या चिट्ठा इसी विकास की दुनिया का नवीनतम माध्यम है और ब्लागिंग या चिट्ठाकारिता लेखन या मीडिया की नई विधा।

किताब या पत्रिका की तुलना में इसकी पहुँच अधिक और तेज होने के कारण यह कई मामलों में पुराने मीडिया माध्यमों से बेहतर है। हिंदी में चिट्ठे का प्रारंभ 2003 से हुआ पिछले 7 सालों में वह अपने लड़खड़ाते कदमों को संभालकर खड़ा होना सीख गया है। जिस प्रकार साहित्य और संस्कृति के विषय में यह आशा की जाती है कि वे आने वाले समय में व्यक्तिगत मनोविनोद, जय-पराजय, सुख-दुख से ऊपर सामूहिक प्रेम, बन्धुत्व, स्वतंत्रता और समानता के पथ पर कदम बड़ाएँगे, चिट्ठों के विषय में यह आशा रखना उचित होगा कि वे सामूहिक प्रेम, बन्धुत्व, स्वतंत्रता और समानता के क्षेत्र में भाषा साहित्य और संस्कृति की नई दिशाएँ खोजते हुए अपना भविष्य बनाएँगे।

चिट्ठा एक ऐसा माध्यम है जहाँ व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार विषय, भाषा, विधा, और लेख की लंबाई का नियंत्रण अपने हाथों में रख सकता है। इसलिये किसी पत्रिका के स्तंभ में समा पाने के लिये उसे अतिरिक्त परिश्रम से मुक्ति मिल जाती है और इच्छानुसार विकास का अवसर मिलता है। ऐसे लेखों पर यदि किसी कुशल संपादक की दृष्टि पड़ जाए तो वह सीधा किसी पत्रिका का हिस्सा भी बन सकता है या फिर किसी प्रकाशक या फिल्म निर्माता का सहयोगी बन जीवन को साहित्यिक सांस्कृतिक दिशा दे सकता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो चिट्ठे भी साहित्य और भाषा के विकास का माध्यम हैं। बहुत से लेखक और कवि ऐसे हैं, जिन्होंने लेखन का प्रारंभ या यह कहें कि अपने लेखन को प्रकाशित करना अपने चिट्ठों पर ही शुरू किया। बाद में उनकी रचनाएँ प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छपीं और पुस्तकों के रूप में भी सामने आईं।

हर चिट्ठे की भाषा स्तरीय नहीं होती या विषय घटिया होता है या लेखन स्तरहीन होता है ऐसा नहीं कहा जा सकता। चिट्ठों का लेखक स्वयं अपना

संपादक होता है। इसलिये कुछ चिट्ठे प्रारंभ में सामान्य दिखाई दे सकते हैं, लेकिन धीरे-धीरे उनका विकास हो सकता है। यह लेखक पर निर्भर होता है कि वह कैसा लिखना चाहता है, किन पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है और भाषा या शैली के प्रति कितना और कैसा रचनात्मक रुझान रखता है। यह भी हो सकता है कि चिट्ठा किसी साहित्यिक लेखक का हो तब उसमें प्रारंभ में ही स्तरीय लेखन देखा जा सकता है। हो सकता है कि कोई साहित्यिक चिट्ठा लिखना ही न चाहता हो, उसका चिट्ठा हिंदी में तो हो, लेकिन किसी और विषय की ओर केंद्रित हो तब उससे साहित्य और साहित्यिक भाषा की अपेक्षा या जबरदस्ती रखना उचित नहीं है। अच्छी रचनात्मक हिंदी में लिखे हुए कई चिट्ठे पत्रकारिता, संस्मरण, शब्दों के विकास, प्रकृति, पर्यावरण आदि विषयों पर आज भी देखे जा सकते हैं।

आज का कोई भी व्यक्ति जो अभिव्यक्ति में पारंगत हैं और पर्याप्त सूचनाएँ रखता है, तर्क युक्तियों के माध्यम से अपनी बात रखने की कला जानता है और सही समय पर सही निर्णय लेने की क्षमता रखता है, वह अपनी भाषा और अपने साहित्य की सीमाओं को विस्तृत होते देखना चाहता है। इसके लिये वह अपनी सुविधानुसार किस भी माध्यम का प्रयोग कर सकता है और इसके लिये चिट्ठे से बेहतर कोई माध्यम नहीं हो सकता।

इस समय हिंदी में लगभग 22000 के आसपास चिट्ठे हैं, टेक्नोरति के एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व के कुल चिट्ठों में से 37 प्रतिशत जापानी भाषा में है, 36 प्रतिशत अंग्रेजी में और आठ प्रतिशत के साथ चीनी तीसरे नंबर पर है। अंग्रेजी के 4 करोड़ चिट्ठों की तुलना में अभी हिंदी चिट्ठों का विस्तार भले ही कम दिखाई दे, किन्तु हिंदी ब्लोगों पर एक से एक विशिष्ट सामग्री प्रस्तुत की जा रही हैं ! समाज, राजनीति, मीडिया और साहित्य से संबंधित महत्वपूर्ण सृजन हिंदी चिट्ठा पर धड़ल्ले से प्रस्तुत किये जा रहे हैं। हिंदी में चिट्ठा कम होने का एक कारण यह भी माना जा सकता है, कि हिंदी में एक सार्वजनीन फांट आने में देर हुई, जिससे हिंदी चिट्टाकारिता अँग्रेजी की तुलना में छः साल देर से प्रारंभ हुई।

आज जिस प्रकार हिंदी चिट्ठाकार समाज और देश के हित में व्यापक जन चेतना को विकसित करने में सफल हो रहे हैं वह संतोष की बात है। अपने सामाजिक सरोकार को व्यक्त करने की प्रतिबद्धता के कारण आज हिंदी के कतिपय चिट्ठे समानांतर मीडिया की दृष्टि से समाज में सार्थक भूमिका निभाने

में सफल रहे हैं। हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय स्वरुप देने में हर उस चिट्ठाकार की महत्वपूर्ण भूमिका है, जो बेहतर प्रस्तुतिकरण, गंभीर चिंतन, समसामयिक विषयों पर सूक्ष्मदृष्टि, सृजनात्मकता, समाज की कुसंगतियों पर प्रहार और साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से अपनी बात रखने में सफल हो रहे हैं। चिट्ठा लेखन और वाचन के लिए सबसे सुखद पहलू तो यह है कि हिन्दी में बेहतर चिट्ठा लेखन की शुरुआत हो चुकी है, जो हिंदी समाज के लिए शुभ संकेत है।

कहा गया है कि चिट्ठाकारिता की दुनिया पूरी तरह स्वतंत्र, आत्म निर्भर और मनमौजी किस्म की है। यहाँ आप स्वयं लेखक, प्रकाशक और संपादक की भूमिका में होते हैं। चिट्ठे की दुनिया समय और दूरी के सामान अत्यंत विस्तृत और व्यापक है। यहाँ केवल राजनीतिक टिप्पणियाँ और साहित्यिक रचनाएँ ही नहीं प्रस्तुत की जातीं बल्कि महत्त्वपूर्ण किताबों का ई प्रकाशन तथा अन्य सामग्रियाँ भी प्रकाशित की जाती है। आज हिंदी में भी फोटो चिट्ठा, संगीत चिट्ठा, पोडकास्ट, विडिओ चिट्ठा, सामूहिक चिट्ठा, प्रोजेक्ट चिट्ठा, कारपोरेट चिट्ठा आदि का प्रचलन तेजी से बढ़ा है। यानी हिंदी चिट्ठाकारिता आज संवेदनात्मक दौर में है इसमें कोई संदेह नहीं है।

वर्ष-2010 में हिंदी चिट्ठाकारिता के चहुमुखी विकास में पूरे वर्ष भले ही अवरोध की स्थिति बनी रही, किन्तु बुद्धिजीवियों का एक बड़ा तबका अपने इस आकलन को लेकर करीब-करीब एकमत है कि आने वाला कल हमारा है यानी हिंदी चिट्ठाकारिता का है। इसकों लेकर किन्तु-परन्तु हो सकता है कि हिंदी चिट्ठाकारिता का विकास अन्य भाषाओं की तुलना में धीमा रहा, लेकिन इसे लेकर किसी को संशय नहीं होना चाहिए कि हिंदी चिट्ठाकारी उर्जावान चिट्ठाकारों का एक ऐसा बड़ा समूह बनता जा रहा है, जो किसी भी तरह की चुनौतियों पर पार पाने में सक्षम है और उसने अपने को हर मोर्चे पर सिद्ध भी किया है। वस्तुतः विगत वर्ष की एक बड़ी उपलब्धि और साथ ही आशा की किरण यह रही है कि चिट्ठे के माध्यम से वातावरण का निर्माण केवल वरिष्ठ चिट्ठाकारों ने ही नहीं किया है, अपितु एक बड़ी संख्या नए और उर्जावान ब्लोगरों की भी आई है, जिनके सोचने का स्तर परिपक्व है। वे सकारात्मक सोच रहे हैं, सकारात्मक लिख रहे हैं और सकारात्मक गतिविधियों में शामिल भी हो रहे हैं।

इसके सिवा अनेक लेखक लेखिकाएँ जो हिंदी भाषा और विभिन्न विषयों पर अच्छी पकड़ रखते हैं साथ ही चिट्ठाकारिता के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति को धार देने की दिशा में सक्रिय हैं, इस वर्ष चिट्ठा लेखन में सक्रिय रहे। कुल मिलाकर यह दिखाई देने लगा है कि हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में चिट्ठाकारिता की भूमिका सर्वोपरि है। आने वाले दिनों में हिंदी भाषा और साहित्य के निर्माण में यह समृद्धि के नए सोपान को प्राप्त करेगी, इसमें कोई संदेह नहीं है।

3

हिन्दी का स्वरूप

भाषा-व्यवहार अथवा भाषा-प्रकार्य की दृष्टि से भी भाषा के अनेक भेद होते हैं। (यथा- मानक भाषा, उपमानक भाषा अथवा शिष्टेतर भाषा, अपभाषा, विशिष्ट वाग्व्यवहार की शैलियाँ, साहित्यिक भाषा आदि)। विशिष्ट प्रयोजनों की सिद्धि के लिए प्रयोजनमूलक भाषा के अनेक रूप होते हैं, जिनकी चर्चा लेखक ने प्रकार्यात्मक भाषाविज्ञान के संदर्भ में की है। जब भिन्न भाषाओं के बोलने वाले एक ही क्षेत्र में निवास करने लगते हैं तो भाषाओं के संसर्ग से विशिष्ट भाषा प्रकार विकसित हो जाते हैं। (यथा -पिजिन, क्रिओल)।

भाषा के असामान्य रूपों के उदाहरण गुप्त भाषा एवं कृत्रिम भाषा आदि हैं। इस आलेख का उद्देश्य भाषा-क्षेत्र की अवधारणा को स्पष्ट करना तथा हिन्दी भाषा-क्षेत्र के विविध क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के सम्बंध में विवेचना करना है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि इस सम्बंध में न केवल सामान्य व्यक्ति के मन में अनेक भ्रामक धारणाएँ बनी हुई हैं, प्रत्युत हिन्दी भाषा के कतिपय अध्येताओं, विद्वानों तथा प्रतिष्ठित आलोचकों का मन भी तत्सम्बंधित भ्रांतियों से मुक्त नहीं है। हिन्दी कभी अपने भाषा-क्षेत्र की सीमाओं में नहीं सिमटी। यह हिमालय से लेकर कन्याकुमारी और द्वारका से लेकर कटक तक भारतीय लोक चेतना की संवाहिका रही। सम्पर्क भाषा हिन्दी की एक अन्य विशिष्टता यह रही कि यह किसी बँधे बँधाए मानक रूप की सीमाओं में नहीं जकड़ी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि केवल बोलचाल की भाषा में ही यह प्रवृत्ति नहीं है, साहित्य

में प्रयुक्त हिन्दी में भी यह प्रवृत्ति मिलती है। हिन्दी साहित्य की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा रही है, हिन्दी साहित्य के इतिहास की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा रही है और हिन्दी साहित्य के अध्ययन और अध्यापन की भी समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा रही है।

हिन्दी की इस समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा को जानना बहुत जरूरी है तथा इसे आत्मसात करना भी बहुत जरूरी है तभी हिन्दी क्षेत्र की अवधारणा को जाना जा सकता है और जो ताकतें हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का कुचक्र रच रही है तथा हिन्दी की ताकत को समाप्त करने के षड़यंत्र कर रही हैं उन ताकतों के षड़यंत्रों को बेनकाब किया जा सकता है तथा उनके कुचक्रों को ध्वस्त किया जा सकता है। वर्तमान में हम हिन्दी भाषा के इतिहास के बहुत महत्त्वपूर्ण मोड़ पर खड़े हुए हैं। आज बहुत सावधानी बरतने की जरूरत है। आज हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने के जो प्रयत्न हो रहे हैं सबसे पहले उन्हे जानना और पहचानना जरूरी है और इसके बाद उनका प्रतिकार करने की जरूरत है।

यदि आज हम इससे चूक गए तो इसके भयंकर परिणाम होंगे। मुझे सन् 1993 के एक प्रसंग का स्मरण आ रहा है। मध्य प्रदेश के तत्कालीन शिक्षा मंत्री ने भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्री को मध्य प्रदेश में 'मालवी भाषा शोध संस्थान' खोलने तथा उसके लिए अनुदान का प्रस्ताव भेजा था। उस समय भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्री श्री अर्जुन सिंह थे, जिनके प्रस्तावक से निकट के सम्बंध थे। मंत्रालय ने उक्त प्रस्ताव केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के निदेशक होने के नाते लेखक के पास टिप्पण देने के लिए भेजा। लेखक ने सोच समझकर टिप्पण लिखा "भारत सरकार को पहले यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मध्य प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा बुन्देली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं का राज्य है"। मुझे पता चला कि उक्त टिप्पण के बाद प्रस्ताव को ठंढे बस्ते में डाल दिया गया। एक ओर हिन्दीतर राज्यों के विश्वविद्यालयों और विदेशों के लगभग 176 विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं में हजारों की संख्या में शिक्षार्थी हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन और शोध कार्य में समर्पण-भावना तथा पूरी निष्ठा से प्रवृत्त तथा संलग्न हैं वहीं दूसरी ओर हिन्दी भाषा-क्षेत्र में ही अनेक लोग हिन्दी के विरुद्ध साजिश रच रहे हैं।

सामान्य व्यक्ति ही नहीं, हिन्दी के तथाकथित विद्वान भी हिन्दी का अर्थ खड़ी बोली मानने की भूल कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य को जिंदगी भर पढ़ाने वाले,

हिन्दी की रोजी, खाने वाले रोटी हिन्दी की कक्षाओं में हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियों को विद्यापति, जायसी, तुलसीदास, सूरदास जैसे हिन्दी के महान साहित्यकारों की रचनाओं को पढ़ाने वाले अध्यापक तथा इन पर शोध एवं अनुसंधान करने एवं कराने वाले आलोचक भी न जाने किस लालच में या आँखों पर पट्टी बाँधकर यह घोषणा कर रहे हैं कि हिन्दी का अर्थ तो केवल खड़ी बोली है।

भाषा विज्ञान के भाषा-भूगोल एवं बोली विज्ञान के सिद्धांतों से अनभिज्ञ ये लोग ऐसे वक्तव्य जारी कर रहे हैं जैसे वे इन विषयों के विशेषज्ञ हों। क्षेत्रीय भावनाओं को उभारकर एवं भड़काकर ये लोग हिन्दी की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा को नष्ट करने पर आमादा हैं। जब लेखक जबलपुर के विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी एवं भाषाविज्ञान विभाग का प्रोफेसर था, उसके पास विभिन्न विश्वविद्यालयों से हिन्दी की उपभाषाओं/बोलियों पर पी-एच. डी. एवं डी. लिट्. उपाधियों के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध जाँचने के लिए आते थे। लेखक ने ऐसे अनेक शोध प्रबंध देखें जिनमें एक ही पृष्ठ पर एक पैरा में विवेच्य बोली को उपबोली का दर्जा दिया दिया गया, दूसरे पैरा में उसको हिन्दी की बोली निरुपित किया गया तथा तीसरे पैरा में उसे भारत की प्रमुख भाषा के अभिधान से महिमामंडित कर दिया गया।

इससे यह स्पष्ट है कि शोध छात्रों अथवा शोध छात्राओं को तो जाने ही दीजिए उन शोध छात्रों अथवा शोध छात्राओं के निर्देशक महोदय भी भाषा-भूगोल एवं बोली विज्ञान के सिद्धांतों से अनभिज्ञ थे।

व्यक्ति बोलियाँ

एक भाषा क्षेत्र में 'एकत्व' की दृष्टि से एक ही भाषा होती है, किन्तु 'भिन्नत्व' की दृष्टि से उस भाषा क्षेत्र में जितने बोलने वाले निवास करते हैं उसमें उतनी ही भिन्न व्यक्ति-बोलियाँ होती है। प्रत्येक व्यक्ति भाषा के द्वारा समाज के व्यक्तियों से सम्प्रेषण-व्यवहार करता है। भाषा के द्वारा अपने निजी व्यक्तिव का विकास एवं विचार की अभिव्यक्ति करता है। प्रत्येक व्यक्ति के निजी व्यक्तित्त्व का प्रभाव उसके अभिव्यक्तिकरण व्यवहार पर भी पड़ता है।

प्रत्येक व्यक्ति के अनुभवों, विचारों, आचरण पद्धतियों, जीवन व्यवहारों एवं कार्यकलापों की निजी विशेषताएँ होती है। समाज के सदस्यों के व्यक्तित्त्व की भेदक भिन्नताओं का प्रभाव उनके व्यक्ति-भाषा-रूपों पर पड़ता है और इस

कारण प्रत्येक व्यक्ति बोली में निजी भिन्नताएँ अवश्य होती है। व्यक्ति बोली के धरातल पर एक व्यक्ति जिस प्रकार बोलता है, ठीक उसी प्रकार दूसरा कोई व्यक्ति नहीं बोलता। यही कारण है कि हम किसी व्यक्ति भले ही न देखें मगर मात्र उसकी आवाज को सुनकर उसको पहचान लेते हैं।

यदि भिन्नताओं को और सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो यह बात कही जा सकती है कि स्वनिक स्तर पर कोई भी व्यक्ति एक ध्वनि को उसी प्रकार दोबारा उच्चारित नहीं कर सकता। यदि एक व्यक्ति 'प', ध्वनि का सौ बार उच्चारण करता है तो वे 'I' ध्वनि के सौ स्वन होते हैं। इन स्वनों की भिन्नताओं को हमारे कान नहीं पहचान पाते। जब भौतिक ध्वनि विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनि-यन्त्रों की सहायता से इसका अध्ययन किया जाता है तो ध्वनि यन्त्र इनके सूक्ष्म अन्तरों को पकड़ पाने की क्षमता रखते हैं। 'स्वनिक स्तर' पर प्रत्येक ध्वनि का प्रत्येक उच्चारण एक अलग स्वन होता है।

जिस प्रकार दार्शनिक धरातल पर बौद्ध दर्शन के अनुसार इस संसार के प्रत्येक पदार्थ में प्रतिक्षण परिवर्तन होता है, उसी प्रकार भाषा के प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक ध्वनि का प्रत्येक उच्चार यत्किंचित भिन्नताएँ लिए होता है तथा जिस प्रकार अद्वैतवादी के अनुसार इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक ही परमात्म-तत्त्व की सत्ता है उसी प्रकार एक भाषा क्षेत्र में व्यवहृत होने वाले समस्त भाषिक रूपों को एक ही भाषा के नाम से पुकारा जाता है।

यदि उच्चारण की स्वनिक भिन्नताओं को छोड़ दें तो एक भाषा-क्षेत्र में उस भाषा-जन-समुदाय के जितने सदस्य होते हैं, उतनी ही उसमें व्यक्ति-बोलियाँ होती हैं। उन समस्त व्यक्ति-बोलियों के समूह का नाम भाषा है।

बोली

भाषा-क्षेत्र की समस्त व्यक्ति-बोलियों एवं उस क्षेत्र की भाषा के मध्य प्रायः बोली का स्तर होता है। भाषा की क्षेत्रगत एवं वर्गगत भिन्नताओं को क्रमशः क्षेत्रगत एवं वर्गगत बोलियों के नाम से पुकारा जाता है। इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि भाषा की संरचक बोलियाँ होती हैं तथा बोली की संरचक व्यक्ति बोलियाँ।

इस प्रकार तत्त्वतः बोलियों की समष्टि का नाम भाषा है। 'भाषा क्षेत्र' की क्षेत्रगत भिन्नताओं एवं वर्गगत भिन्नताओं पर आधारित भाषा के भिन्न रूप उसकी बोलियाँ हैं। बोलियाँ से ही भाषा का अस्तित्त्व है। इस प्रसंग में, यह सवाल उठाया

जा सकता है कि सामान्य व्यक्ति अपने भाषा-क्षेत्र में प्रयुक्त बोलियों से इतर जिस भाषिक रूप को सामान्यत: 'भाषा' समझता है वह फिर क्या है। वह असल में उस भाषा क्षेत्र की किसी क्षेत्रीय बोली के आधार पर विकसित 'उस भाषा का मानक भाषा रूप' होता है।

इस दृष्टि के कारण ऐसे व्यक्ति 'मानक भाषा' या 'परिनिष्ठित भाषा' को मात्र 'भाषा' नाम से पुकारते हैं तथा अपने इस दृष्टिकोण के कारण 'बोली' को भाषा का भ्रष्ट रूप, अपभ्रंश रूप तथा 'गँवारू भाषा' जैसे नामों से पुकारते हैं। वस्तुत: बोलियाँ अनौपचारिक एवं सहज अवस्था में अलग-अलग क्षेत्रों में उच्चारित होने वाले रूप हैं जिन्हें संस्कृत में 'देश भाषा' तथा अपभ्रंश में 'देसी भाषा' कहा गया है। भाषा का 'मानक' रूप समस्त बोलियों के मध्य सम्पर्क सूत्र का काम करता है। भाषा की क्षेत्रगत एवं वर्गगत भिन्नताएँ उसे बोलियों के स्तरों में विभाजित कर देती हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बोलियों के स्तर पर विभाजित भाषा के रूप निश्चित क्षेत्र अथवा वर्ग में व्यवहृत होते हैं, जबकि प्रकार्यात्मक धरातल पर विकसित भाषा के मानक रूप, उपमानक रूप, विशिष्ट रूप (अपभाषा, गुप्त भाषा आदि) पूरे भाषा क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं, भले ही इनके बोलने वालों की संख्या न्यूनाधिक हो।

प्रत्येक उच्चारित एवं व्यवहृत भाषा की बोलियाँ होती है। किसी भाषा में बोलियों की संख्या दो या तीन होती है तो किसी में बीस-तीस भी होती है। कुछ भाषाओं में बोलियों का अन्तर केवल कुछ विशिष्ट ध्वनियों के उच्चारण की भिन्नताओं तथा बोलने के लहजे मात्रा का होता है, जबकि कुछ भाषाओं में बोलियों की भिन्नताएँ भाषा के समस्त स्तरों पर प्राप्त हो सकती है। दूसरे शब्दों में, बोलियों में ध्वन्यात्मक, ध्वनिग्रामिक, रूपग्रामिक, वाक्यविन्यासीय, शब्दकोषीय एवं अर्थ सभी स्तरों पर अन्तर हो सकते हैं। कहीं-कहीं ये भिन्नताएँ इतनी अधिक होती है कि एक सामान्य व्यक्ति यह बता देता है कि अमुक भाषिक रूप का बोलने वाला व्यक्ति अमुक बोली क्षेत्र का है।

किसी-किसी भाषा में क्षेत्रगत भिन्नताएँ इतनी व्यापक होती है तथा उन भिन्न भाषिक-रूपों के क्षेत्र इतने विस्तृत होते हैं कि उन्हें सामान्यत: भाषाएँ माना जा सकता है। इसका उदाहरण चीन देश की मंदारिन भाषा है, जिसकी बोलियों के क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हैं तथा उनमें से बहुत-सी परस्पर अबोधगम्य भी हैं। जब तक यूगोस्लाविया एक देश था तब तक क्रोएशियाई और सर्बियाई को एक भाषा की दो बोलियाँ माना जाता था। यूगोस्लाव के विघटन के बाद से इन्हें भिन्न

भाषाएँ माना जाने लगा है। ये उदाहरण इस तथ्य को प्रतिपादित करते हैं कि पारस्परिक बोधगम्यता के सिद्धांत की अपेक्षा कभी-कभी सांस्कृतिक एवं राजनैतिक कारण अधिक निर्णायक भूमिका अदा करते हैं।

हिन्दी भाषा क्षेत्र में भी 'राजस्थानी' एवं 'भोजपुरी' के क्षेत्र एवं उनके बोलने वालों की संख्या संसार की बहुत-सी-भाषाओं के क्षेत्र एवं बोलने वालों की संख्या से अधिक है। 'हिन्दी भाषा-क्षेत्र' में, सामाजिक-सांस्कृतिक समन्वय के प्रतिमान के रूप में मानक अथवा व्यावहारिक हिन्दी सामाजिक जीवन में परस्पर आश्रित सहसम्बन्धों की स्थापना करती है। सम्पूर्ण हिन्दी भाषा क्षेत्र में मानक अथवा व्यावहारिक हिन्दी के उच्च प्रकार्यात्मक सामाजिक मूल्य के कारण ये भाषिक रूप 'हिन्दी भाषा' के अन्तर्गत माने जाते हैं। इस सम्बंध में आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी।

भाषा-क्षेत्र की क्षेत्रगत भिन्नताओं के सम्भावित स्तर–

अभी तक हमने किसी भाषा-क्षेत्र में तीन भाषिक स्तरों की विवेचना की है–

(1) व्यक्ति-बोली
(2) बोली
(3) भाषा।

व्यक्ति-बोलियों के समूह को 'बोली' तथा बोलियों के समूह को 'भाषा' कहा गया है। जिस प्रकार किसी भाषा के व्याकरण में शब्द एवं वाक्य के बीच अनेक व्याकरणिक स्तर हो सकते हैं उसी प्रकार भाषा एवं बोली एवं व्यक्ति-बोली के बीच अनेक भाषा स्तर हो सकते हैं। इन अनेक स्तरों के निम्न में से कोई एक अथवा अनेक आधार हो सकते हैं–

i. भाषा क्षेत्र का विस्तार एवं फैलाव।
ii. उस भाषा क्षेत्र के विविध उपक्षेत्रों की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक स्थितियाँ।
iii. भाषा-क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों के पारस्परिक सामाजिक और भावात्मक सम्बन्ध।

उपभाषा

यदि किसी भाषा में बोलियों की संख्या बहुत अधिक होती है तथा उस भाषा का क्षेत्र बहुत विशाल होता है तो पारस्परिक बोधगम्यता अथवा अन्य भाषेतर

कारणों से बोलियों के वर्ग बन जाते हैं। इनको 'उप भाषा' के स्तर के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

उपबोली

यदि एक बोली का क्षेत्र बहुत विशाल होता है तो उसमें क्षेत्रगत अथवा वर्गगत भिन्नताएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। इनको बोली एवं व्यक्ति-बोली के बीच 'उपबोली' का स्तर माना जाता है। उपबोली को कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने पेटवा, जनपदीय बोली अथवा स्थान-विशेष की बोली के नाम से पुकारना अधिक संगत माना हैं।

इसको इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है कि किसी भाषा क्षेत्र में भाषा की संरचक उपभाषाएँ, उपभाषा के संरचक बोलियाँ, बोली के संरचक उपबोलियाँ तथा उपबोली के संरचक व्यक्ति बोलियाँ हो सकती है। व्यक्ति-बोली से लेकर भाषा तक अनेक वर्गीकृत स्तरों का अधिक्रम हो सकता है।

हिन्दी भाषा-क्षेत्र के क्षेत्रीय भाषिक-रूप

हिन्दी भाषा के संदर्भ में विचारणीय है कि अवधी, बुन्देली, छत्तीसगढ़ी, ब्रज, कन्नौजी, खड़ी बोली को बोलियाँ माने या उपभाषाएँ ?

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि इनके क्षेत्र तथा इनके बोलने वालों की संख्या काफी विशाल है तथा इनमें बहुत अधिक भिन्नताएँ हैं, जिनके कारण इनको बोली की अपेक्षा उपभाषा मानना अधिक संगत है। उदाहरण के रूप में यदि बुन्देली को उपभाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है तो पंवारी, लोधान्ती, खटोला, भदावरी, सहेरिया तथा 'छिन्दवाड़ा बुन्देली' आदि रूपों को बुन्देली उपभाषा की बोलियाँ माना जा सकता है। इन बोलियों में एक या एक से अधिक बोलियों की अपनी उपबोलियाँ हैं। उदाहरण के रूप में बुन्देली उपभाषा की 'छिन्दवाड़ा बुन्देली' बोली की पोवारी, गाओंली, राघोबंसी, किरारी आदि उपबोलियाँ है। इस प्रकार बुन्देली के संदर्भ में व्यक्तिगत बोली, उपबोली, बोली, एवं उपभाषा रूप प्राप्त हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार बुन्देली में बोलियाँ एवं उनकी उपबोलियाँ मिलती हैं, उसी प्रकार कन्नौजी की बोलियाँ एवं उनकी उपबोलियाँ अथवा हरियाणवी की बोलियाँ एवं उपबोलियाँ प्राप्त नहीं होती। किन्तु हरियाणवी एवं कन्नौजी को भी वही दर्जा देना पड़ेगा जो हम बुन्देली को देंगे। यदि हम बुन्देली को हिन्दी की एक

उपभाषा के रूप में स्वीकार करते हैं तो कन्नौजी एवं हरियाणवी भी हिन्दी की उपभाषाएँ हैं। इस दृष्टि से हिन्दी के क्षेत्रगत रूपों के स्तर वर्गीकरण में कहीं उपभाषा एवं बोली के अलग-अलग स्तर हैं तथा कहीं उपभाषा एवं बोली का एक ही स्तर हैं। यह बहुत कुछ इसी प्रकार है जिस प्रकार मिश्र एवं संयुक्त वाक्यों में वाक्य एवं उपवाक्य के स्तर अलग-अलग होते हैं, किन्तु सरल वाक्य में एक ही उपवाक्य होता है।

हिन्दी भाषा के संदर्भ में विचारणीय है कि क्या उपभाषा एवं भाषा के बीच भी कोई स्तर स्थापित किया जाना चाहिए अथवा नहीं। इसका कारण यह है कि जिन भाषा रूपों को हमने उपभाषाएँ कहा है उन उपभाषाओं को ग्रियर्सन ने भाषा-सर्वेक्षण में ऐतिहासिक सम्बंधों के आधार पर 05 वर्गों में बाँटा है तथा प्रत्येक वर्ग में एकाधिक उपभाषाओं को समाहित किया है। ये पाँच वर्ग निम्नलिखित है–

(1) पश्चिमी हिन्दी
(2) पूर्वी हिन्दी
(3) राजस्थानी
(4) बिहारी
(5) पहाड़ी

इस सम्बंध में लेखक का मत है कि संकालिक भाषावैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार के वर्गीकरण की आवश्यकता नहीं है, जो विद्वान ग्रियर्सन के ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की दृष्टि से इन वर्गों को कोई नाम देना ही चाहते हैं तो वे हिन्दी के सन्दर्भ में उपभाषा एवं भाषा के बीच उपभाषा की समूह गत इकाइयों को अन्य किसी नाम के अभाव में 'उपभाषावर्ग' के नाम से पुकार सकते हैं।

इस प्रकार जिस भाषा का क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा होता है वहाँ भाषा के केवल 3 क्षेत्रगत स्तर होते हैं–

1. व्यक्ति बोली
2. बोली
3. भाषा।

हिन्दी जैसे विस्तृत भाषा-क्षेत्र में निम्नलिखित क्षेत्रगत स्तर हो सकते हैं–

1. व्यक्ति बोली
2. उपबोली
3. बोली

4. उपभाषा
5. उपभाषावर्ग

भाषा

जो विद्वान हिन्दी भाषा की कुछ उपभाषाओं को हिन्दी भाषा से भिन्न भाषाएँ मानने के मत एवं विचार प्रस्तुत कर रहे हैं उनके निराकरण के लिए तथा जिज्ञासु पाठकों के अवलोकनार्थ एवं विचारार्थ निम्न टिप्पण प्रस्तुत हैं–

'हिन्दी भाषा क्षेत्र' के अन्तर्गत भारत के निम्नलिखित राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश समाहित हैं–

उत्तर प्रदेश
उत्तराखंड
बिहार
झारखंड
मध्य प्रदेश
छत्तीसगढ़
राजस्थान
हिमाचल प्रदेश
हरियाणा
दिल्ली
चण्डीगढ़।
मैथिली भाषा

मैथिली को अलग भाषा का दर्जा दे दिया गया है हॉलाकि हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम में अभी भी मैथिली कवि विद्यापति पढ़ाए जाते हैं तथा जब नेपाल में मैथिली आदि भाषिक रूपों के बोलने वाले मधेसी लोगों पर दमनात्मक कार्रवाई होती है तो वे अपनी पहचान 'हिन्दी भाषी' के रूप में उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार मुम्बई में रहने वाले भोजपुरी, मगही, मैथिली एवं अवधी आदि बोलने वाले अपनी पहचान 'हिन्दी भाषी' के रूप में करते हैं।

छत्तीसगढ़ी एवं भोजपुरी

जबसे मैथिली एवं छत्तीसगढ़ी को अलग भाषाओं का दर्जा मिला है तब से भोजपुरी को भी अलग भाषा का दर्जा दिए जाने की माँग प्रबल हो गई है।

हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का सिलसिला मैथिली एवं छत्तीसगढ़ी से आरम्भ हो गया है। मैथिली पर टिप्पण लिखा जा चुका है। छत्तीसगढ़ी एवं भोजपुरी के सम्बंध में कुछ विचार प्रस्तुत हैं। जब तक छत्तीसगढ़ मध्य प्रदेश का हिस्सा था तब तक छत्तीसगढ़ी को हिन्दी की बोली माना जाता था। रायपुर विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान के प्रोफेसर डॉ. रमेश चन्द्र महरोत्र का सन् 1976 में एक आलेख रायपुर से भाषिकी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ, जिसमें हिन्दी की 22 बोलियों के अंतर्गत छत्तीसगढ़ी समाहित है।

लेखक भोजपुरी के सम्बंध में भी कुछ निवेदन करना चाहता है। लेखक को जबलपुर के विश्वविद्यालय में डॉ. उदय नारायण तिवारी जी के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भोजपुरी की भाषिक स्थिति को लेकर अकसर हमारे बीच विचार विमर्श होता था। उनके जामाता डॉ. शिव गोपाल मिश्र उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष व्याख्यानमाला आयोजित करते हैं। दिनांक 26 जून, 2013 को मुझे हिन्दुस्तानी एकाडमी, इलाहाबाद के श्री बृजेशचन्द्र का 'डॉ. उदय नारायण तिवारी व्याख्यानमाला' निमंत्रण पत्र प्राप्त हुआ। व्याख्यान का विषय था – 'भोजपुरी भाषा'। लेखक ने उसी दिन व्याख्यान के सम्बंध में डॉ. शिव गोपाल मिश्र को जो पत्र लिखा उसका व्याख्यान के विषय से सम्बंधित अंश पाठको के अवलोकनार्थ अविकल प्रस्तुत हैं–

डॉ. उदय नारायण तिवारी जी ने भोजपुरी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन किया। उनके अध्ययन का वही महत्व है, जो सुनीति कुमार चटर्जी के बांग्ला पर सम्पन्न कार्य का है। इस विषय पर हमारे बीच अनेक बार संवाद हुए। कई बार मत भिन्नता भी हुई। जब लेखक भाषा-भूगोल एवं बोली-विज्ञान के सिद्धांतों के आलोक में हिन्दी भाषा-क्षेत्र की विवेचना करता था तो डॉ. तिवारी जी इस मत से सहमत हो जाते थे कि हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अंतर्गत भारत के जितने राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश समाहित हैं, उन समस्त क्षेत्रों में जो भाषिक रूप बोले जाते हैं, उनकी समष्टि का नाम हिन्दी है। खड़ी बोली ही हिन्दी नहीं है अपितु यह भी हिन्दी भाषा-क्षेत्र का उसी प्रकार एक क्षेत्रीय भेद है जिस प्रकार हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्य अनेक क्षेत्रीय भेद हैं। मगर कभी-कभी उनका तर्क होता था कि खड़ी बोली बोलने वाले और भोजपुरी बोलने वालों के बीच बोधगम्यता बहुत कम होती है। इस कारण भोजपुरी को यदि अलग भाषा माना जाता है तो इसमें क्या हानि है। जब लेखक कहता था कि भाषाविज्ञान का सिद्धांत है कि संसार की प्रत्येक भाषा के 'भाषा-क्षेत्र' में भाषिक भिन्नताएँ होती है। हम ऐसी किसी

भाषा की कल्पना नहीं कर सकते जिसके भाषा-क्षेत्र में क्षेत्रगत एवं वर्गगत भिन्नताएँ न हों। इस पर डॉ. तिवारी जी असमंजस में पड़ जाते थे। अनेक वर्षों के संवाद के अनन्तर एक दिन डॉ. तिवारी जी ने मुझे अपने मन के रहस्य से अवगत कराया। उनके शब्द थे:

"जब मैं ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अपने अध्ययन के आधार पर विचार करता हूँ तो मुझे भोजपुरी की स्थिति हिन्दी से अलग भिन्न भाषा की लगती है मगर जब मैं संकालिक भाषाविज्ञान के सिद्धांतों की दृष्टि से सोचता हूँ तो पाता हूँ कि भोजपुरी भी हिन्दी भाषा-क्षेत्र का एक क्षेत्रीय रूप है"।

बहुत से विद्वान यह तर्क देते हैं कि डॉ. उदय नारायण तिवारी ने 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' शीर्षक ग्रंथ में 'भोजपुरी' को भाषा माना है। इस सम्बंध में, लेखक विद्वानों को इस तथ्य से अवगत करना चाहता है कि हिन्दी में प्रकाशित उक्त ग्रंथ उनके डी. लिट्. उपाधि के लिए स्वीकृत अंग्रेजी भाषा में लिखे गए शोध-प्रबंध का हिन्दी रूपांतर है। डॉ. उदय नारायण तिवारी ने कलकत्ता में सन् 1941 ईस्वी में पहले 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' में एम. ए. की परीक्षा पास की तथा सन् 1942 ईस्वी में डी. लिट्. उपाधि के लिए शोध-प्रबंध पूरा करके इलाहाबाद लौट आए तथा उसे परीक्षण के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में जमा कर दिया। आपने अपना शोध-प्रबंध अंग्रेजी भाषा में डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के निर्देशन में सम्पन्न किया तथा डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त होने के बाद इसका प्रकाशन 'एशियाटिक सोसाइटी' से हुआ। इस शोध-प्रबंध का शीर्षक है - 'ए डाइलेक्ट ऑफ भोजपुरी'। डॉ. उदय नारायण तिवारी ने इस तथ्य को स्वयं अपने एक लेख अभिव्यक्त किया है।

राजस्थानी

"श्रीमद्जवाहराचार्य स्मृति व्याख्यानमाला" के अन्तर्गत "विश्व शान्ति एवं अहिंसा" विषय पर व्याख्यान देने सन् 1987 ईस्वी में लेखक का कलकत्ता (कोलकोता) जाना हुआ था। वहाँ श्री सरदारमल जी कांकरिया के निवास पर लेखक का संवाद राजस्थानी भाषा की मान्यता के लिए आन्दोलन चलाने वाले तथा राजस्थानी में "धरती धौरां री" एवं "पातल और पीथल" जैसी कृतियों की रचना करने वाले कन्हैया लाल सेठिया जी से हुआ। उनका आग्रह था कि राजस्थानी को स्वतंत्र भाषा का दर्जा मिलना चाहिए। लेखक ने उनसे अपने आग्रह

पर पुनर्विचार करने की कामना व्यक्त की और मुख्यत: निम्न मुद्दों पर विचार करने का अनुरोध किया–

(1) ग्रियर्सन ने ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया है। स्वाधीनता आन्दोलन में हमारे राष्ट्रीय नेताओं के कारण हिन्दी का जितना प्रचार-प्रसार हुआ उसके कारण हमें ग्रियर्सन की दृष्टि से नहीं अपितु डॉ. धीरेन्द्र वर्मा आदि भाषाविदों की दृष्टि से विचार करना चाहिए।

(2) राजस्थानी भाषा जैसी कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है। राजस्थान में निम्न क्षेत्रीय भाषिक-रूप बोले जाते हैं–

(i) मारवाड़ी
(ii) मेवाती
(iii) जयपुरी
(v) मालवी (राजस्थान के साथ-साथ मध्य-प्रदेश में भी)

राजस्थानी जैसी स्वतंत्र भाषा नहीं है। इन विविध भाषिक रूपों को हिन्दी के रूप मानने में क्या आपत्ति हो सकती है–

(3) यदि आप राजस्थानी का मतलब केवल मारवाड़ी से लेंगे तो क्या मेवाती, जयपुरी, मालवी, हाड़ौती, शेखावाटी आदि अन्य भाषिक रूपों के बोलने वाले अपने अपने भाषिक रूपों के लिए आवाज नहीं उठायेंगे।

(4) भारत की भाषिक परम्परा रही है कि एक भाषा के हजारों भूरि भेद माने गए हैं मगर अंतरक्षेत्रीय सम्पर्क के लिए एक भाषा की मान्यता रही है।

(5) हिन्दी साहित्य की संश्लिष्ट परम्परा रही है। इसी कारण हिन्दी साहित्य के अंतर्गत रास एवं रासो साहित्य की रचनाओं का भी अध्ययन किया जाता है।

(6) राजस्थान की पृष्ठभूमि पर आधारित हिन्दी कथा साहित्य एवं हिन्दी फिल्मों में जिस राजस्थानी मिश्रित हिन्दी का प्रयोग होता है, उसे हिन्दी भाषा क्षेत्र के प्रत्येक भाग का रहने वाला समझ लेता है।

(7) मारवाड़ी लोग व्यापार के कारण भारत के प्रत्येक राज्य में निवास करते हैं तथा अपनी पहचान हिन्दी भाषी के रूप में करते हैं। यदि आप राजस्थानी को हिन्दी से अलग मान्यता दिलाने का प्रयास करेंगे तो राजस्थान के बाहर रहने वाले मारवाड़ी व्यापारियों के हित प्रभावित हो सकते हैं।

(8) भारतीय भाषाओं के अस्तित्त्व एवं महत्त्व को अंग्रेजी से खतरा है। संसार में अंग्रेजी भाषियों की जितनी संख्या है उससे अधिक संख्या केवल हिन्दी

भाषियों की है। यदि हिन्दी के उपभाषिक रूपों को हिन्दी से अलग मान लिया जाएगा तो भारत की कोई भाषा अंग्रेजी से टक्कर नहीं ले सकेगी और धीरे-धीरे भारतीय भाषाओं के अस्तित्त्व का संकट पैदा हो जाएगा।

पहाड़ी

डॉ. सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'पहाड़ी' समुदाय के अन्तर्गत बोले जाने वाले भाषिक रूपों को तीन शाखाओं में बाँटा–

(अ) पूर्वी पहाड़ी अथवा नेपाली

(आ) मध्य या केन्द्रीय पहाड़ी

(इ) पश्चिमी पहाड़ी।

हिन्दी भाषा के संदर्भ में वर्तमान स्थिति यह है कि हिन्दी भाषा के अन्तर्गत मध्य या केन्द्रीय पहाड़ी की उत्तराखंड में बोली जाने वाली 1. कूमाऊँनी 2. गढ़वाली तथा पश्चिमी पहाड़ी की हिमाचल प्रदेश में बोली जाने वाली हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं जिन्हें आम बोलचाल में ' पहाड़ी ' नाम से पुकारा जाता है।

हिन्दी भाषा के संदर्भ में विचारणीय है कि अवधी, बुन्देली, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली आदि को हिन्दी भाषा की बोलियाँ माना जाए अथवा उपभाषाएँ माना जाए। सामान्य रूप से इन्हें बोलियों के नाम से अभिहित किया जाता है, किन्तु लेखक ने अपने ग्रन्थ ' भाषा एवं भाषाविज्ञान' में इन्हें उपभाषा मानने का प्रस्ताव किया है। ' क्षेत्र, बोलने वालों की संख्या तथा परस्पर भिन्नताओं के कारण इनको बोली की अपेक्षा उपभाषा मानना अधिक संगत है। इसी ग्रन्थ में लेखक ने पाठकों का ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया कि हिन्दी की कुछ उपभाषाओं के भी क्षेत्रगत भेद हैं जिन्हें उन उपभाषाओं की बोलियों अथवा उपबोलियों के नाम से पुकारा जा सकता है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इन उपभाषाओं के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है। प्रत्येक दो उपभाषाओं के मध्य संक्रमण क्षेत्र विद्यमान है।

विश्व की प्रत्येक भाषा के विविध बोली अथवा उपभाषा क्षेत्रों में से विभिन्न सांस्कृतिक कारणों से जब कोई एक क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है तो उस क्षेत्र के भाषा रूप का सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र में प्रसारण होने लगता है। इस क्षेत्र के भाषारूप के आधार पर पूरे भाषाक्षेत्र की 'मानक भाषा' का

विकास होना आरम्भ हो जाता है। भाषा के प्रत्येक क्षेत्र के निवासी इस भाषारूप को 'मानक भाषा' मानने लगते हैं। इसको मानक मानने के कारण यह मानक भाषा रूप 'भाषा क्षेत्र' के लिए सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतीक बन जाता है। मानक भाषा रूप की शब्दावली, व्याकरण एवं उच्चारण का स्वरूप अधिक निश्चित एवं स्थिर होता है एवं इसका प्रचार, प्रसार एवं विस्तार पूरे भाषा क्षेत्र में होने लगता है। कलात्मक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम एवं शिक्षा का माध्यम यही मानक भाषा रूप हो जाता है।

इस प्रकार भाषा के 'मानक भाषा रूप' का आधार उस भाषाक्षेत्र की क्षेत्रीय बोली अथवा उपभाषा ही होती है, किन्तु मानक भाषा होने के कारण चूँकि इसका प्रसार अन्य बोली क्षेत्रों अथवा उपभाषा क्षेत्रों में होता है इस कारण इस भाषारूप पर 'भाषा क्षेत्र' की सभी बोलियों का प्रभाव पड़ता है तथा यह भी सभी बोलियों अथवा उपभाषाओं को प्रभावित करता है। उस भाषा क्षेत्र के शिक्षित व्यक्ति औपचारिक अवसरों पर इसका प्रयोग करते हैं। भाषा के मानक भाषा रूप को सामान्य व्यक्ति अपने भाषा क्षेत्र की 'मूल भाषा', केन्द्रक भाषा', 'मानक भाषा' के नाम से पुकारते हैं। यदि किसी भाषा का क्षेत्र हिन्दी भाषा की तरह विस्तृत होता है तथा यदि उसमें 'हिन्दी भाषा क्षेत्र' की भाँति उपभाषाओं एवं बोलियों की अनेक परतें एवं स्तर होते हैं तो 'मानक भाषा' के द्वारा समस्त भाषा क्षेत्र में विचारों का आदान प्रदान सम्भव हो पाता है। भाषा क्षेत्र के यदि आंशिक अबोधगम्य उपभाषी अथवा बोली बोलने वाले परस्पर अपनी उपभाषा अथवा बोली के माध्यम से विचारों का समुचित आदान प्रदान नहीं कर पाते तो इसी मानक भाषा के द्वारा संप्रेषण करते हैं। भाषा विज्ञान में इस प्रकार की बोधगम्यता को 'पारस्परिक बोधगम्यता' न कहकर 'एकतरफा बोधगम्यता' कहते हैं। ऐसी स्थिति में अपने क्षेत्र के व्यक्ति से क्षेत्रीय बोली में बातें होती हैं, किन्तु दूसरे उपभाषा क्षेत्र अथवा बोली क्षेत्र के व्यक्ति से अथवा औपचारिक अवसरों पर मानक भाषा के द्वारा बातचीत होती हैं। इस प्रकार की भाषिक स्थिति को फर्गुसन ने बोलियों की परत पर मानक भाषा का अध्यारोपण कहा है। गम्पर्ज ने इसे 'बाइलेक्टल' के नाम से पुकारा है।

हिन्दी भाषा क्षेत्र में अनेक क्षेत्रगत भेद एवं उपभेद तो है हीं, प्रत्येक क्षेत्र के प्राय: प्रत्येक गाँव में सामाजिक भाषिक रूपों के विविध स्तरीकृत तथा जटिल स्तर विद्यमान हैं और यह हिन्दी भाषा-क्षेत्र के सामाजिक संप्रेषण का यथार्थ है जिसको जाने बिना कोई व्यक्ति हिन्दी भाषा के क्षेत्र की विवेचना के साथ न्याय

नहीं कर सकता। ये हिन्दी पट्टी के अन्दर सामाजिक संप्रेषण के विभिन्न नेटवर्कों के बीच संवाद के कारक हैं। इस हिन्दी भाषा क्षेत्र अथवा पट्टी के गाँवों के रहने वालों के वाग्व्यवहारों का गहराई से अध्ययन करने पर पता चलता है कि ये भाषिक स्थितियाँ इतनी विविध, विभिन्न एवं मिश्र हैं कि भाषा व्यवहार के स्केल के एक छोर पर हमें ऐसा व्यक्ति मिलता है, जो केवल स्थानीय बोली बोलना जानता है तथा जिसकी बातचीत में स्थानीयेतर कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता वहीं दूसरे छोर पर हमें ऐसा व्यक्ति मिलता है, जो ठेठ मानक हिन्दी का प्रयोग करता है तथा जिसकी बातचीत में कोई स्थानीय भाषिक प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। स्केल के इन दो दूरतम छोरों के बीच बोलचाल के इतने विविध रूप मिल जाते हैं कि उन सबका लेखा जोखा प्रस्तुत करना असाध्य हो जाता है। हमें ऐसे भी व्यक्ति मिल जाते हैं, जो एकाधिक भाषिक रूपों में दक्ष होते हैं जिसका व्यवहार तथा चयन वे संदर्भ, व्यक्ति, परिस्थियों को ध्यान में रखकर करते हैं। सामान्य रूप से हम पाते हैं कि अपने घर के लोगों से तथा स्थानीय रोजाना मिलने जुलने वाले घनिष्ठ मित्रों से व्यक्ति जिस भाषा रूप में बातचीत करता है उससे भिन्न भाषा रूप का प्रयोग वह उनसे भिन्न व्यक्तियों एवं परिस्थितियों में करता है। सामाजिक संप्रेषण के अपने प्रतिमान हैं। व्यक्ति प्रायः वाग्व्यवहारों के अवसरानुकूल प्रतिमानों को ध्यान में रखकर बातचीत करता है।

हम यह कह चुके हैं कि किसी भाषा क्षेत्र की मानक भाषा का आधार कोई बोली अथवा उपभाषा ही होती है, किन्तु कालान्तर में उक्त बोली एवं मानक भाषा के स्वरूप में पर्याप्त अन्तर आ जाता है। सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र के शिष्ट एवं शिक्षित व्यक्तियों द्वारा औपचारिक अवसरों पर मानक भाषा का प्रयोग किए जाने के कारण तथा साहित्य का माध्यम बन जाने के कारण स्वरूपगत परिवर्तन स्वाभाविक है। प्रत्येक भाषा क्षेत्र में किसी क्षेत्र विशेष के भाषिक रूप के आधार पर उस भाषा का मानक रूप विकसित होता है, जिसका उस भाषा-क्षेत्र के सभी क्षेत्रों के पढ़े-लिखे व्यक्ति औपचारिक अवसरों पर प्रयोग करते हैं। हम पाते हैं कि इस मानक हिन्दी अथवा व्यावहारिक हिन्दी का प्रयोग सम्पूर्ण हिन्दी भाषा क्षेत्र में बढ़ रहा है तथा प्रत्येक हिन्दी भाषी व्यक्ति शिक्षित, सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठित तथा स्थानीय क्षेत्र से इतर अन्य क्षेत्रों के व्यक्तियों से वार्तालाप करने के लिए इसी को आदर्श, श्रेष्ठ एवं मानक मानता है। गाँव में रहने वाला एक सामान्य एवं बिना पढ़ा लिखा व्यक्ति भले ही इसका प्रयोग करने में समर्थ तथा सक्षम न हो फिर भी वह इसके प्रकार्यात्मक मूल्य को पहचानता है तथा वह भी

अपने भाषिक रूप को इसके अनुरूप ढालने की जुगाड़ करता रहता है। जो मजदूर शहर में काम करने आते हैं वे किस प्रकार अपने भाषा रूप को बदलने का प्रयास करते हैं - इसको देखा परखा जा सकता है।

सन् 1960 में लेखक ने बुलन्द शहर एवं खुर्जा तहसीलों (ब्रज एवं खड़ी बोली का संक्रमण क्षेत्र) के भाषिक रूपों का संकालिक अथवा एककालिक भाषावैज्ञानिक अध्ययन करना आरम्भ किया सामग्री संकलन के लिए जब लेखक गाँवों में जाता था तथा वहाँ रहने वालों से बातचीत करता था तबके उनके भाषिक रूपों एवं आज लगभग 55 वर्षों के बाद के भाषिक रूपों में बहुत अन्तर आ गया है। अब इनके भाषिक-रूपों पर मानक हिन्दी अथवा व्यावहारिक हिन्दी का प्रभाव आसानी से पहचाना जा सकता है। इनके भाषिक-रूपों में अंग्रेजी शब्दों का चलन भी बढ़ा है। यह कहना अप्रासंगिक होगा कि उनकी जिन्दगी में और व्यवहार में भी बहुत बदलाव आया है।

मानक हिन्दी अथवा व्यावहारिक हिन्दी का सम्पूर्ण हिन्दी भाषा क्षेत्र में व्यवहार होने तथा इसके प्रकार्यात्मक प्रचार-प्रसार के कारण, यह हिन्दी भाषा-क्षेत्र में प्रयुक्त समस्त भाषिक रूपों के बीच संपर्क सेतु की भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

हिन्दी भाषा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इस कारण इसकी क्षेत्रगत भिन्नताएँ भी बहुत अधिक हैं। 'खड़ी बोली' हिन्दी भाषा क्षेत्र का उसी प्रकार एक भेद है य जिस प्रकार हिन्दी भाषा के अन्य बहुत से क्षेत्रगत भेद हैं। हिन्दी भाषा क्षेत्र में ऐसी बहुत सी उपभाषाएँ हैं जिनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है किन्तु ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र एक भाषिक इकाई है तथा इस भाषा-भाषी क्षेत्र के बहुमत भाषा-भाषी अपने-अपने क्षेत्रगत भेदों को हिन्दी भाषा के रूप में मानते एवं स्वीकारते आए हैं। कुछ विद्वानों ने इस भाषा क्षेत्र को 'हिन्दी पट्टी' के नाम से पुकारा है तथा कुछ ने इस हिन्दी भाषी क्षेत्र के निवासियों के लिए 'हिन्दी जाति' का अभिधान दिया है।

वस्तु स्थिति यह है कि हिन्दी, चीनी एवं रूसी जैसी भाषाओं के क्षेत्रगत प्रभेदों की विवेचना यूरोप की भाषाओं के आधार पर विकसित पाश्चात्य भाषाविज्ञान के प्रतिमानों के आधार पर नहीं की जा सकती।

जिस प्रकार अपने 29 राज्यों एवं 07 केन्द्र शासित प्रदेशों को मिलाकर भारतदेश है, उसी प्रकार भारत के जिन राज्यों एवं शासित प्रदेशों को मिलाकर हिन्दी भाषा क्षेत्र है, उस हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्तर्गत जितने भाषिक रूप बोले

जाते हैं उनकी समाष्ठि का नाम हिन्दी भाषा है। हिन्दी भाषा क्षेत्र के प्रत्येक भाग में व्यक्ष्ति स्थानीय स्तर पर क्षेत्रीय भाषा रूप में बात करता है। औपचारिक अवसरों पर तथा अन्तर-क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं सार्वदेशिक स्तरों पर भाषा के मानक रूप अथवा व्यावहारिक हिन्दी का प्रयोग होता है। आप विचार करें कि उत्तर प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, अवधी, बुन्देली आदि भाषाओं का राज्य है। इसी प्रकार मध्य प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा बुन्देली, बघेली, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं का राज्य है। जब संयुक्त राज्य अमेरिका की बात करते हैं तब संयुक्त राज्य अमेरिका के अन्तर्गत जितने राज्य हैं उन सबकी समष्टि का नाम ही तो संयुक्त राज्य अमेरिका है। विदेश सेवा में कार्यरत अधिकारी जानते हैं कि कभी देश के नाम से तथा कभी उस देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा होती है। वे ये भी जानते हैं कि देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा भले ही होती है, मगर राजधानी ही देश नहीं होता। इसी प्रकार किसी भाषा के मानक रूप के आधार पर उस भाषा की पहचान की जाती है मगर मानक भाषा, भाषा का एक रूप होता है : मानक भाषा ही भाषा नहीं होती। इसी प्रकार खड़ी बोली के आधार पर मानक हिन्दी का विकास अवश्य हुआ है किन्तु खड़ी बोली ही हिन्दी नहीं है। तत्वत: हिन्दी भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत जितने भाषिक रूप बोले जाते हैं उन सबकी समष्टि का नाम हिन्दी है। हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने के षडयंत्र को विफल करने की आवश्कता है तथा इस तथ्य को बलपूर्वक रेखांकित, प्रचारित एवं प्रसारित करने की आवश्यकता है कि सन् 1991 की भारतीय जनगणना के अन्तर्गत भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का जो ग्रन्थ्थ प्रकाशित हुआ है उसमें मातृभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने वालों की संख्या का प्रतिशत उत्तर प्रदेश (उत्तराखंड राज्य सहित) में 90.11, बिहार (झारखण्ड राज्य सहित) में 80.86, मध्य प्रदेश (छत्तीसगढ़ राज्य सहित) में 85.55, राजस्थान में 89.56, हिमाचल प्रदेश में 88. 88, हरियाणा में 91.00, दिल्ली में 81.64, तथा चण्डीगढ़ में 61.06 है।

हिन्दी भाषा-क्षेत्र एवं मंदारिन भाषा-क्षेत्र

जिस प्रकार चीन में मंदारिन भाषा की स्थिति है उसी प्रकार भारत में हिन्दी भाषा की स्थिति है। जिस प्रकार हिन्दी भाषा-क्षेत्र में विविध क्षेत्रीय भाषिक रूप बोले जाते हैं, वैसे ही मंदारिन भाषा-क्षेत्र में विविध क्षेत्रीय भाषिक-रूप बोले जाते हैं। हिन्दी भाषा-क्षेत्र के दो चरम छोर पर बोले जाने

वाले क्षेत्रीय भाषिक रूपों के बोलने वालों के बीच पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है। मगर मंदारिन भाषा के दो चरम छोर पर बोले जाने वाले क्षेत्रीय भाषिक रूपों के बोलने वालों के बीच पारस्परिक बोधगम्यता बिल्कुल नहीं है। उदाहरण के लिए मंदारिन के एक छोर पर बोली जाने वाली हार्बिन और मंदारिन के दूसरे छोर पर बोली जाने वाली शिआनीज के वक्ता एक दूसरे से संवाद करने में सक्षम नहीं हो पाते। उनमें पारस्परिक बोधगम्यता का अभाव है। वे आपस में मंदारिन के मानक भाषा रूप के माध्यम से बातचीत कर पाते हैं। मंदारिन के इस क्षेत्रीय भाषिक रूपों को लेकर वहाँ कोई विवाद नहीं है। पाश्चात्य भाषावैज्ञानिक मंदारिन को लेकर कभी विवाद पैदा करने का साहस नहीं कर पाते। मंदारिन की अपेक्षा हिन्दी के भाषा-क्षेत्र में बोले जाने वाले भाषिक-रूपों में पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत अधिक है। यही नहीं सम्पूर्ण हिन्दी भाषा-क्षेत्र में पारस्परिक बोधगम्यता का सातत्य मिलता है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि हम हिन्दी भाषा-क्षेत्र में एक छोर से दूसरे छोर तक यात्रा करे तो निकटवर्ती क्षेत्रीय भाषिक-रूपों में बोधगम्यता का सातत्य मिलता है।

हिन्दी भाषा-क्षेत्र के दो चरम छोर के क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के वक्ताओं को अपने अपने क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के माध्यम से संवाद करने में कठिनाई होती है। कठिनाई तो होती है मगर इसके बावजूद वे परस्पर संवाद कर पाते हैं। यह स्थिति मंदारिन से अलग है, जिसके चरम छोर के क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के वक्ता अपने अपने क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के माध्यम से कोई संवाद नहीं कर पाते। मंदारिन के एक छोर पर बोली जाने वाली हार्बिन और मंदारिन के दूसरे छोर पर बोली जाने वाली शिआनीज के वक्ता एक दूसरे से संवाद करने में सक्षम नहीं हैं, मगर हिन्दी के एक छोर पर बोली जाने वाली भोजपुरी और मैथिली तथा दूसरे छोर पर बोली जाने वाली मारवाड़ी के वक्ता एक दूसरे के अभिप्राय को किसी न किसी मात्रा में समझ लेते हैं।

यदि चीन में मंदारिन भाषा-क्षेत्र के समस्त क्षेत्रीय भाषिक-रूप मंदारिन भाषा के ही अंतर्गत स्वीकृत है तो उपर्युक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्तर्गत समाविष्ट क्षेत्रीय भाषिक-रूपों को भिन्न-भिन्न भाषाएँ मानने का विचार नितान्त अतार्किक और अवैज्ञानिक है। लेखक का स्पष्ट एवं निर्भ्रांत मत है कि हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने के षड़यंत्रों को बेनकाब करने और उनको निर्मूल करने की आवश्यकता असंदिग्ध है। हिन्दी देश

को जोड़ने वाली भाषा है। उसे उसके ही घर में तोड़ने का अपराध किसी को नहीं करना चाहिए।

हिन्दी भाषा का स्वरूप एवं विकास दशा और दिशा

हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय भूमिकाओं के निर्वहण के लिए विकसित करने की जरूरत है। इसके लिए भाषा की प्रकृति एवं स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में विकास के प्रतिमानों का निर्धारण जरूरी है। आधुनिक भाषाविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में ये प्रतिमान निम्न हैं–

(1) भाषा के ऐतिहासिक स्वरूप की अपेक्षा एककालिक अथवा संकालिक स्तर पर उस भाषा समाज के पढ़े लिखे लोगों के द्वारा बोली जाने वाली मानक भाषा के स्वरूप एवं प्रकृति को महत्व दिया जाना चाहिए। इस दृष्टि से भारतीय वैयाकरणों ने काल विशेष की भाषा के पढ़े लिखे लोगों के द्वारा बोले जाने वाले भाषा-रूप को महत्त्व दिया। पणिनी के समय में वैदिक भाषा का आदर होता था। उसे सम्माननीय माना जाता था। मगर पाणिनी ने अपने व्याकरण के नियमों का निर्धारण करने के लिए वैदिक भाषा को आधार नहीं बनाया। पाणिनी ने उदीच्य भाग के गुरुकुलों में उनके समय में बोली जाने वाली लौकिक संस्कृत को प्रमाण मानकर अपने ग्रंथ में संस्कृत व्याकरण के नियमों का निर्धारण किया।

(2) भाषा की प्रकृति बदलना है। "भाषा बहता नीर' है। नदी की प्रकृति गतिमान होना है। भाषा की प्रकृति प्रवाहशील होना है। संस्कृति में परिवर्तन होता है, हमारी सोच तथा हमारी आवश्कताएँ परिवर्तित होती हैं उसी अनुपात में शब्दावली में परिवर्तन होता रहता है।

(3) कोई भी जीवंत एवं प्राणवान भाषा 'अछूत' नहीं होती। कोई भी जीवंत एवं प्राणवान भाषा अपने को शुद्ध एवं निखालिस बनाने के व्यामोह में अपने घर के दरवाजों एवं खिड़कियों को बंद नहीं करती। यदि किसी भाषा को शुद्धता की जंजीरों से जकड़ दिया जाएगा, निखालिस की लक्ष्मण रेखा से बाँध दिया जाएगा तो वह धीरे-धीरे सड़ जाएगी और फिर मर जाएगी।

(4) राजतंत्रत्मक शासन व्यवस्था में राजा महाराजाओं द्वारा बोली जाने वाली भाषा को महत्त्व दिया जाता है। लोकतंत्रत्मक शासन व्यवस्था में आम आदमी के द्वारा बोली जाने वाली जन-प्रचलित-भाषा को महत्त्व दिया जाना चाहिए। बोलचाल की सहज, रवानीदार एवं प्रवाहशील भाषा पाषाण

खंडों में ठहरे हुए गंदले पानी की तरह नहीं होती। पाषाण खंडों के ऊपर से बहती हुई अजस्र धारा की तरह होती है।

(5) प्रत्येक भाषा की प्रकृति अलग होती है। प्रत्येक भाषा की अपनी व्यवस्था और संरचना होती है। 'भिन्नत्वं हि प्रकृतिः भाषा की पद रचना एवं वाक्य रचना की प्रकृति के अनुरूप भाषा का प्रयोग होना चाहिए।

उपर्युक्त प्रतिमानों के अनुरूप, हिन्दी भाषा के विकास के सम्बंध में लेखक के दो लेख प्रवक्ता डॉट कॉम पर प्रकाशित हुए हैं, जिनमें लेखक ने हिन्दी भाषा के स्वरूप, प्रगति एवं विकास से सम्बंधित सभी पहलुओं की विस्तार से चर्चा की है। उपर्युक्त संदर्भित लेखों में से लेखक का जो लेख 12 जून, 2014 को प्रकाशित हुआ, उस पर अनेक विद्वानों की प्रतिक्रियाएँ प्रकाशित हुईं। प्रस्तुत लेख में लेखक सबसे पहले उन सभी प्रकाशित प्रतिक्रियाओं के संदर्भ में, हिन्दी भाषा-विकास के सम्बंध में पुनः अपने विचारों को विद्वानों के विचारार्थ व्यक्त करना चाहता है। लेख पर जिन विद्वानों ने प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं, उन सबके प्रति लेखक यथायोग्य स्नेह, आदर, अत्मीय भाव व्यक्त करता है। हम सबका एक ही लक्ष्य है - हिन्दी का विकास हो। हम सबके रास्ते अलग हो सकते हैं। हम सबकी सोच भिन्न हो सकती है। लेखक ने अपने अब तक के पूरे जीवन में हिन्दी की प्रगति और विकास के लिए काम किया है। लेख पर प्रतिक्रिया देने वाले विद्वानों ने भी यही किया है। इस दृष्टि से हम सब एक ही पथ के पथिक हैं। लेखक स्थानाभाव के कारण सबके अलग-अलग बिन्दुवार उत्तर नहीं देना चाहता। वह भाषा विकास और लेख पर प्राप्त टिप्पणों के बारे में अपने चिंतन के कुछ विचार सूत्र पाठकों के विचार के लिए प्रस्तुत कर रहा है–

भारतीय संस्कृति का स्वरूप एवं भाषा-प्रयोग

भारत में भाषाओं, प्रजातियों, धर्मों, सांस्कृतिक परम्पराओं एवं भौगोलिक स्थितियों का असाधारण एवं अद्वितीय वैविध्य विद्यमान है। मेरे दिमाग में दिनकर की पंक्तियाँ गूँजती रही हैं कि भारतीय संस्कृति समुद्र की तरह है, जिसमें अनेक धाराएँ आकर विलीन होती रही हैं। कुछ विद्वान आगत धाराओं को गंदे नालों के रूप में देखते हैं। इस सम्बंध में लेखक का विचार अलग है। उन समस्त आगत धाराओं को जिनको कुछ विद्वान गंदे नालों एवं 'मेल' के रूप में देखते हैं, उनको लेखक 'ऐसे मले की श्रेणी में नहीं रखना चाहता जो हमारी भाषा, धर्म, एवं संस्कृति रूपी गंगा को गंदा नाला' बनाते हैं। धाराएँ हमारी गंगा की मूल स्रोत

भागीरथी में आकर मिलने वाली अलकनंदा, धौली गंगा,अलकन्दा, पिंडर और मंदाकिनी धाराओं की श्रेणी में आती हैं। भाषा के मामले में, लेखक की सोच है कि हिन्दी समाज के प्रयोक्ता जिस बोलचाल की सहज, रवानीदार एवं प्रवाहशील भाषा का प्रयोग करते हैं, उनमें प्रयुक्त होने वाले समस्त शब्दों को स्वीकार कर लेना चाहिए। इसी परिप्रेक्ष्य में लेखक का विचार है कि हम अपने रोजाना के व्यवहार में अंग्रेजी के जिन शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं, उनको अपनाने पर आपत्ति नहीं होनी चाहिए। अंग्रेजी के जिन शब्दों को हिन्दी के अखबारों एवं टी. वी. चैनलों ने अपना लिया है तथा जो जनजीवन एवं लोक में प्रचलित हो गए हैं, उनको अपना लेना चाहिए।

प्रजातंत्र एवं लोकतंत्र में हिन्दी भाषा का स्वरूप

लेखक ने अपने लेख में लिखा था कि "प्रजातंत्र में शुद्ध हिन्दी, क्लिष्ट हिन्दी, संस्कृत गर्भित हिन्दी जबरन नहीं चलाई जानी चाहिए"। एक विद्वान ने टिप्पण किया–"प्रजातंत्र में शुद्ध हिन्दी, क्लिष्ट हिन्दी, संस्कृत गर्भित हिन्दी जबरन नहीं चलाई जानी चाहिए -लेखक महोदय ने ऐसा लिखा। परन्तु क्या अशुद्ध फारसी-अरबी-अंग्रेजी गर्भित-भाषा लिखनी चाहिये- यह कौन सी, कहाँ की और कैसी विचित्र परिभाषा है प्रजातन्त्र की"। एक दूसरे विद्वान का टिप्पण था– "संस्कृताधारित शब्द अपना पूरा परिवार लेकर भाषा में प्रवेश करता है, अंग्रेजी अकेला आता है, उर्दू भी अकेला आता है।नया गढ़ा हुआ, संस्कृत शब्द भी प्रचलित होने पर सरल लगने लगता है। भाषा बदलती है, स्वीकार करता हूँ। पर उसे सुसंस्कृत भी की जा सकती है और विकृत भी। संस्कृत रचित शब्द सहज स्वीकृत होकर कुछ काल के पश्चात रूढ हो जाएंगे। अंग्रेजी के शब्द जब हिंदी में प्रायोजित होते हैं, तो लुढकते लुढकते चलते हैं। उनमें बहाव का अनुभव नहीं होता और कौनसा स्वीकार करना, कौनसा नहीं, इसका क्या निकष? आज प्रदूषित हिंदी को उसी के प्रदूषित शब्दों द्वारा विचार और प्रयोग करके शुद्ध करना है। जैसे रक्त का क्षयरोग उसी रक्त को शुद्ध कर किया जाता है" लेखक का इन विद्वानों से निवेदन है कि वे संदर्भ को ध्यान में रखकर "शुद्ध" शब्द का अभिधेयार्थ नहीं, अपितु व्यंग्यार्थ ग्रहण करने की अनुकंपा करें। प्रजातंत्र में और जबरन चलाने पर विशेष ध्यान देंगे तो शब्द प्रयोग का व्यंग्यार्थ स्वत: स्पष्ट हो जाएगा।

नाम रखने अथवा नामकरण तथा जन प्रचलित शब्द के स्थान पर नया शब्द बनाने अथवा 'गढ़ने में अन्तर

भारत सरकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के द्वारा शब्द निर्माण पर लेखक ने अपने लेख में निम्न टिप्पण किया था–

"उन्होंने जन-प्रचलित शब्दों को अपनाने के स्थान पर संस्कृत का सहारा लेकर शब्द गढ़े, शब्द बनाए नहीं जाते। गढ़े नहीं जाते। लोक के प्रचलन एवं व्यवहार से विकसित होते हैं।" इस पर एक विद्वान ने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की वह नीचे उद्धृत है–

"प्रो. जैन जो कहते हैं, उसे दो अंशों में बाँट कर सोचते हैं। क और ख।

(क) "उन्होंने जन प्रचलित शब्दों को अपनाने के स्थान पर संस्कृत का सहारा लेकर शब्द गढ़े।

(ख) शब्द बनाए नहीं जाते। गढ़े नहीं जाते। लोक के प्रचलन एवं व्यवहार से विकसित होते हैं।"

(ग) "जन प्रचलित"–यह जन कोई एक व्यक्ति नहीं है। और अनेक व्यक्ति यदि प्रचलित करते हैं, तो, क्या वे एक ही शब्द जो सर्वमान्य हो, ऐसा शब्द प्रचलित कर सकते हैं?

(घ) और प्रचलित कैसे करेंगे? जब प्रत्येक का अलग शब्द होगा, तो, अराजकता नहीं जन्मेगी? और यदि ऐसा होता है, तो वैचारिक संप्रेषण कैसे किया जाए?

(ड़) शब्द बनाए नहीं जाते। गढे नहीं जाते?"।

इस लेख में, लेखक विद्वान महोदय की उपर्युक्त आपत्तियों का निराकरण करना चाहता है–

किसी व्यक्ति, स्थान, वस्तु का 'नाम रखनै अथवा नामकरण करने' तथा जन प्रचलित शब्द के स्थान पर नया शब्द 'बनानै अथवा 'गढ़नै में अन्तर है। ये भिन्न विचारों' के वाचक हैं, भिन्न 'संकल्पनाओं के बोधक हैं।

नामकरण करना अथवा नाम रखना

(क) व्यक्ति का नामकरण–घर में जब किसी शिशु का जन्म होता है, वह भगवान के घर से कोई नाम लेकर पैदा नहीं होता। उसका 'नामकरण' होता है। उसका हम नाम रखते हैं। उसके लिए नाम बनाते नहीं हैं। उसके लिए नाम गढ़ते नहीं हैं। जो नाम रखते हैं, वह समाज में उस शिशु के लिए प्रचलित हो जाता है। लोक उसे उसके रखे नाम से पहचानता है। नाम व्यक्तित्त्व का अंग हो जाता है। नाम व्यक्ति से जुड़ जाता है।

(ख) नई व्यवस्था, नई वस्तु, नए आविष्कार के लिए नामकरण–भारत ने गुलामी की जंजीरों को काटकर स्वतंत्रता प्राप्त की। स्वाधीन होने के पहले से ही हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने स्वतंत्र भारत के संविधान के लिए 'संविधान सभो का गठन कर दिया था। हमारे देश की संविधान सभा ने राजतंत्र के स्थान पर लोकतंत्र को ध्यान में रखकर संविधान बनाया। राजतंत्र में सर्वोच्च पद राजा का होता है। लोकतंत्र के लिए उन्होंने 'राष्ट्रपति' का पद बनाया। राष्ट्रपति शब्द इस कारण प्रचलित हो गया। उसके लिए कोई दूसरा शब्द जनता में प्रचलित नहीं था। पद ही नहीं था तो उसका वाचक कैसे होता। लोकतंत्रत्मक शासन व्यवस्था में इसी कारण बहुत से नए शब्दों का नामकरण किया। उनके लिए लोक में कोई अन्य नाम प्रचलित नहीं थे। आपने अपने टिप्पण में जो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, उनमें से अधिकतर इसी कोटि के अन्तर्गत आते हैं। कुछ अन्य उदाहरण देखें–

(1) भारत की सरकार ने जब पद्म पुरस्कारों की नई योजना बनाई तो पुरस्कारों की तीन श्रेणियाँ बनाई तथा उनके नाम रखे–(अ) पद्म विभूषण (आ) पद्म भूषण (इ) पद्म श्री। इसके लिए कोई अन्य नाम प्रचलित नहीं थे। प्रचलित नहीं थे, क्योंकि ये पुरस्कार ही नहीं थे। इस कारण रखे गए नाम चले। इनका प्रचलन हो गया।

(2) भारत की सरकार ने जब पूर्वोत्तर भारत में नए राज्यों का गठन किया तो उनके लिए नाम रखे। (अ) अरुणाचल प्रदेश (आ) मणिपुर (इ) मेघालय (ई) मिजोरम (उ) नगालैण्ड आदि। इन नए गठित राज्यों के लिए पहले से कोई शब्द नहीं थे। शब्द इस कारण नहीं थे, क्योंकि राज्य ही नहीं थे। इन नए राज्यों का नामकरण किया गया। इन राज्यों को सब इनके नाम से पुकारते हैं।

(3) अभी हाल में 'आन्ध्र प्रदेश को दो भागों में बाँटा गया है। एक राज्य का नामकरण किया गया–तेलंगाना। दूसरे राज्य का नामकरण किया गया सीमान्ध्र। ये नाम चलेंगे। लोक प्रचलित हो जाएँगे।

(4) भारत के अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने चन्द्रमा पर भेजे जाने वाले अंतरिक्ष प्रेक्षण उपग्रह का नाम 'चन्द्रयाने तथा मंगल पर भेजे जाने वाले अंतरिक्ष प्रेक्षण उपग्रह का नाम 'मंगलयाने रखा। इनका नामकरण 'चन्द्रयान' एवं 'मंगलयान' किया। ये नाम चल रहे हैं। संसार की किसी भी देश का वैज्ञानिक जब किसी भी भाषा में इनका उल्लेख करेगा तो उसे 'चन्द्रयाने एवं 'मंगलयान' शब्दों का प्रयोग करना पड़ेगा।

शब्द बनाना अथवा शब्द गढ़ना

शब्द बनाने अथवा शब्द गढ़ने को निम्न उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। अंग्रेजों ने भारत में 'रेलवे नेटकर्क शुरु किया। रेल की पटरियों का जाल बिछाने का काम किया। रेल से जुड़े अंग्रेजी के सैकड़ों शब्द जन प्रचलित हो गए। उदाहरण देखें- (1) इंजन (2) रेलवे (3) एक्सप्रेस (4) केबिन (5) गॉर्ड (6) स्टेशन (7) जंक्शन (8) टाइम टेबिल (9) टिकट (10) टिकट कलेक्टर (11) डीजल इंजन (12) प्लेटफॉर्म (13) बोगी (14) बुकिंग (15) सिग्नल (16) स्टेशन (17) स्टेशन मास्टर।

इन जैसे जन प्रचलित शब्दों के स्थान पर इनके लिए नए शब्द बनाने अथवा गढ़ने वालों से लेखक सहमत नहीं हो सकता। भारतीय भाषाविज्ञान की महान परम्परा के अध्ययन के बाद लेखक को जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसके आधार पर वह यह बात कह रहा है। आचार्य रघुवीर जी ने जो कार्य किया है वह स्तुत्य है मगर उन्होंने भी अंग्रेजी के जन प्रचलित शब्दों के स्थान पर जिन शब्दों को गढ़ा है उनसे सहमत नहीं हूँ। उदाहरण के लिए रेलगाड़ी के स्थान पर उन्होंने संस्कृत की धातुओं एवं परसर्गों एवं विभक्तियों की सहायता से शब्द बनाया जो उपहास का कारक बना। ऐसे ही उदाहरणों के कारण 'रघुवीरी हिन्दी' हास्यास्पद हो गई। लोक में रेल ही चलता है और चलेगा। गढ़ा शब्द नहीं चलेगा। इसी संदर्भ में, लेखक का मत है कि जो शब्द जन-प्रचलित हैं उनके स्थान पर शब्द गढ़े नहीं। आप नया आविष्कार करें और उसका नामकरण करें, यह ठीक है। जो शब्द जन-प्रचलित हो गए हैं उनके स्थान पर नए शब्द बनाना अथवा गढ़ना श्रम का अपव्यय है। हमें किसी विचार शाखा से अपने को जकड़ना नहीं चाहिए। भाषा की प्रवाहशील प्रकृति को आत्मसात करना चाहिए।

संस्कृत भाषा तथा हिन्दी भाषा

संस्कृत और आधुनिक भारतीय भाषाएँ भिन्न कालों की भाषाएँ हैं। एक काल की भाषा पर दूसरे काल की भाषा के नियमों को नहीं थोपा जा सकता। संस्कृत और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की व्यवस्थाओं एवं संरचनाओं के अन्तर को हमें जानना चाहिए। किसी भाषा के व्याकरण के नियमों को दूसरी किसी अन्य भाषा पर थोपना गलत है। भाषाविज्ञान का यह सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक नियम है। लेखक ने लिखा कि`भाषा की प्रकृति नदी की धारा की तरह होती हैश। इस पर कुछ विद्वानों ने सवाल उठाया कि क्या नदी की धारा

को अनियंत्रित, अमर्यादित एवं बेलगाम हो जाने दें। लेखक का उत्तर है – नदी की धारा अपने तटों के द्वारा मर्यादित रहती है। भाषा अपने व्याकरण की व्यवस्था एवं संरचना के तटों के द्वारा मर्यादित रहती है। भाषा में बदलाव एवं ठहराव दोनों साथ साथ रहते हैं। 'शब्दावली' गतिशील एवं परिवर्तनशील है। व्याकरण भाषा को ठहराव प्रदान करता है। ऐसा नहीं है कि 'व्याकरण' कभी बदलता नहीं है। बदलता है मगर बदलाव की रफतार बहुत धीमी होती है। 'शब्द' आते जाते रहते हैं। हम विदेशी अथवा अन्य भाषा से शब्द तो आसानी से ले लेते हैं मगर उनको अपनी भाषा की प्रकृति के अनुरूप ढाल लेते हैं। 'शब्द' को अपनी भाषा के व्याकरण की पद रचना के अनुरूप विभक्ति एवं परसर्ग लगाकर अपना बना लेते हैं। हम यह नहीं कहते कि मैंने चार 'फिल्म्स' देखींय हम कहते हैं कि मैंने चार फिल्में देखीं।

संस्कृत भाषा का महत्व और पाणिनी तथा पतंजलि का भाषावैज्ञानिक चिंतन

लेखक के लेख को पढ़कर जिन विद्वानों ने प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं, उनमें से कुछ विद्वानों ने लेखक को संस्कृत की व्याकरण परम्परा के महत्व से परिचित कराना चाहा। लेखक सम्प्रति यह निवेदन करना चाहता है कि वह संस्कृत के महान वैयाकरणों एवं निरुक्तकारों के योगदान से सर्वथा अनभिज्ञ नहीं है। वह इससे अवगत है कि प्रातिशाख्यों तथा शिक्षा-ग्रंथों में भाषाविज्ञान और विशेष रूप से ध्वनि विज्ञान से सम्बंधित कितना सूक्ष्मदर्शी और गहन विचार सन्निहित है। भारतीय भाषाविज्ञान की परम्परा बड़ी समृद्ध है और उसमें न केवल वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के भाषाविद् समाहित हैं अपितु प्राकृतों एवं अपभ्रंशों के भाषाविद् भी समाहित है।

पाणिनी ने अपने काल के पूर्व के 10 आचार्यों का उल्लेख किया है। उन आचार्यों ने वेदों के काल की छन्दस् भाषा पर कार्य किया था। पाणिनी ने वैदिक काल की छन्दस भाषा को आधार बनाकर अष्टाध्यायी की रचना नहीं की। उन्होंने अपने काल की जन-सामान्य भाषा संस्कृत को आधार बनाकर व्याकरण के नियमों का निर्धारण किया। वाल्मीकीय रामायण में इस भाषा के लिए 'मानुषी विशेषण का प्रयोग हुआ है। पाणिनी के समय संस्कृत का व्यवहार एवं प्रयोग बहुत बड़े भू-भाग में होता था। उसके अनेक क्षेत्रीय भेद-प्रभेद रहे होंगे। पाणिनी ने भारत के उदीच्य भाग के गुरुकुलों में बोली जाने वाली भाषा को आधार बनाया।

पाणिनी के व्याकरण का महत्व सर्वविदित है। उस सम्बंध में लिखना अनावश्यक है। पाणिनी के व्याकरण की विशिष्टता को अनेक विद्वानों ने रेखांकित किया है। संस्कृत भाषा को नियमबद्ध करने के लिए पाणिनी के सूत्र बीजगणित के जटिल सूत्रों की भाँति हैं।

पतंजलि ने भाषा प्रयोग के मामले में भाषा के वैयाकरण से अधिक महत्त्व सामान्य गाड़ीवान (सारथी) को दिया। महाभाष्यकार पतंजलि के `पतंजलिमहाभाष्य' से एक प्रसंग प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिसमें उन्होंने भाषा के प्रयोक्ता का महत्त्व प्रतिपादित किया है। प्रयोक्ता व्याकरणिक नियमों का भले ही जानकार नहीं होता किन्तु वह अपनी भाषा का प्रयोग करता है। व्याकरणिक नियमों के निर्धारण करने वाले तथा भाषा का प्रयोग करने वाले का पतंजलि-महाभाष्य में रोचक प्रसंग मिलता है।

सामान्य जनता द्वारा बोली जाने वाली सरल, बोधगम्य हिन्दी का प्रयोग

यहाँ इसको रेखांकित करना अप्रसांगिक न होगा कि स्वाधीनता संग्राम के दौरान हिन्दीतर भाषी राष्ट्रीय नेताओं ने जहाँ देश की अखंडता एवं एकता के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार की अनिवार्यता की पैरोकारी की वहीं भारत के सभी राष्ट्रीय नेताओं ने एकमतेन सरल एवं सामान्य जनता द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी का प्रयोग करने एवं हिन्दी उर्दू की एकता पर बल दिया था। इसी प्रसंग में, लेखक यह जोड़ना चाहता है कि प्रजातंत्र में शुद्ध हिन्दी, क्लिष्ट हिन्दी, संस्कृत गर्भित हिन्दी जबरन नहीं चलाई जानी चाहिए। जनतंत्र में ऐसा करना सम्भव नहीं है। ऐसा फासिस्ट शासन में ही सम्भव है। हमें सामान्य आदमी जिन शब्दों का प्रयोग करता है उनको अपना लेना चाहिए। यदि वे शब्द अंग्रेजी से हमारी भाषाओं में आ गए हैं, हमारी भाषाओं के अंग बन गए हैं तो उन्हें भी अपना लेना चाहिए। यह सर्वविदित है कि प्रेमचन्द जैसे महान् रचनाकार ने भी प्रसंगानुरूप किसी भी शब्द का प्रयोग करने से परहेज नहीं किया। उनकी रचनाओं में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। अपील, अस्पताल, ऑफिसर, इंस्पेक्टर, एक्टर, एजेंट, एडवोकेट, कलर, कमिश्नर, कम्पनी, कॉलिज, कांस्टेबिल, कैम्प, कौंसिल, गजट, गवर्नर, गैलन, गैस, चेयरमेन, चौक, जेल, जेलर, टिकट, डाक्टर, डायरी, डिप्टी, डिपो, डेस्क, ड्राइवर, थियेटर, नोट, पार्क, पिस्तौल, पुलिस, फंड, फिल्म, फैक्टरी, बस, बिस्कुट, बूट, बैंक, बैंच, बैरंग, बोतल, बोर्ड,

ब्लाउज, मास्टर, मिनिट, मिल, मेम, मैनेजर, मोटर, रेल, लेडी, सरकस, सिगरेट, सिनेमा, सिमेंट, सुपरिन्टेंडैंट, स्टेशन आदि हजारों शब्द इसके उदाहरण हैं।

प्रेमचन्द जैसे हिन्दी के महान साहित्यकार ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में अंग्रेजी के इन शब्दों का प्रयोग करने में कोई झिझक नहीं दिखाई है। जब प्रेमचंद ने उर्दू से आकर हिन्दी में लिखना शुरु किया था तो उनकी भाषा को देखकर छायावादी संस्कारों में रँगे हुए आलोचकों ने बहुत नाक भौंह सिकौड़ी थी तथा प्रेमचंद को उनकी भाषा के लिए पानी पी पीकर कोसा था। मगर प्रेमचंद की भाषा खूब चली। खूब इसलिए चली, क्योंकि उन्होंने प्रसंगानुरूप किसी भी शब्द का प्रयोग करने से परहेज नहीं किया। उन्होंने शब्दावली आयोग की तरह इसके लिए विशेषज्ञों को बुलाकर यह नहीं कहा कि पहले इन अंग्रेजी के शब्दों के लिए शब्द गढ़ दो ताकि मैं अपना साहित्य सर्जित कर सकूँ। उनके लेखन में अंग्रेजी के ये शब्द ऊधारी के नहीं हैं, जनजीवन में प्रयुक्त शब्द भंडार के आधारभूत, अनिवार्य, अवैकल्पिक एवं अपरिहार्य अंग हैं। फिल्मों, रेडियो, टेलिविजन, दैनिक समाचार पत्रों में जिस हिन्दी का प्रयोग हो रहा है वह जनप्रचलित भाषा है। जनसंचार की भाषा है।

समय समय पर बदलती भी रही है। पुरानी फिल्मों में प्रयुक्त होने वाले चुटीले संवादों तथा फिल्मी गानों की पंक्तियाँ जैसे पुरानी पीढ़ी के लोगों की जबान पर चढ़कर बोलती थीं वैसे ही आज की युवा पीढ़ी की जुबान पर आज की फिल्मों में प्रयुक्त संवादों तथा गानों की पंक्तियाँ बोलती हैं। फिल्मों की स्क्रिप्ट के लेखक जनप्रचलित भाषा को परदे पर लाते हैं। उनके इसी प्रयास का परिणाम है कि फिल्मों को देखकर समाज के सबसे निचले स्तर का आम आदमी भी फिल्म का रस ले पाता है। लेखक का सवाल यह है कि यदि साहित्यकार, फिल्म के संवादों तथा गीतों के लेखक, समाचार पत्रों के रिपोर्टर जनप्रचलित हिन्दी का प्रयोग कर सकते हैं तो भारत सरकार का शासन 'प्रशासन की राजभाषा हिन्दी' को जनप्रचलित क्यों नहीं बना सकता। विचारणीय है कि हिंदी फिल्मों की भाषा ने गाँवों और कस्बों की सड़कों एवं बाजारों में आम आदमी के द्वारा रोजमर्रा की जिंदगी में बोली जाने वाली बोलचाल की भाषा को एक नई पहचान दी है। फिल्मों के कारण हिन्दी का जितना प्रचार-प्रसार हुआ है उतना किसी अन्य एक कारण से नहीं हुआ। आम आदमी जिन शब्दों का व्यवहार करता है उनको हिन्दी फिल्मों के संवादों एवं गीतों के लेखकों ने बड़ी खूबसूरती से सहेजा है।

राजभाषा के संदर्भ में यह संवैधानिक आदेश है कि संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्थानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे। भारत सरकार का शासन राजभाषा का तदनुरूप विकास कर सका है अथवा नहीं यह सोचने विचारने की बात है। इस दृष्टि से भी लेखक फिल्मों में कार्यरत सभी रचनाकारों एवं कलाकारों का अभिनंदन करता है। हिन्दी सिनेमा ने भारत की सामासिक संस्कृति के माध्यम की निर्मिति में अप्रतिम योगदान दिया है। बंगला, पंजाबी, मराठी, गुजराती, तमिल आदि भाषाओं एवं हिन्दी की विविध उपभाषाओं एवं बोलियों के अंचलों तथा विभिन्न पेशों की बस्तियों के परिवेश को सिनेमा की हिन्दी ने मूर्तमान एवं रूपायित किया है।

भाषा तो हिन्दी ही है मगर उसके तेवर में, शब्दों के उच्चारण के लहजे में, अनुतान में तथा एकाधिक शब्द-प्रयोग में परिवेश का तड़का मौजूद है। भाषिक प्रयोग की यह विशिष्टता निंदनीय नहीं, अपितु प्रशंसनीय है। लेखक को प्रसन्नता है कि देर आए दुरुस्त आए, राजभाषा विभाग ने प्रशासनिक हिन्दी को सरल बनाने की दिशा में कदम उठाने शुरु कर दिए हैं। जैसे प्रेमचन्द ने जनप्रचलित अंग्रेजी के शब्दों को अपनाने से परहेज नहीं किया वैसे ही प्रशासनिक हिन्दी में भी प्रशासन से सम्बंधित ऐसे शब्दों को अपना लेना चाहिए जो जन-प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए एडवोकेट, ओवरसियर, एजेंसी, लाट, चौक, अपील, स्टेशन, प्लेटफार्म, एसेम्बली, ऑडिट, केबिनेट, केम्पस, कैरियर, केस, कैश, बस, सेंसर, बोर्ड, सर्टिफिकेट, चालान, चेम्बर, चार्जशीट, चार्ट, चार्टर, सर्किल, इंस्पेक्टर, सर्किट हाउस, सिविल, क्लेम, क्लास, क्लर्क, क्लिनिक, क्लॉक रूम, मेम्बर, पार्टनर, कॉपी, कॉपीराइट, इन्कम, इन्कम टैक्स, इंक्रीमेंट, स्टोर आदि। इसी प्रसंग में, लेखक भारत सरकार के राजभाषा विभाग को यह सुझाव भी देना चाहता है कि जिन संस्थाओं में सम्पूर्ण प्रशासनिक कार्य हिन्दी में शतकों अथवा दशकों से होता आया है वहाँ की फाइलों में लिखी गई, हिन्दी भाषा के आधार पर प्रशासनिक हिन्दी को सरल बनाएँ। जब कोई रोजाना फाइलों में सहज रूप से लिखता है तब उसकी भाषा का रूप अधिक सरल और सहज

होता है बनिस्पत जब कोई सजग होकर भाषा को बनाता है। सरल भाषा बनाने से नहीं बनतीय सहज प्रयोग करते रहने से बन जाती है, ढल जाती है।

सन् 2014 में, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर हुई बहस का जो उत्तर भारत के प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने संसद के दोनों सदनों में दिया उसको लेखक ने सुना तथा प्रयुक्त अंग्रेजी के शब्दों को अपनी शक्ति-सीमा के दायरे में लिखता गया। बहुत से शब्द छूट भी गए। लेखक उक्त संदर्भित भाषण में बोले गए अंग्रेजी के जिन शब्दों को लिख पाया, वे शब्द निम्नलिखित हैं– 1.स्कैम इंडिया 2. स्किल इंडिया 3. एंटरप्रेन्योरशिप 4. स्किल डेवलपमेंट 5. एजेंडा 6. रोडमैप 7. रेप 8. एफ आई आर 9. रेंज 10. कॉमन 11. ब्रेक 12. इंडस्ट्रीज 13. फोकस 14. मार्केटिंग 15. प्रोडक्ट। लेखक ने प्रवक्ता डॉट कॉम पर 12 जून, 2014 को प्रकाशित अपने लेख में मोदी जी के इस भाषण में प्रयुक्त अंग्रेजी के शब्दों का उल्लेख जानबूझ कर किया। ऐसा लेखक ने इस कारण किया जिससे वह उन विद्वानों को उत्तर देने में समर्थ हो सके, जो मूल धारा की शुद्धता को बनाए रखने के नाम पर केवल संस्कृताधारित शब्दों के प्रयोग के हिमायती हैं। भारत सरकार के अधिकारियों को तथा विशेष रूप से गृह मंत्रलय के राजभाषा विभाग के अधिकारियों को इस पर विचार करना चाहिए और तदनुरूप भाषा प्रयोग की नीति का निर्धारण करना चाहिए। राजभाषा हिन्दी में अरबी-फारसी एवं अंग्रेजी के जन प्रचलित शब्दों का प्रयोग करने से परहेज नहीं करना चाहिए। जिन शब्दों का हिन्दी भाषा-क्षेत्र का प्रयोक्ता अपनी जिन्दगी में रोजाना प्रयोग करता है, वे समस्त शब्द एककालिक स्तर पर हिन्दी भाषा के शब्दकोश के अंग हैं। एककालिक स्तर पर प्रयुक्त शब्द देशी अथवा विदेशी नहीं होता।

अंग्रेजी में भारतीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग

ऐसा नहीं है कि केवल हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में ही अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग होता है और अंग्रेजी बिल्कुल अछूती है। अंग्रेजी में संसार की उन सभी भाषाओं के शब्द प्रयुक्त होते हैं जिन भाषाओं के बोलने वालों से अंग्रेजो का सामाजिक सम्पर्क हुआ। चूँकि अंग्रेजों का भारतीय समाज से भी सम्पर्क हुआ, इस कारण अंगेजी ने हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों का आदान किया है। यदि ब्रिटेन में इंडियन रेस्तरॉ में अंग्रेज समोसा, इडली, डोसा, भेलपुरी खायेंगे, खाने में 'करी', 'भुना आलू' एवं 'रायता' मागेंगे तो उन्हें उनके वाचक

शब्दों का प्रयोग करना पड़ेगा। यदि भारत का 'योग' करेंगे तो उसके वाचक शब्द का भी प्रयोग करना होगा और वे करते हैं, भले ही उन्होंने उसको अपनी भाषा में 'योगा' बना लिया है जैसे हमने 'हॉस्पिटल' को 'अस्पताल' बना लिया है। जिन अंग्रेजों ने भारतविद्या एवं धर्मशास्त्र का अध्ययन किया है उनकी भाषा में अवतार, अहिंसा, कर्म, गुरु, तंत्र, देवी, नारद, निर्वाण, पंडित, ब्राह्मन, बुद्ध, भक्ति,भगवान, भजन, मंत्र, महात्मा, महायान, माया, मोक्ष, यति, वेद, शक्ति, शिव, संघ, समाधि, संसार, संस्कृत, साधू, सिद्ध, सिंह, सूत्र, स्तूप, स्वामी, स्वास्तिक, हनुमान, हरि, हिमालय आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

भारत में रहकर जिन अंग्रेजों ने पत्र, संस्मरण, रिपोर्ट, लेख आदि लिखे उनकी रचनाओं में तथा वर्तमान इंगलिश डिक्शनरी में अड्डा, इज्जत, कबाब, कोरा, कौड़ी, खाकी, खाट, घी, चक्कर, चटनी, चड्डी, चमचा, चिट, चोटी, छोटू, जंगल, ठग, तमाशा, तोला, धतूरा, धाबा, धोती, नबाब, नमस्ते, नीम, पंडित, परदा, पायजामा, बदमाश, बाजार, बासमती, बिंदी, बीड़ी, बेटा, भाँग, महाराजा, महारानी, मित्र, मैदान, राग, राजा, रानी, रुपया, लाख, लाट, लाठी चार्ज, लूट, विलायती, वीणा, शाबास, सरदार, सति, सत्याग्रह, सारी(साड़ी), सिख, हवाला एवं हूकाह(हुक्का) जैसे शब्दों को पहचाना जा सकता है।

हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुरूप वाक्य रचना

लेखक ने अपने लेख में लिखा था कि राजभाषा हिन्दी का प्रयोग करते समय वाक्य रचना अंग्रेजी की वाक्य रचना के अनुरूप नहीं होनी चाहिए। यह रचना हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप होनी चाहिए। भारत सरकार के मंत्रलय के राजभाषा अधिकारी का काम होता है कि वह अंग्रेजी के मैटर का आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली में अनुवाद करदे। अधिकांश अनुवादक शब्द की जगह शब्द रखते जाते हैं। हिन्दी भाषा की प्रकृति को ध्यान में रखकर वाक्य नहीं बनाते। इस कारण जब राजभाषा हिन्दी में अनुवादित सामग्री पढ़ने को मिलती है तो उसे समझने के लिए कसरत करनी पड़ती है। लेखक जोर देकर यह कहना चाहता है कि लोकतंत्र में राजभाषा आम आदमी के लिए बोधगम्य होनी चाहिए। सरकारी अधिकारियों ने इस बात पर जोर दिया है कि राजभाषा सामान्य भाषा से अलग दिखनी चाहिए। वह गरिमामय लगनी चाहिए। उसको सुनकर सत्ता का आधिपत्य परिलक्षित होना चाहिए। राजभाषा अधिकारी हिन्दी में अंग्रेजी की सामग्री का अनुवाद अधिक करता है। मूल टिप्पण हिन्दी में नहीं लिखा जाता। मूल टिप्पण

अंग्रेजी में लिखा जाता है। अनुवादक जो अनुवाद करता है, वह अंग्रेजी की वाक्य रचना के अनुरूप अधिक होता है। हिन्दी भाषा की रचना-प्रकृति अथवा संरचना के अनुरूप कम होता है। उदाहरणार्थ, जब कोई पत्र मंत्रालय को भेजते हैं तो उसकी पावती की भाषा की रचना निम्न होती है–

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास एवं हिन्दी

अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण और उदारीकरण के दबाव के कारण आज प्रौद्योगिकी की आवश्यकता पहले से और अधिक बढ़ गई है। प्रौद्योगिकीय गतिविधियों को बनाए रखने के लिए, लोकतंत्रत्मक दर्शन एवं मूल्यों के अनुरूप सामान्य नागरिक एवं शासनतंत्र के बीच सार्थक संवाद के लिए ई-गवर्नेंस के प्रसार तथा सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों के समाधान के लिए भारतीय जन मानस में वैज्ञानिक चेतना एवं प्रौद्योगिकी के उपयोग का विकास अनिवार्य है। देश की सम्पर्क भाषा हिन्दी में वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकीय ज्ञान के सतत् विकास और प्रसार के लिए हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन एवं प्रौद्योगिकी विकास के लिए वैज्ञानिकों, प्रौद्योगिकविदों एवं हिन्दी भाषा के विशेषज्ञों को मिलकर निरन्तर कार्य करना होगा।

हिन्दी में विज्ञान संबंधी साहित्य का लेखन-कार्य

हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी साहित्य का लेखन-कार्य भारतेन्दु काल से प्रारम्भ हो गया था। 19वीं शताब्दी से इस दिशा में यत्र-तत्र हुए प्रयास बिखरे हुए मिलते हैं। स्कूल बुक सोसायटी, आगरा (सन् 1847), साइंटिफिक सोसायटी, अलीगढ़ (सन् 1862), काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी (सन् 1898), गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (सन् 1900) विज्ञान परिषद, इलाहाबाद (सन् 1913), वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली मण्डल (सन् 1950), वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग (सन् 1961) आदि ने वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण में उल्लेखनीय कार्य किया है। यह जरूर है कि इस वैज्ञानिक-लेखन की भाषिक स्थिति के सम्बन्ध में अपेक्षित विचार सम्भव नहीं हो सका। हिन्दी में जो पुस्तकें वैज्ञानिक विषयों पर उच्चतर माध्यमिक एवं इन्टरमीडिएट कक्षा के विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं, उनकी संख्या बहुत अधिक है। उनकी भाषा-शैली भी अपेक्षाकृत सहज एवं बोधगम्य है। किन्तु जिन ग्रन्थों का निर्माण ''मानक ग्रन्थ अनुवाद योजना'' के अंतर्गत किया गया उनकी भाषा-शैली

में अपेक्षाकृत अस्पष्टता एवं अस्वाभाविकता है तथा अंग्रेजी के वाक्य-विन्यासों की छाया दिखाई देती है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास एवं हिन्दी

- इस दृष्टि से हिन्दी भाषा के विकास में नए आयाम जोड़ने की आवश्यकता असंदिग्ध है। यह निम्न उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए जरूरी है–
- सुगम एवं बोधगम्य तकनीकी लेखन की शैली का तीव्र गति से अधिकाधिक विकास होना।
- जन-सामान्य के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी को सुबोध और सम्प्रेषणीय बनाना।
- जन-सामान्य में जिज्ञासा, तार्किकता एवं विवेकशीलता की प्रवृत्तियों का स्वाभाविक रूप से विकास करना।
- उनमें विश्लेषणात्मक चिंतन शक्ति का विकास।उनमें प्रकृति की प्रक्रियाओं के बोध की दृष्टि उत्पन्न करना।
- हिन्दी के वैज्ञानिक लेखन को बच्चों और किशोरों के लिए आकर्षक एवं बोधगम्य बनाना।
- वयस्कों को उस लेखन का ज्ञान सहज ढंग से उपलब्ध कराना।

विद्वानों को वैज्ञानिक लेखन की विषय-वस्तु और उसके प्रस्तुतीकरण, सरलीकरण, मानकीकरण, शैलीकरण आदि पर विचार-विमर्श करना चाहिए। इस सम्बंध में एक स्पष्ट नीति एवं योजना बनाने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से लेखक का व्यक्तिगत विचार यह है कि हिन्दी के वैज्ञानिक लेखन के प्रसार के लिए भाषा के मानकीकरण की अपेक्षा भाषा के आधुनिकीकरण पर अधिक बल देने की आवश्यकता है।

सूचना प्रौद्यौगिकी के संदर्भ में हिन्दी की स्थिति पर भी विचार अपेक्षित है। आने वाले समय में वही भाषाएँ विकसित हो सकेंगी तथा जिन्दा रह पायेंगी जिनमें इन्टरनेट पर सूचनाएँ उपलब्ध होंगी। भाषा वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इक्कीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक भाषाओं की संख्या में अप्रत्याशित रूप से कमी आएगी।22 अनुमान है कि वे भाषाएँ ही टिक पायेंगी, जिनका व्यवहार अपेक्षाकृत व्यापक क्षेत्र में होगा तथा जो भाषिक प्रौद्योगिकी की दृष्टि से इतनी विकसित हो जायेंगी, जिससे इन्टरनेट पर काम करने वाले उपयोगकर्ताओं के लिए उन भाषाओं में उनके प्रयोजन की सामग्री सुलभ होगी।

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान एवं हिन्दी सूचना एवं प्रौद्योगिकी

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान ने सन् 1990 ईस्वी के बाद से हिन्दी सूचना एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कार्य करने की दिशा में कारगर कदम उठाने शुरु किए। सन् 1992 में, संकाय संवर्धन कार्यक्रम के अन्तर्गत भाषा प्रौद्योगिकी पाठ्यक्रम और कम्प्यूटर परिचय की कार्यशाला आयोजित हुई। विदेशी भाषा के रूप में हिन्दी भाषा का कम्प्यूटर साधित अध्ययन एवं शिक्षण परियोजना का कार्य सम्पन्न हुआ। संस्थान ने सन् 2000 में, हिन्दी विश्वकोश की समस्त सामग्री को 6 खण्डों में तैयार करके उसे इन्टरनेट पर डालने की योजना बनाई तथा इसके जीरो वर्जन का विमोचन इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी ने किया। सन् 1991 में, भारत सरकार के तत्कालीन 'सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय' की 'भारतीय भाषाओं में प्रौद्योगिकी विकास' सम्बंधित योजना के अन्तर्गत 'हिन्दी कॉर्पोरा' परियोजना का काम आरम्भ हुआ।

इस परियोजना के अन्तर्गत विविध विषयों के 3 करोड़ से अधिक शब्दों का संग्रह कर लिया गया है। इसकी टैगिंग के नियमों का निर्धारण सन् 2000 ईस्वी तक हो गया था। समस्त शब्दों की टैगिंग होने से कम्प्यूटर पर हिन्दी में और अधिक सुविधाएँ सुलभ हो जाएँगी। टैगिंग से मतलब शब्द के केवल अधिकतर समझे जाने वाले वाग् भाग (Part of Speech) के निर्धारण से ही नहीं है अपितु भाषा में उसके समस्त प्रयोगो एवं संदर्भित अर्थों के आधार पर उसके समस्त वाग् भागों (संज्ञा, क्रिया, विशेषण, पूर्वसर्ग, सर्वनाम, क्रिया विशेषण, अव्यय, संयोजन, विस्मयादिबोधक) तथा समस्त व्याकरणिक कोटियों (वचन, लिंग, पुरुष, कारक आदि) को स्पष्ट करना है, उसके सहप्रयोगों को स्पष्ट करना है। यदि उसके प्रयोग में संदिग्धार्थकता की सम्भावनाएँ हैं तो उन्हें भी बताना है। उदाहरण के लिए सामान्यत: 'पत्थर' शब्द संज्ञा समझा जाता है, मगर इसका प्रयोग संज्ञा, क्रिया, विशेषण, अव्यय के रूप में भी होता है। निम्न वाक्यों से यह स्पष्ट हो जाएगा।

(1) यह पत्थर बड़ा चमकीलाहै।
(2) वह तो बिलकुल ही पथरा गया है।
(3) पत्थर दिल नहीं पसीजते।
(4) तुम मेरा काम क्या पत्थर करोगे।

इसके अलावा टैगिंग में विवेच्य भाषा में प्रयुक्त उस शब्द के संदर्भित अर्थ प्रयोगो का आवृतिपरक अथवा सांख्यिकीय तकनीक से अध्ययन किया जाता है।

मशीनी अनुवाद की सटीकता के लिए गतिशील प्रोग्रामिंग एल्गोरिदम का विकास जरूरी है। कम्प्यूटरीकृत भाषा विश्लेषण के लिए टैगिंग की वह तकनीक अधिक सटीक हो सकती है जहाँ शब्द की टैगिंग उसके समस्त वाग्भागों की पूरी-पूरी जानकारी प्रदान करे, प्रयोगों की आवृति का साख्यिकीय तकनीक से अध्ययन सम्पन्न करे तथा वाक्य विन्यास और अर्थ विज्ञान के सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में उसके समस्त प्रयोगों को स्पष्ट करे।

फॉण्ट

यह संतोष का विषय है कि इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों ने अब धीरे-धीरे हिन्दी में अपनी जगह बनानी शुरु कर दी है। आज से एक दशक पहले तक फॉण्ट की बहुत बड़ी समस्या थी। मुझे याद आ रहा है, लेखक ने एक लेख कृतिदेव फॉण्ट में टाइप कराकर एक साइट पर प्रकाशन के लिए भेजा था। जब लेख पढ़ने को मिला तो लेख में जिन शब्दों में 'श' वर्ण था उसके स्थान पर 'ष' वर्ण छप गया तथा जिन शब्दों में 'ष' वर्ण था उसके स्थान पर 'श' छप गया। 'भाषा' का रूप 'भाशा' हो गया। देवनागरी यूनिकोड के कारण अब स्थिति बदल गई है। हिन्दी में देवनागरी में टाइपिंग के लिए अनेक प्रकार के साधन उपलब्ध हैं। मंगल, रघु, संस्कृत 2003, अपराजिता आदि में से किसी फॉण्ट में टाइप किया जा सकता है। जो हिन्दी टाइपिंग नहीं जानते वे क्विलपैड, गूगल इण्डिक लिप्यन्तरण आदि में से किसी साइट पर जाकर रोमन लिपि में टाइप कर सकते हैं। रोमन वर्ण देवनारी वर्ण में बदल जाएगा अर्थात लिप्यन्तरित(जतंदेसपजमतंजम) हो जाएगा।

ऑपरेटिंग सिस्टम में हिन्दी

विण्डोज के संस्करणों में हिन्दी में काम करने के लिए दो तरीके हैं। कुछ विण्डोज में उसके कंट्रोल पैनल में जाकर हिन्दी समर्थन सक्षम करना होता है जबकि कुछ विण्डोज में हिन्दी भाषा का पैक पहले से इंस्टॉल्ड होता है अर्थात वे हिन्दी के लिए स्वत: समर्थन सक्षम होते हैं। उदाहरण के लिए माइक्रोसॉफ्ट विण्डोज के विण्डोज घ्क्सपी, विण्डोज 2003 में कंट्रोल पैनल में जाकर हिन्दी समर्थन सक्षम करना होता है (इनमें कंट्रोल पैनल में जाकर रीजनल लैंग्वेज ऑप्शन्स में यूनिकोड को एक्टिवेट किया जाता है। हिन्दी (देवनागरी इंस्क्रिप्ट) का चयन करने के बाद कम्प्यूटर पर हिन्दी में वैसे ही काम किया जा सकता है जैसे रोमन लिपि से होता है। विण्डोज विस्ता, विण्डोज 7 में भारतीय भाषाओं

के लिए स्वत: समर्थन सक्षम व्यवस्था है। भारतीय भाषाओं को ध्यान में रखकर सी-डेक ने बॉस लिनक्स निर्मित किया है। लिनक्स के सभी नए संस्करणों का ऑपरेटिंग सिस्टम हिन्दी भाषा में काम करने के लिए स्वत: समर्थन सक्षम है।

फॉण्ट परिवर्तक एवं लिप्यन्तरण

मेरे बहुत से लेख कृतिदेव फॉण्ट में हैं। अब इस फॉण्ट की सामग्री को फॉण्ट परिवर्तक साइट पर जाकर यूनिकोड में बदलना आसान हो गया है। फॉण्ट परिवर्तक की कई साइटें हैं जिन पर जाकर पुराने फॉण्टों में टाइप की हुई पाठ सामग्री को यूनिकोड में बदला जा सकता है। लिप्यन्तरण के औजारों से किसी एक भारतीय भाषा की लिपि में टाइप सामग्री को किसी अन्य भारतीय भाषा की लिपि में ऑनलाइन बदलकर पढ़ा जा सकता है।

शब्दकोश

अब हिन्दी में प्रत्येक प्रकार के शब्दकोश उपलब्ध हैं। हिन्दी शब्द तंत्र, शब्दमाला, विक्षनरी, ई-महाशब्दकोश, वर्धा हिन्दी शब्दकोश के अलावा हिन्दी विश्वकोश, हिन्दी यूनिकोड पाठ संग्रह, अरविंद समान्तर कोश आदि हैं। 'प्रबोधमहाशब्दकोश' के बाद नया महाशब्दकोश विकसित करने का काम प्रगति पर है। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान ने श्री अरविन्द कुमार और उनकी पत्नी श्रीमती कुसुम कुमार से 'संस्थान अरविंद लेक्सीकॉन' बनवाया है जिसमें नौ लाख से अधिक अभिव्यक्तियाँ हैं।

वर्तनी की जाँच (स्पैल चौकर), ईमेल, मोबाइल, चेट, सर्च इंजन

वर्तनी की जाँच (स्पैल चौकर) के लिए 'कुशल हिन्दी वर्तनी जाँचक', 'सक्षम हिन्दी वर्तनी परीश्रक' तथा 'ओपन सोर्स यूनिकोड वर्तनी परीक्षक तथा शोधक' हैं। ई मेल, मोबाइल, चेट, सर्च इंजन आदि पर हिन्दी उपलब्ध है। ईमेल के लिए जीमेल में हिन्दी की सुविधा सबसे अधिक हैं। निर्देश भी हिन्दी में हैं। चेट के लिए गूगल टॉक एवं याहू मैसेंजर में हिन्दी सुविधा है।

सी-डेक एवं राजभाषा के लिए सुविधाएँ

हम पूर्व में, एक अलग लेख में, पुणें की सी-डेक के द्वारा राजभाषा विभाग के लिए प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की परीक्षाओं के लिए कम्प्यूटर

की सहायता से मल्टी मीडिया पद्धति से प्रशिक्षण सामग्री के निर्माण के सम्बंध में उल्लेख कर चुके हैं। प्रशिक्षण सामग्री का नाम लीला हिन्दी प्रबोध, लीला हिन्दी प्रवीण, लीला हिन्दी प्राज्ञ है। यह सामग्री भारत सरकार के राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर सर्व साधारण के उपयोग के लिए उपलब्ध है। इस संस्था ने अन्य काम भी किए हैं। इसके द्वारा निर्मित 'मंत्र' सॉफ्टवेयर में अनुवाद की सुविधा है। हिंदी पाठ की किसी भी फाइल को 'प्रवाचक' हरीश भिमानी की आवाज में पढ़कर सुना देता है। 'श्रुतलेखन' आपकी आवाज में बोले हुए पाठ को देवनागरी में रूपांतरित कर देता है। इस प्रकार राजभाषा हिन्दी के लिए अब पाठ से वाक (टैक्स्ट टू स्पीच) तथा वाक से पाठ (स्पीच टू टैक्स्ट) दोनों सुविधाएँ मौजूद हैं। श्रुतलेखन-राजभाषा तथा वाचान्तर-राजभाषा सॉफ्टवेयर बन गए हैं।

मशीनी अनुवाद, ओसीआर, हिन्दी भाषा शिक्षण, देवनागरी शिक्षण

मशीनी अनुवाद की सुविधा गूगल, बैबीलॉन, विकिभाषा पर उपलब्ध है। हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि सी-डेक ने भारत सरकार के कार्यालयों में राजभाषा के प्रयोग के लिए अंग्रेजी पाठ का हिन्दी में अनुवाद के लिए मशीनी अनुवाद की व्यवस्था कर दी है। इसके लिए 'मंत्र-राजभाषा' सॉफ्टवेयर निर्मित हो गया है।

मशीनी अनुवाद को सक्षम बनाने के लिए यह जरूरी है कि इन्टरनेट पर प्रत्येक विषय की सामग्री उपलब्ध हो। मशीनी अनुवाद सूचना निष्कर्षण (Information Extraction) पद्धति पर आधारित होता है अर्थात मशीन किसी भाषा में जो डॉटा उपलब्ध होता है उसे याद कर लेती है और उस स्मृति क्षमता के आधार पर अनुवाद करती है। उसे जिस भाषा की जितनी अधिक सामग्री मिलती जाती है, वह उस भाषा में अनुवाद करने के अपने मॉडल को उसी अनुपात में बदलती जाती है। सीखने एवं याद करने की प्रक्रिया सतत जारी रहती है। इस कारण जिस भाषा की जितनी सामग्री इन्टरनेट पर उपलब्ध होगी, उस भाषा का मशीनी अनुवाद उतना ही प्रभावी और सक्षम होगा।

देवनागरी वर्ण चिन्हक (OCR) बन गया है। हिन्दी के पाठ में शब्दों की आवृति के लिए पहले शोधक वर्षों मेहनत करके हजारों लाखों चिटें बनाने का श्रम करते थे। अब सॉफ्टवेयर इस काम को बहुत कम समय में सहज सम्पन्न कर देता है। हिन्दी भाषा सीखने के लिए 'हिन्दी गुरु' है तथा देवनागरी लिपि सीखने के लिए 'अच्छा' है। देवनागरी में लिखे शब्दों अथवा शब्द समूहों को

देवनागरी वर्ण-क्रम के अनुसार व्यवस्थित करने का ऑनलाइन प्रोग्राम मौजूद है। पाठ को तरह-तरह से संसाधित करने के ऑनलाइन प्रोग्राम भी मौजूद हैं।

शब्द संसाधन एवं डाटाबेस प्रबंधन

देवनागरी में लिखे शब्दों अथवा शब्द समूहों को देवनागरी वर्ण-क्रम के अनुसार व्यवस्थित करने के ऑनलाइन प्रोग्राम मौजूद है। पाठ को तरह-तरह से संसाधित करने के ऑनलाइन प्रोग्राम भी मौजूद हैं।

प्रकाशन, वेबसाइट, ज्ञानकोष

डीटीपी प्रकाशन के लिए माइक्रोसॉफ्ट पब्लिशर अच्छा है। प्रकाशन सॉफ्टवेयर पैकेज उपलब्ध हैं। हिन्दी में वेबसाइट बनाना आसान हो गया है। वेबदुनिया, जागरण, प्रभासाक्षी और बीबीसी हिंदी के दैनिक पाठकों की संख्या बीस लाख से अधिक हो गई है। श्री आदित्य चौधरी ने विकीपीडिया की तरह 'भारतकोष' नामक पॉर्टल बनाया है। इसमें इतिहास, भूगोल, विज्ञान, धर्म, दर्शन, संस्कृति, पर्यटन, साहित्य, कला, राजनीति, जीवनी, उद्योग, व्यापार और खेल आदि विषयों पर पर्याप्त सामग्री है, जो काम महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय को करना चाहिए था उसे भारतकोश की टीम कर रही है। यह संतोष का विषय है कि केन्द्रीय हिन्दी संस्थान में 'लघु हिन्दी विश्वकोश परियोजना' पर काम हो रहा है।

सूचना प्रौद्यौगिकी के संदर्भ में हिन्दी की प्रगति एवं विकास

सूचना प्रौद्यौगिकी के संदर्भ में हिन्दी की प्रगति एवं विकास के लिए लेखक एक बात की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता है। व्यापार, तकनीकी और चिकित्सा आदि क्षेत्रों की अधिकांश बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने माल की बिक्री के लिए सम्बंधित सॉफ्टवेयर ग्रीक, अरबी, चीनी सहित संसार की लगभग 30 से अधिक भाषाओं में बनाती हैं मगर वे हिन्दी भाषा का पैक नहीं बनाती। उनके प्रबंधक इसका कारण यह बताते हैं कि हम यह अनुभव करते हैं कि हमारी कम्पनी को हिन्दी के लिए भाषा पैक की जरूरत नहीं है। हमारे प्रतिनिधि भारतीय ग्राहकों से अंग्रेजी में आराम से बात कर लेते हैं अथवा हमारे भारतीय ग्राहक अंग्रेजी में ही बात करना पसंद करते हैं। यह स्थिति कुछ उसी प्रकार की है जैसी लेखक तब अनुभव करता था जब वह रोमानिया के

बुकारेस्त विश्वविद्यालय में हिन्दी का विजिटिंग प्रोफेसर था। उसकी कक्षा के हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थी बड़े चाव से भारतीय राजदूतावास जाते थे, मगर वहाँ उनको हिन्दी नहीं अपितु अंग्रेजी सुनने को मिलती थी। हमने अंग्रेजी को इतना ओढ़ लिया है जिसके कारण न केवल हिन्दी का अपितु समस्त भारतीय भाषाओं का अपेक्षित विकास नहीं हो पा रहा है। जो कम्पनी ग्रीक एवं अरबी में सॉफ्टवेयर बना रही हैं, वे हिन्दी में सॉफ्टवेयर केवल इस कारण नहीं बनाती क्योंकि उसके प्रबंधकों को पता है कि भारतीय उच्च वर्ग अंग्रेजी मोह से ग्रसित है। इसके कारण भारतीय भाषाओं में जो सॉफ्टवेयर स्वाभाविक ढंग से सहज बन जाते, वे नहीं बन रहे हैं।

भारतीय भाषाओं की भाषिक प्रौद्योगिकी पिछड़ रही है। इस मानसिकता में जिस गति से बदलाव आएगा उसी गति से हमारी भारतीय भाषाओं की भाषिक प्रौद्योगिकी का भी विकास होगा। हम हिन्दी के संदर्भ में, इस बात को दोहराना चाहते हैं कि हिन्दी में काम करने वालों को अधिक से अधिक सामग्री इन्टरनेट पर डालनी चाहिए। लेखक ने मशीनी अनुवाद के संदर्भ में, यह निवेदित किया था कि मशीनी अनुवाद को सक्षम बनाने के लिए यह जरूरी है कि इन्टरनेट पर हिन्दी में प्रत्येक विषय की सामग्री उपलब्ध हो। यह हिन्दी की भाषिक प्रौद्योगिकी के विकास के व्यापक संदर्भ में भी उतनी ही सत्य है। जब प्रयोक्ता को हिन्दी में डॉटा उपलब्ध होगा तो उसकी अंग्रेजी के प्रति निर्भरता में कमी आएगी तथा अंग्रेजी के प्रति हमारे उच्च वर्ग की अंध भक्ति में भी कमी आएगी।

वर्तमान की स्थिति भले ही उत्साहवर्धक न हो किन्तु हिन्दी प्रौद्योगिकी का भविष्य निराशाजनक नहीं है। हिन्दी की प्रगति एवं विकास को अब कोई ताकत रोक नहीं पाएगी। वर्तमान में, कम्प्यूटरों के कीबोर्ड रोमन वर्णों में हैं तथा उनका विकास अंग्रजी भाषा को ध्यान में रखकर किया गया है। आम आदमी को इसी कारण कम्प्यूटर पर अंग्रेजी अथवा रोमन लिपि में काम करने में सुविधा का अनुभव होता है। निकट भविष्य में कम्प्यूटर संसार की लगभग तीस चालीस भाषाओं के लिखित पाठ को भाषा में बोलकर सुना देगा तथा उन भाषाओं के प्रयोक्ता की भाषा को सुनकर उसे लिखित पाठ में बदल देगा। ऐसी स्थिति में, कम्प्यूटर पर काम करने में भाषा की कोई बाधा नहीं रह जाएगी। एक भाषा के पाठ को मशीनी अनुवाद से दूसरी भाषा में भी बदला जा सकेगा, उन भाषाओं में परस्पर वाक से पाठ तथा पाठ से वाक में अंतरण बहुत सहज हो जाएगा। भाषा विशेष के ज्ञान का रुतबा समाप्त हो जाएगा।

हिंदी भाषा के स्वरूप

हिंदी के प्रकृतिक रूप पाँच हैं–

(क) संपर्क भाषा हिंदी–एक भाषा भाषी जिसे भाषा के माध्यम से किसी दूसरी भाषा के बोलने वालों के साथ संपर्क स्थापित कर सके, उसे संपर्क भाषा कहते हैं। ऐसी भाषा मात्र दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषा भाषियों के बीच संपर्क का माध्यम नहीं बनती, जो एक दूसरे की भाशा से परिचित नहीं हैं, अपतु दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषाभाषी राज्यों के बीच तथा केंद्र और राजयों के बीच भी संपर्क स्थापित करने का माध्यम बन सकती है। भारत के ही प्राचीन इतिहास पर यदि हम नजर डालते हैं तो पाते हैं कि यहाँ हर युग में राष्ट्र की एक प्रमुख भाषा संपर्क भाषा की भूमिका का निर्वाह करती रही है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्‌भव और विकास से पहले संपर्क भाषा की इसी परंपरा के क्रम में हम संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का प्राजल प्रयोग पाते हैं। बाद में, मुगल शासन, देशी राजाओं और अंग्रेजी शासन काल में हिंदी को संपूर्ण रूप से तो नहीं, किंतु आंशिक रूप से संपर्क भाषा के रूप में व्यवहार किया गया। आजादी की लड़ाई के समय में गांधी और सुभाष जैसे गैर-हिंदी भाषी नेताओं ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में क्रांति संदेश देने और दो भिन्न-भाषियों के बीच संपर्क के लिए हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में अपनाया। आजादी के बाद हमारी यहां हिंदी देश की सर्वमान्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है।

(ख) बहुराष्ट्रीय भाषा हिंदी अथवा विश्वात्मक भाषा हिंदी–बहुराष्ट्रीय भाषा अथवा विश्वात्मक भाषा से उस भाषा का बोध होता है, जो एक से अधिक देशें में प्रयोग किया जाता है। हिंदी गुयाना, फिजी, सुरिनाम, मॉरीशस त्रिनिदाद आदि अनेक देशों में बहुसंख्यक जनता के बीच संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जाती है। भारत के पड़ोसी देश नेपाल,बर्मा, श्रीलंका आदि के अतिरिक्त इंग्लैंड अमेरिका, कनाडा, अफ्रिका, आदि देशों में काभी संख्या में एशियाई लोग हैं जिनके बीच हिंदी संपर्क भाषा है। मुस्लिम देशों में तो हिंदी इतनी परिचित एवं सुलभ है कि वे अनेक हिंदी सीरियल बड़े चाव से और नियमित रूप से देखते हैं। विश्व के अधिकांश बड़े देशों में विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी का पाठ्यक्रम है और उसमें काफी छात्र-छात्राएँ अध्ययनरत है।

आज विश्वात्मक गणना के आधार पर हिंदी विश्व में सबसे अधिक बोली समझी जाने वाली भाषाओं में पहले स्थान पर है। तात्पर्य यह है कि विश्व में

किसी एक भाषा बोलने समझने वालों में हिंदी बोलने समझने वाले सर्वाधिक लोग है। भारत में आद्योगित उदारीकरण के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन और उनके द्वारा इस देश में अपने व्यवसाय के प्रसार के उद्देश्य से देश की व्यापक जन भाषा हिंदी को व्यावसायिक संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग तथा टी.वी चौनलों क्षरा हिंदी के अनेक कार्यक्रमों का एक साथ भारतख्ब अरब इंग्लैंड, अमेरिका आदि में प्रसारण से पहले विश्व के अनेक देशों में हिंदी का प्रयोग होने की जानकारी के बावजूद इस भाषा के बहुराष्ट्रीय भाषिक स्वरूप अथवा यूँ कहें कि विश्वात्मक स्वरूप से आम तौर पर इस देश के बुद्धिजीवी भी परिचित नहीं थे। विश्व स्तर पर सबसे अधिक लोगों द्वारा जानी समझी जाने वाली भाषाओं के बीच प्रथम स्थान ग्रहण करने के पश्चात भी हमारे पढ़े-लिखे भारतीय की मानस दशा कुछ ऐसी हो चुकी है कि हम बुद्धिजीवी भी हिंदी के विश्वात्मक स्वरूप को अपने मानस-पटल पर उतार पाने में बड़ी कठिनाई अनुभव कर रहे हैं, जन सामान्य की तो बात ही क्या? फिर भी आज हिंदी के विश्वात्मक प्रकृति से हम अपना पल्ला नहीं झाड़ सकते, न ही इस तथ्य को झुठला सकते है।

(ग) राष्ट्र भाषा हिंदी–राष्ट्रभाषा का अर्थ है राष्ट्र की भाषा। इस तरह राष्ट्र की जितनी भी भाषाएँ है, सभी राष्ट्रभाषा है। फल्स्वरूप भारत के संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित 22 भाषाओं के अतिरिक्त देश की दर्जनों अन्य भाषाएं भी जो अपने अपने क्षेत्रों में लोक सम्प्रेषण के माध्यम है, हमारी राष्ट्र भाषाएं है। यही कारण है कि भारत के संविधान में इनमें से किसी भी एक भाषा को राष्ट्रभाषा के नाम से अभिहित नहीं किया गया है। यही राजभाषा, संघभाषा अथवा संपर्क भाषा जैसे शब्दों का ही व्यवहार हुआ है। परंतु इतना होते हुए भी एक विशिष्ट अर्थ में राष्ट्रभाषा की संकल्पना और उसकी सार्थकता से हम इन्कार नहीं कर सकते और इस सार्थकता एवं यथार्थता के हकदार भी अपनी स्थिति के चलते हिंदी हो रही है। राजभाषा अथवा संपर्क भाषा अपनी एक सीमा में परिधि में बंधी है, परन्तु, उस परिधि की सीमा के आर-पार विस्तृत व्यापक आयामों में परिव्याप्त, राष्ट्र के प्रशासन समस्त कार्य व्यापार, व्यवसाय रीति-नीति तकनीक तथा संस्कति और परंपरा को अभिव्यक्ति देने वाली तथा विश्व के विभिन्न देशों तक इन्हें पहुचाने में समर्थ राष्ट्र की एक सुगम सुबोध एवं सशक्त भाषा राष्ट्र भाषा होती है।

भारत में इस रूप में राष्ट्रभाषा के स्वरूप में भी हिंदी स्वभावत: प्रतिष्ठित है। वस्तुत: राष्ट्रभाषा राष्ट्र की वह भाषा होती है, जो अपने व्यापक परिवेश और

विकासोन्मुख प्रवर्धमान शक्तियों के चलते अपनी क्षेत्रीयता की सीमा से उपर उठते हुए देश के विभिन्न क्षेत्रों संवेदन स्पंदन को अपनी आत्मा में समेट कर उसे प्रकाश, अभिव्यक्ति देती है जो विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न भाषा भाषियों के बीच भावनात्मक ऐक्य स्थापित करने में सेतु का काम करता है। हिंदी इन दोनों ही दायित्वों का बखूबी निर्वाह कर रही है और इसलिए इसकी राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठा किसी कृत्रिम प्रयास का नहीं, स्वाभाविक गति का परिणाम है–

(घ) मातृभाषा हिंदी–हिंदी का मातृभाषिक प्रदेश दिल्ली और दिल्ली से लगा उत्तर प्रदेश का जिला मेरठ मात्र है। वस्तुत: मातृभाषा वह भाषा है जिसे व्यक्ति अपनी माता की गोद में सीखता है, अर्थात् उसे माँ–बाप, उसे अड़ोस–पड़ोस, उसके अपने संस्कार की भाषा मातृभाषा होती है। मातृभाषा की पहचान के संबंध में गुलाब राय ने अपने लेख "मातृभाषा की महत्ता" में लिखा है कि यदि किसी की मातृभाषा का पता करना हो और यह किसी भी प्रकार पता नहीं चल पाएं तो अचानक पीछे से उसकी पीठ पर मुक्का मारो। ऐसी स्थिति में जिस भाषा में वह अपनी आह व्यक्त करे वहीं उसकी मातृभाषा होगी। कारण, कोई कितना भी विदेशी भाषा का ज्ञान रखने वाला हो, अतिशय सुख अथवा अतिशय दु:ख की अवस्था में वह अपनी मातृभाषा में ही अपने हृदय का भाव व्यक्त करेगा। यह एक अजीब–सी बात देखने को मिलती है कि जो हिंदी मातृभाषा के रूप में मात्रा दिल्ली और उससे लगे मेरठ जिले एंव उसके आस–पास के एक छोटे से भू–भाग में प्रयोग में रही, द्वितीय भाषा के रूप में लगभग सारे भारत के विस्तार में प्राजल संपर्क का एक मात्र साधन बन चुकी है।

(ड़) राजभाषा हिंदी–राजभाषा का अर्थ है वह भाषा जो राजकाज. प्रशासन–तंत्र के कार्य के संपादन को गतिविधि की कार्यकलापों की भाषा हो जैसे हर देश के अपने प्रतीक स्वरूप झंडे होते है और उसे राष्ट्रध्वज के नाम से पुकारते हैं, उसी तरह हर देश की समग्रता की अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में सार्वदेशिक स्वरूप रखने वाली उसकी राजकीय गतिविधि के संपादन की एक भाषा भी होती है और उस भाषा को राजभाषा की संज्ञा दी जाती है। परंतु ऐसे संघ राष्ट्रों में जहां देश राष्ट के भिन्न–भिन्न राज्यों का अलग अलग राजभाषाएं है वहां भाषा संघ की राजभाषा होती है, जो आमतौर पर समस्त देश में अथवा देश के अधिकांश भागों में परस्पर भिन्न–भिन्न भाषभाषियों के बीच संपर्क माध्यम का कार्य तो करती ही है, देश की शिक्षा, देश का ज्ञान विज्ञान,

रीति-नीति, कला संस्कृति आदि से संबंधित समस्त कार्यव्यापारी का निर्वाह भी करती है। हिंदी बखूबी इन दायित्वों का निर्वाह करती है। यह आजादी से पहले मुगल शासन काल में और अंग्रेजी शासन काल में अनेक देशी राजाओं के राज्य की राजभाषा देश के व्यापक क्षेत्रों की संपर्क भाषा तथा मुगल एवं अंग्रेजी शासन में ऊपरी तौर पर द्वितीय राजभाषा की तरह प्रयोग की जाती रही।

आजादी की लड़ाई में इसे विभिन्न भाषाभाषी सेनानियों के बीच भावों विचारों एवं कार्ययोजनाओं के संपादन के लिए संपर्क भाषा के रूप में अपनाया गया। यही कारण था कि संविधान सभा ने 14 सितंबर 1949 को इस प्राजल भारतीय संपर्क भाषा एवं राष्ट्रभाषा को संघ की राजभाषा बनाने का संकल्प पारित किया।

भारत के संविधान के अनुसार "देवनागरी लिपि में हिंदी संघ की राजभाषा होगी।"

वस्तुत: संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित देश की बाइसों (22) भाषाएँ देश की राजभाषाएँ है। परंतु जब हम पूरे देश को ध्यान में रखकर राजभाषा की चर्चा करते हैं तो उसका एक मात्र अर्थ होता है संघ की राजभाषा जो संघ के प्रशासनिक कार्यों संघ और राज्यों के बीच संपर्क तथा अपने देश का दूसरों देशों के साथ राजनायिक संबंध और परस्पर आदान-प्रदान के माध्यम के रूप में प्रायुक्त होता है। यही हिंदी भारत के संघ की राजभाषा है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के स्वरूप

प्रयोजनमूलक हिन्दी के संदर्भ में 'प्रयोजन' विशेषण में 'मूलक' उपसर्ग लगने से 'प्रयोजनमूलक' शब्द बना है। 'प्रयोजन' से तात्पर्य उदेश्य अथवा प्रयुक्त तथा 'मूलक' उपसर्ग से तात्पर्य आधारित अत: प्रयोजनमूलक भाषा से तात्पर्य हुआ किसी विशिट उदेश्य के अनुसार प्रयुक्त भाषा। इसी संदर्भ में प्रयोजनमूलक हिन्दी का अर्थ हुआय ऐसी विशिष्ट हिन्दी जिसका प्रयोग किसी विशिष्ट प्रयोजन (उद्देश्य) के लिए किया जाता है। समान्यत: प्रयोजनमूलक हिन्दी पर विचार करने पर हिन्दी के मुख्यत: तीन रूप सामने आते हैं- बोलचाल की हिन्दी, साहित्यिक हिन्दी, प्रायोगिक हिन्दी। 'प्रयोजनमूलक अंग्रेजी के शब्द का पर्याय है जिसका अर्थ कार्यात्मक, क्रियाशील होता है इससे प्रयोजनमूलक या व्यावहारिक अर्थ स्पष्ट नहीं होता जबकि।चचसपमक शब्द से अधिक सार्थक और स्पष्ट होता है। 'प्रयोजनमूलक' हिन्दी को व्यवहारिक, कामकाजी संज्ञाएँ भी दी जाती रही

है, इन क्षेत्रों में सामान्यतः आपसी बातचीत, दैनदिन व्यवहार, सब्जी-मण्डी, पर्यटन आदि। इसके विपरीत, प्रयोजनमूलक हिन्दी का प्रयुर्क्ति क्षेत्र प्रशासन परिचालन, प्रौधोगिकी, ज्ञान-विज्ञान आदि। श्री रमाप्रसत्र नायक आदि 'व्यवाहारिक हिन्दी' की संज्ञा उचित नहीं मानतें उनके अनुसार 'प्रयोजनमूलक' संबोधन से लगता है इसके अतिरिक्त जो है वह निष्प्रयोजन है, लेकिन ब्रजेश्वर वर्मा जी कहते है कि 'निष्प्रयोजन जैसी कोई चीज नहीं होती बल्कि यह दिवालिया सोच की उपज है। 'प्रयोजनमूलक' व्यावहारिक या सामान्य शब्द नहीं किन्तु एक पारिभाषिक शब्द है। जिसका स्पष्ट और परिभाषित अर्थ ' एक ऐसी विशिष्ट भाषिक संरचना से युक्त हिन्दी जिसका प्रयोग किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही किया गया हो।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रयोगात्मक क्षेत्र

प्रयोजनमूलक हिन्दी के विविध रूपों का आधार उनका प्रयोग क्षेत्र होता है। राजभाषा के पद पर आसीन होने से पूर्व हिन्दी सरकारी कामकाज तथा प्रशासन की भाषा नहीं थी। मुसलमान शासकों के समय उर्दू या अरबी और अंग्रेजों के समय अंग्रेजी थी। स्वतंत्रता के बाद भारत के राजभाषा हिन्दी बनी जिसके फलस्वरुप साहित्य लेखन ही नहीं, बल्कि भारत में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और टेक्नोलाजी के प्रस्फुटन और फैलाव के कारण विभिन्न क्षेत्रों के साथ सरकारी कामकाज तथा प्रशासन के नये अनछुए क्षेत्र से गुजरना पडा, जिसको देखते हुए प्रशासन, विधि, दूरसंचार, व्यवसाय, वाणिज्य, खेलकूद, पत्रकारिता आदि सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दावली गठन की ओर संतोषप्रद विकास एंव विस्तार किया गया। अतः प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रमुख प्रयुक्तियाँ देखा जा सकता है-

साहित्यिक प्रयुक्ति- साहित्य किसी भी भाषा की अनिवार्य आवश्यकता है। लेखबद्ध साहित्यिक भाषा काफी विशिष्टताएँ लिये होती हैं, इसलिए वह लेखकों तथा विशिष्ट पाठकों तक सीमित रहती है। साहित्यिक भाषा में जनसामान्य के जीवन के साथ दर्शन, राजनिति, समाजशास्त्र तथा संस्कृति का आलेख पाया जाता है। हिन्दी भाषा की साहित्यिक प्रयुक्ति की परम्परा बहुत पुरानी है। हिन्दी साहित्य में अनेक विधाओं तथा उसके विशेषताओं को समेटने की क्षमता है। यह भारतीय तथा यूरोपीय भाषाओं की शब्दावली ग्रहण कर समस्त युगचेतना अभिव्यक्ति प्रदान करने की कोशिश की है। अतः हिन्दी भाषा की साहित्यिक अत्यधिक सजग और सर्वसमावेशी है।

वाणिज्य प्रयुक्ति- हिन्दी भाषा की दूसरी महत्त्वपूर्ण प्रयोजनमूलक प्रयुक्ति 'वाणिज्यिक' है। औधोगिक क्रांति के बाद इसकी व्याप्ति मात्र राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्टीय तथा बहुआगामी है जिसके अन्तर्गत व्यापार, वाणिज्य, व्यवसाय, परिवहन, बीमा, बैंकिग तथा निर्यात-आयात आदि क्षेत्रों का समावेश होता, जिसमें निश्चित शब्दावली और निश्चित अथ में प्रयुक्त होता है। इन क्षेत्रों में प्रयुक्त भाषा, साहित्यिक वाक्य रचना से काफी भिन्न होता है जैसे, सोने में उछाल, चाँदी मंदा, तेल की धार ऊँची आदि। अत: हिन्दी भाषा की वाणिज्यिक प्रयुक्रित का क्षेत्र काफी विस्तृत और साथ ही लोकप्रिय है।

कार्यालयी प्रयुक्ति- हिन्दी भाषा की अत्यन्त आधुनिक एवं सर्वोपयोगी प्रयुक्ति में 'कार्यालयी' प्रयुक्ति आता है। जिसका प्रयोग सरकारी, अद्ध-सरकारी और गैर-सरकारी कार्यालयों में काम-काज के रूप में प्रयोग होता है। प्रशासनिक भाषा और बोलचाल की भाषा में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। कार्यालयी भाषा की अपनी विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली, पद-रचना तथा आदि होते है। कार्यालयीन हिन्दी में काम-काज के रूप में मसोदा लेखन, टिप्पणी लेखन, पत्रचार, संक्षेपण, प्रतिवेदन, अनुवाद आदि में प्रयुक्त होता है।

विज्ञापन एवं जनसंचार प्रयुक्ति- हिन्दी की प्रयोजनमूलक प्रयुक्ति के रूप में विज्ञापन और जन-संचार की भाषा तेजी से उभरकर सामने आयी है। आकर्षक वाक्य-विन्यास, शब्दों का उचित चयन तथा वैशिष्टयपूर्ण प्रवहमय भाषिक संरचना विज्ञापन भाषा प्रयुक्ति के मुख्य तत्त्व आते है। विज्ञापन की भाषा चूँकि व्यापार, व्यवसाय, तथा वाणिज्य से सम्बन्ध रखती है, अत: उसमें आकर्षक, मोहक, भाषा शैली, श्रव्यता, संक्षिप्तता आदि गुणों का होना नितांत आवश्यक है। वर्तमान युग में हिन्दी के विज्ञापन भाषा का रूप जन संचार के माध्यमों (समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियों, दूरदर्शन, सिनेमा) आदि आते है। अत: किसी भी देश की जन-संचार उस देश की सशक्त प्रगतिशीलता को दर्शता है।

विधि एवं कानूनी भाषा प्रयुक्ति- कानूनी भाषा का प्रयुक्ति का सीधा सम्बन्ध राज-भाषा, अनुवाद-प्रक्रिया तथा तकनीकी शब्दावली से माना जाता है। कानूनी प्रक्रिया एवं अदालतों में तकनीकी शब्दावली होने के कारण जनसामान्य के लिए जटिल, नीरस तथा उबारू प्रतित होता था इसी को देखते हुए विधि एवं कानून की क्षेत्र में संस्कृत, हिन्दी, अन्य भारतीय भाषाओं के साथ अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को ग्रहण किया गया और इस प्रकार कानून एवं विधि की भाषा

में प्रयोग होने वाले तकनीकी शब्दावली, विशिष्ट पद विन्यास, लम्बे संयुक्त वाक्य-रचना को सुचारू रूप से चलाने प्रतिष्ठित हुआ।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी भाषा प्रयुक्ति- वैज्ञानिक एवं तकनीकी हिन्दी से तात्पर्य है, हिन्दी का वह रूप जो विज्ञान और तकनीकी शब्दावली से मुख्यात: सम्बन्ध रखता है। राजभाषा प्रयोग सम्बन्धी राष्ट्रपति ने 27 अप्रैल, 1960 के आदेशानुसार भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अधीन वैज्ञानिक और तकनिकी शब्दावली आयोग की स्थापना 1961 में की गई। विज्ञान एंव टेक्नोलाजी की भाषा सामान्य व्यवहार की भाषा से सर्वथा भिन्न होती है, अत: वैज्ञानिक एवं तकनिकी विशिष्टता (एकरूपता) में ढालने के लिए हिन्दी, संस्कृत, के साथ अन्तर्राष्टीय शब्दावली का प्रयोग किया गया। आज विज्ञान और टेक्नोलाजी के क्षेत्रों में अनुप्रयुक्त हो रहा है, विज्ञान, गणित,विधि, अंतरिक्ष, दूरसंचार, टेक्नोलाजी आदि।

प्रयोजनमूलक हिन्दी की विशेषताएँ

प्रयोजनमूलक हिन्दी की संरचना, संचेतना एवं संकल्पना के विश्लेषण से उसमें अन्तर्निहित कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ उद्घाटित होकर सामने आती है, जिनमें प्रमुख हैं--

(अ) अनुप्रयुक्तता– प्रयोजनमूलक हिन्दी का सबसे बडाघ गुण या विशेषता है, उसकी अनुप्रयुक्तता अर्थात प्रयोजनीयता। जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में हिन्दी का विशिष्ट रूप विशिष्ट प्रयोजन के अनुसार अनुप्रयुक्त होता है। विश्व भर में बहुत सारी भाषाएँ ऐसी हैं, जिनका अस्तित्त्व व्यवहार तथा साहित्य के क्षेत्र से ही बना हुआ है। प्रशासन, प्रचालन तथा विज्ञान-प्रौधोगिकी के क्षेत्रों को अभिव्यक्त करने की उनकी क्षमता उचित मात्रा में विकसित नहीं हो पाती है। अर्थात उन भाषाओं का अनुप्रयुक्त पक्ष अत्यधिक कमजोर होता है। ऐसी भाषाओं के नवीकरण तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया कालान्तर में लगभग समाप्त-सी हो जाती है। फलत: उनका बहुमुखी सर्वागीण विकास सम्भव नहीं हो पाता। हिन्दी के प्रयोजनमूलक रूप का सर्वकष विकास इसलिए सम्भव हो सका है कि उसमें अनुप्रयुक्तता की महत्तम विशेषता विधमान रही है। अनुप्रयुक्तता की दृष्टि से हिन्दी के प्रयोजनमूलक रूपों में राजभाषा, कार्यालयी, वाणिज्यिक, व्यावसायिक, वैज्ञानिक तथा प्रौधोगिकी क्षेत्रों में प्रयुक्त हिन्दी का समावेश होता है।

(आ) वैज्ञानिकता– प्रयोजनमूलक हिन्दी की दूसरी अहम् विशेषता है उसकी वैज्ञानिकता। किसी भी विषय के तर्क-संगत, कार्य-कारण भाव से युक्त

विशिष्ट ज्ञान पर आश्रित प्रवृति को वैज्ञानिक कहा जा सकता है। इस दृष्टि से प्रयोजनमूलक हिन्दी सम्बन्धित विषय-वस्तु को विशिष्ट तर्क एवं कार्य-कारण सम्बन्धों पर आश्रित नियमों के अनुसार विश्लेषित कर रूपायित करती है। प्रयोजनमूलक हिन्दी की अध्ययन तथा विश्लेषण की प्रक्रिया विज्ञान की विश्लेषण एवं अध्ययन प्रक्रिया से भी अत्यधिक निकटता रखती है, जिन्हें विज्ञान के नियमों के अनुसार सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक कहा जा सकता है। इसी के साथ-साथ प्रयोजनमूलक हिन्दी के सिद्धान्तों एवं प्रयुक्ति में कार्य-कारण भाव की नित्यता भी दृष्टिगत होती है, जिसे किसी भी विज्ञान का सबसे प्रमुख आधार माना जाता है। विज्ञान की भाषा तथा शब्दावली के अनुसार ही प्रयोजनमूलक हिन्दी की भाषा तथा शब्दावली में स्पष्टता, तटस्थता, विषय-निष्ठता तथा तर्क-संगतता विधमान है। अतः स्पष्ट है कि प्रयोजनमूलक हिन्दी अपनी अन्तर्वृत्ति, प्रवृति, प्रयुक्ति, भाषिक संरचना और विषय विश्लेषण आदि सभी स्तरों पर वैज्ञानिकता से युक्त है।

(इ) सामाजिकता– हिन्दी की प्रयोजनमूलकता मूलतः सामाजिक गुण या विशेषता है। सामाजिकता का सम्बन्ध मानविकी से है। अतः प्रकारान्तर से प्रयोजनमूलक हिन्दी का अभिन्न सम्बन्ध मानविकी से माना जा सकता है। प्रयोजनमूलक हिन्दी के निर्माण एवं परिचालन का सम्बन्ध समाज तथा उससे जुडी विभिन्न ज्ञान-शाखाओं से है। सामाजिक परिस्थिति, सामाजिक भूमिका तथा सामाजिक स्तर के अनुरूप प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रयुक्ति-स्तर तथा भाषा-रूप प्रयोग में आते हैं। इतना ही नहीं, सामाजिक विज्ञान की तरह प्रयोजनमूलक हिन्दी में अन्तर्निहित सिद्धान्त और प्रयुक्त-ज्ञान मनुष्य के सामाजिक प्रयुक्तिपरक क्रियाकलापों का कार्य-कारण सम्बन्ध से तर्क-निष्ठ अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाता है। अतः प्रयोजनमूलक हिन्दी में सामाजिकता के तत्त्व एवं विशिष्टता अनिवार्यतः विधमान देखे जा सकते हैं।

(ई) भाषिक विशिष्टता– यह वह विशेषता है, जो प्रयोजनमूलक हिन्दी की स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता को रूपायित कर उसे सामान्य या साहित्यिक हिन्दी से अलग करती है। अपनी शब्द-ग्रहण करने की अद्‌भुत शक्ति के कारण प्रयोजनमूलक हिन्दी ने अनेक भारतीय तथा पश्चिमी भाषाओं के शब्द-भण्डार को आवश्यकतानुसार ग्रहण कर अपनी शब्द-सम्पदा को वृद्धिगत किया है। प्रयोजनमूलक हिन्दी में तकनीकी एवं परिभाषिक शब्दावली का प्रयोग अनिवार्य रूप से विधमान रहता है, जो उसकी भाषिक विशिष्टता को रेखांकित करता है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी की भाषा सटिक, सुस्पष्ट, गम्भीर, वाच्यार्थ प्रधान, सरल तथा एकार्थक होती है और इसमें कहावतें, मुहावरे, अलंकार तथा उक्तियाँ आदि का बिल्कुल प्रयोग नहीं किया जाता है। इसकी भाषा-संरचना में तटस्थता, स्पष्टता तथा निर्वैयक्तिकता स्पष्ट रूप से विधमान रहती है और कर्मवाच्य प्रयोग का बाहुल्य दिखाई देता है। इसी प्रकार, प्रयोजनमूलक हिन्दी में जो भाषिक विशिष्टता तथा विशिष्ट रचनाधर्मिता दृष्टिगत होती है, वह बोलचाल की हिन्दी तथा साहित्यिक हिन्दी में दिखाई नहीं देती। यही उसकी विशेषता है।

हिन्दी का वैश्विक प्रसार

सन् 1998 के पूर्व, मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें हिन्दी को तीसरा स्थान दिया जाता था। सन् 1997 में 'सैन्सस ऑफ इंडिया' का भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रन्थ प्रकाशित होने तथा संसार की भाषाओं की रिपोर्ट तैयार करने के लिए यूनेस्को द्वारा सन् 1998 में भेजी गई यूनेस्को प्रश्नावली के आधार पर उन्हें भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रोफेसर महावीर सरन जैन द्वारा भेजी गई विस्तृत रिपोर्ट के बाद अब विश्व स्तर पर यह स्वीकृत है कि मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से संसार की भाषाओं में चीनी भाषा के बाद हिन्दी का दूसरा स्थान है। चीनी भाषा के बोलने वालों की संख्या हिन्दी भाषा से अधिक है, किन्तु चीनी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा सीमित है। अंग्रेजी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा अधिक है, किन्तु मातृभाषियों की संख्या अंग्रेजी भाषियों से अधिक है।

विश्वभाषा बनने के सभी गुण हिन्दी में विद्यमान हैं। बीसवीं शती के अंतिम दो दशकों में हिन्दी का अंतरराष्ट्रीय विकास बहुत तेजी से हुआ है। हिंदी एशिया के व्यापारिक जगत् में धीरे-धीरे अपना स्वरूप बिंबित कर भविष्य की अग्रणी भाषा के रूप में स्वयं को स्थापित कर रही है। वेब, विज्ञापन, संगीत, सिनेमा और बाजार के क्षेत्र में हिन्दी की माँग जिस तेजी से बढ़ी है वैसी किसी और भाषा में नहीं। विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों तथा सैकड़ों छोटे-बड़े केंद्रों में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर शोध स्तर तक हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था हुई है। विदेशों में 25 से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ लगभग नियमित रूप से हिन्दी में प्रकाशित हो रही हैं। यूएई के 'हम एफ-एम' सहित अनेक देश हिन्दी कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं, जिनमें बीबीसी, जर्मनी के डॉयचे वेले, जापान के

एनएचके वर्ल्ड और चीन के चाइना रेडियो इंटरनेशनल की हिन्दी सेवा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

दिसम्बर 2016 में विश्व आर्थिक मंच ने 10 सर्वाधिक शक्तिशाली भाषाओं की जो सूची जारी की है उसमें हिन्दी भी एक है। इसी प्रकार 'कोर लैंग्वेजेज' नामक साइट ने 'दस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाषाओं' में हिन्दी को स्थान दिया था, के-इण्टरनेशनल ने वर्ष 2017 के लिये सीखने योग्य सर्वाधिक उपयुक्त नौ भाषाओं में हिन्दी को स्थान दिया है।

हिन्दी का एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने और विश्व हिन्दी सम्मेलनों के आयोजन को संस्थागत व्यवस्था प्रदान करने के उद्देश्य से 11 फरवरी 2008 को विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना की गयी थी। संयुक्त राष्ट्र रेडियो अपना प्रसारण हिन्दी में भी करना आरम्भ किया है। हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाये जाने के लिए भारत सरकार प्रयत्नशील है। अगस्त 2018 से संयुक्त राष्ट्र ने साप्ताहिक हिन्दी समाचार बुलेटिन आरम्भ किया है।

4

हिंदी : बोलियाँ और उपभाषाएँ

जिस क्षेत्र का आदमी जहाँ रहता है, उस क्षेत्र की अपनी एक बोली होती है। वहाँ रहने वाला व्यक्ति, अपनी बात दूसरे व्यक्ति को उसी बोली में बोलकर कहता है तथा उसी में सुनता है। जैसे-शेखावाटी (झुन्झुनू, चुरू व सीकर) के निवासी 'शेखावाटी' बोली में कहते हैं एवं सुनते हैं। इसी प्रकार कोटा और बूँदी क्षेत्र के निवासी 'हाड़ौती' मेंय अलवर क्षेत्र के निवासी 'मेवाती' मेंय जयपुर क्षेत्र के निवासी 'ढूँढ़ाड़ी' मेंय मेवाड़ के निवासी 'मेवाड़ी' में तथा जोधपुर, बीकानेर और नागौर क्षेत्रों के निवासी 'मारवाड़ी' में अपनी बात दूसरे व्यक्ति को बोलकर कहते हैं तथा दूसरे व्यक्ति की बात सुनकर समझते हैं।

अत: भाषा का वह रूप जो एक सीमित क्षेत्र मेँ बोला जाए, उसे बोली कहते हैं। कई बोलियों तथा उनकी समान बातों से मिलकर भाषा बनती है। बोली व भाषा का बहुत गहरा संबंध है। भाषा का क्षेत्रीय रूप बोली कहलाता है। अर्थात् देश के विभिन्न भागों में बोली जाने वाली भाषा बोली कहलाती है और किसी भी क्षेत्रीय बोली का लिखित रूप में स्थिर साहित्य वहाँ की भाषा कहलाता है।

भारत की राजभाषा हिन्दी दुनिया में दूसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। बहु भाषी भारत के हिन्दी भाषी राज्यों की आबादी 46 करोड़ से अधिक है। 2011 की जनगणना के मुताबिक भारत की 1.2 अरब आबादी में से 41. 03 फीसदी की मातृभाषा हिंदी है। हिन्दी को दूसरी भाषा के तौर पर इस्तेमाल करने वाले अन्य भारतीयों को मिला लिया जाए तो देश के लगभग 75 प्रतिशत

लोग हिन्दी बोल सकते हैं। भारत के इन 75 प्रतिशत हिंदी भाषियों सहित पूरी दुनिया में तकरीबन 80 करोड़ लोग ऐसे हैं, जो इसे बोल या समझ सकते हैं।

भारत के अलावा इसे नेपाल, मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम, यूगांडा, दक्षिण अफ्रीका, कैरिबियन देशों, ट्रिनिडाड एवं टोबेगो और कनाडा आदि में बोलने वालों की अच्छी-खासी संख्या है। इसके आलावा इंग्लैंड, अमेरिका, मध्य एशिया में भी इसे बोलने और समझने वाले अच्छे-खासे लोग हैं।

हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं, भारत में कुल 18 बोलियाँ हैं, जिनमें अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, हड़ौती,भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया, कुमाउँनी, मगही आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। यह बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उपबोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है।

हिन्दी और इसकी बोलियाँ सम्पूर्ण भारत के विविध राज्यों में बोली जाती हैं। भारत और अन्य देशों में भी लोग हिंदी बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। फिजी, मॉरिशस, गयाना, सूरीनाम, नेपाल और संयुक्त अरब अमीरात की जनता भी हिन्दी बोलती है। फरवरी 2019 में अबू धाबी में हिन्दी को न्यायालय की तीसरी भाषा के रूप में मान्यता मिली।

हिन्दी भारत में सम्पर्क भाषा का कार्य करती है और कुछ हद तक पूरे भारत में आमतौर पर एक सरल रूप में समझी जानेवाली भाषा है। हिन्दी का कभी-कभी नौ भारतीय राज्यों के संदर्भ में भी उपयोग किया जाता है, जिनकी आधिकारिक भाषा हिंदी है और हिन्दी भाषी बहुमत है, अर्थात् बिहार, छत्तीसगढ़, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली का।

मोटे तौर पर हिंद (भारत) की किसी भाषा को 'हिंदी' कहा जा सकता है। अंग्रेजी शासन के पूर्व इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता था। पर वर्तमानकाल में सामान्यतः इसका व्यवहार उस विस्तृत भू-खंड की भाषा के लिए होता है, जो पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल की तराई, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा

दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक फैली हुई है। हिंदी के मुख्य दो भेद हैं - पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी।

पश्चिमी हिंदी

पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत पाँच बोलियों हैं - खड़ी बोली, बांगरू, ब्रज, कन्नौजी और बुंदेली। खड़ी बोली अपने मूल रूप में मेरठ, बिजनौर के आसपास बोली जाती है। इसी के आधार पर आधुनिक हिंदी और उर्दू का रूप खड़ा हुआ। बांगरू को जाठू या हरियानवी भी कहते हैं। यह पंजाब के दक्षिण पूर्व में बोली जाती है। कुछ विद्वानों के अनुसार बांगरू खड़ी बोली का ही एक रूप है जिसें पंजाबी और राजस्थानी का मिश्रण है। ब्रजभाषा मथुरा के आसपास ब्रजमंडल में बोली जाती है। हिंदी साहित्य के मध्ययुग में ब्रजभाषा में उच्च कोटि का काव्य निर्मित हुआ। इसलिए इसे बोली न कहकर आदरपूर्वक भाषा कहा गया। मध्यकाल में यह बोली संपूर्ण हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा के रूप में मान्य हो गई थी। पर साहित्यिक ब्रजभाषा में ब्रज के ठेठ शब्दों के साथ अन्य प्रांतों के शब्दों और प्रयोगां का भी ग्रहण है। कन्नौजी गंगा के मध्य दोआब की बोली है। इसके एक ओर ब्रजमंडल है और दूसरी ओर अवधी का क्षेत्र। यह ब्रजभाषा से इतनी मिलती जुलती है कि इसमें रचा गया जो थोड़ा बहुत साहित्य है वह ब्रजभाषा का ही माना जाता है। बुंदेली बुंदेलखंड की उपभाषा है। बुंदेलखंड में ब्रजभाषा के अच्छे कवि हुए हैं, जिनकी काव्यभाषा पर बुंदेली का प्रभाव है।

पूर्वी हिंदी

पूर्वी हिंदी की तीन शाखाएँ हैं - अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। अवधी अर्द्धमागधी प्राकृत की परंपरा में है। यह अवध में बोली जाती है। इसके दो भेद हैं - पूर्वी अवधी और पश्चिमी अवधी। अवधी को बैसवाड़ी भी कहते हैं। तुलसी के रामचरितमानस में अधिकांशत: पश्चिमी अवधी मिलती हैं और जायसी के पदमावत में पूर्वी अवधी। बघेली बघेलखंड में प्रचलित है। यह अवधी का ही एक दक्षिणी रूप है। छत्तीसगढ़ी पलामू (बिहार) की सीमा से लेकर दक्षिण में बस्तर तक और पश्चिम में बघेलखंड की सीमा से उड़ीसा की सीमा तक फैले हुए भू-भाग की बोली है। इसमें प्राचीन साहित्य नहीं मिलता। वर्तमान काल में कुछ लोकसाहित्य रचा गया है।

हिंदी प्रदेश की तीन उपभाषाएँ और हैं – बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी हिंदी।

बिहारी की तीन शाखाएँ हैं – भोजपुरी, मगही और मैथिली। बिहार के एक कस्बे भोजपुर के नाम पर भोजपुरी बोली का नामकरण हुआ। पर भोजपुरी का प्रसार बिहार से अधिक उत्तर प्रदेश में है। बिहार के शाहाबाद, चंपारन और सारन जिले से लेकर गोरखपुर तथा बारस कमिश्नरी तक का क्षेत्र भोजपुरी का है। भोजपुरी पूर्वी हिंदी के अधिक निकट है। हिंदी प्रदेश की बोलियों में भोजपुरी बोलनेवालों की संख्या सबसे अधिक है। इसमें प्राचीन साहित्य तो नहीं मिलता पर ग्रामगीतों के अतिरिक्त वर्तमान काल में कुछ साहित्य रचने का प्रयत्न भी हो रहा है। मगही के केंद्र पटना और गया हैं। इसके लिए कैथी लिपि का व्यवहार होता है। इसमें कोई साहित्य नहीं मिलता। मैथिली गंगा के उत्तर में दरभगा के आसपास प्रचलित है। इसकी साहित्यिक परंपरा पुरानी है। विद्यापति के पद प्रसिद्ध ही हैं। मध्ययुग में लिखे मैथिली नाटक भी मिलते हैं। आधुनिक काल में भी मैथिली का साहित्य निर्मित हो रहा है।

राजस्थानी का प्रसार पंजाब के दक्षिण में है। यह पूरे राजपूताने और मध्य प्रदेश के मालवा में बोली जाती है। राजस्थानी का संबंध एक ओर ब्रजभाषा से है और दूसरी ओर गुजराती से। पुरानी राजस्थानी को डिंगल कहते हैं। जिसमें चारणों का लिखा हिंदी का आरंभिक साहित्य उपलब्ध है। राजस्थानी में गद्य साहित्य की भी पुरानी परंपरा है। राजस्थानी की चार मुख्य बोलियाँ या विभाषाएँ हैं–मेवाती, मालवी, जयपुरी और मारवाड़ी। मारवाड़ी का प्रचलन सबसे अधिक है। राजस्थानी के अंतर्गत कुछ विद्वान् भीली को भी लेते हैं।

पहाड़ी उपभाषा राजस्थानी से मिलती जुलती हैं। इसका प्रसार हिंदी प्रदेश के उत्तर हिमालय के दक्षिणी भाग में नेपाल से शिमला तक है। इसकी तीन शाखाएँ हैं – पूर्वी, मध्यवर्ती और पश्चिमी। पूर्वी पहाड़ी नेपाल की प्रधान भाषा है जिसे नेपाली और परंबतिया भी कहा जाता है। मध्यवर्ती पहाड़ी कुमायूँ और गढ़वाल में प्रचलित है। इसके दो भे हैं – कुमाउँनी और गढ़वाली। ये पहाड़ी उपभाषाएँ नागरी लिपि में लिखी जाती हैं। इनमें पुराना साहित्य नहीं मिलता। आधुनिक काल में कुछ साहित्य लिखा जा रहा है। कुछ विद्वान् पहाड़ी को राजस्थानी के अंतर्गत ही मानते हैं।

प्रयोग-क्षेत्र के अनुसार वर्गीकरण

हिन्दी भाषा का भौगोलिक विस्तार काफी दूर-दूर तक है जिसे तीन क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है–

(क) हिन्दी क्षेत्र–हिन्दी क्षेत्र में हिन्दी की मुख्यत: सत्रह बोलियाँ बोली जाती हैं, जिन्हें पाँच बोली वर्गों में इस प्रकार विभक्त कर के रखा जा सकता है- पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, पहाडी हिन्दी और बिहारी हिन्दी।

(ख) अन्य भाषा क्षेत्र–इनमें प्रमुख बोलियाँ इस प्रकार हैं- दक्खिनी हिन्दी (गुल्बर्गी, बीदरी, बीजापुरी तथा हैदराबादी आदि), बम्बइया हिन्दी, कलकतिया हिन्दी तथा शिलंगी हिन्दी (बाजार-हिन्दी) आदि।

(ग) भारतेतर क्षेत्र–भारत के बाहर भी कई देशों में हिन्दी भाषी लोग काफी बडी संख्या में बसे हैं। सीमावर्ती देशों के अलावा यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, रुस,जापान,चीन तथा समस्त दक्षिण पूर्व व मध्य एशिया में हिन्दी बोलने वालों की बहुत बडी संख्या है। लगभग सभी देशों की राजधानियों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी एक विषय के रूप में पढी-पढाई जाती है। भारत के बाहर हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ–ताजुज्बेकी हिन्दी, मॉरिशसी हिन्दी, फीजी हिन्दी, सूरीनामी हिन्दी आदि हैं।

अन्य बोलियाँ

कठबोली

कठबोली या स्लैंग (संदेह) किसी भाषा या बोली के उन अनौपचारिक शब्दों और वाक्यांशों को कहते हैं, जो बोलने वाले की भाषा या बोली में मानक तो नहीं माने जाते लेकिन बोलचाल में स्वीकार्य होते हैं। भाषावैज्ञानिकों का मानना है कि कठबोलियाँ हर मानक भाषा में हमेशा अस्तित्त्व में रही हैं और लगभग सभी लोग उनका प्रयोग करते हैं। अक्सर एक ही भाषा समुदाय के विभिन्न वर्गों की अपनी भिन्न कठबोलियाँ होती हैं और किसी व्यक्ति द्वारा कठबोली का प्रयोग उसका किसी विशेष वर्ग में सदस्यता का संकेत होता है। उदाहरण के लिए दिल्ली के हिन्दी बोलने वाले पुलिसवाले को कठबोली में 'ठुल्ला' कहते हैं जबकि मुंबई में उसे 'मामा' कहा जाता है। कभी-कभी कठबोली बहुत लम्बे अरसे तक मानक भाषा का भाग न होते हुए भी प्रचलित रह सकती है, मसलन

समाज के कुछ वर्गों में थानेदार या दरोगा के लिए 'ठुल्ला' शब्द कठबोली के रूप में पंजाब क्षेत्र के कुछ समुदायों में (जिसमें वर्तमान हरियाणा भी शामिल था) सन् 1880 में भी प्रचलित पाया गया था। कठबोलियाँ अक्सर प्रेयोक्ति के रूप में भी इस्तेमाल होती हैं जब किसी चीज के लिए मानक शब्द सुनने में अप्रिय या अपमानजनक समझा जाए, मसलन 'मूत्र' को कई हिन्दीभाषी कठबोली में 'सूसू' कहते हैं।

कठबोली के लक्षण

कभी-कभी यह बताना कठिन होता है कि कोई शब्द मानक भाषा का भाग है या कठबोली है। भाषावैज्ञानिक बेथानी डुमास और जोनेथन लाइटर ने किसी शब्द या वाक्यांश के कठबोली होने के कुछ चिह्नों की सूची बनाई कि अगर कोई शब्द इनमें से कम-से-कम दो लक्षण रखता हो तो शायद कठबोली है–

उसे बोलने से बोलने वाली का सामाजिक स्तर या गौरव कम होता है, चाहे वह कुछ समय के लिए ही क्यों न हो, मसलन कोई अगर 'सिगरेट' को 'सुट्टा' बुलाए, 'मूत्र' को 'मूत' बुलाए, किसी को काम न मिल पाने पर कोई उसे 'वेल्ला' या 'निठल्ला' बुलाएँ, या किसी की मृत्यु होने पर कहे कि मरने वाला 'टपक गया' या तो स्वयं उसका सम्मान कम होता है।

उस शब्द के प्रयोग का मतलब है कि बोलने वाला या तो उस शब्द द्वारा दर्शायी गयी चीज से परिचित है या ऐसे लोगों से जो उस से परिचित हैं। मसलन, बहुत से हिंदीभाषी क्षेत्रों में गाड़ी कि मरम्मत करने वाले मिस्त्री 'गीयर' (हमंत) के दांतों-वाले पहिये को 'गरारी' कहते हैं और अगर कोई इस शब्द का प्रयोग करे इसका मतलब है कि वह उस वस्तु से थोड़ा-बहुत परिचित तो है ही।

समाज या संगठनों में ऊँचा दर्जा रखने वाले लोग उसका खुली बातचीत में प्रयोग करने से कतराते हैं, मसलन पुलिसवाले को किसी भी संगठन का उच्च पदाधिकारी अपने भाषण में 'ठुल्ला' नहीं कहेगा, क्योंकि उसकी अपनी गरिमा कम होगी।

वह शब्द किसी जाने-माने मानक शब्द की जगह बोला जाता है (अक्सर लोगों को अपमान, घृणा या अन्य बुरी भावनाओं से बचाने के लिए), मसलन किसी को शौचालय प्रयोग करना हो तो वह कहता है कि उसे 'नम्बर दो' करना है।

कठबोली किसी व्यवसायिक क्षेत्र में बोली जाने वाली विशेषज्ञ बोली (वर्गबोली या जार्गन) से अलग होती है। वर्गबोली किसी विशेष पेशे की तकनीकी शब्दावली होती है और उसके शब्द ऊपर दी गई सूची में से केवल दूसरे मानदंड को पूरा करते हैं, इसलिए कठबोली नहीं कहे जा सकते हालांकि उनका प्रयोग पेशे से बाहर वाले को समूह से अलग रखने के लिए किया जा सकता है।

कठबोली का प्रसार और उत्पत्ति

कुछ कठबोलीयों का प्रयोग केवल एक विशेष क्षेत्र में होता है, उदहारणत: फीजी हिन्दी में 'क्या' की जगह कभी-कभी 'कोंची' बोला जाता है, जो 'कौन चीज' का सिकुड़ा रूप है। इसके विपरीत कठबोली संज्ञाएँ क्षेत्र की बजाए अक्सर किसी विशेष उप-संस्कृति जैसे कि संगीत या वीडियो खेलों से जुड़ी होती हैं। फिर भी कठबोली की अभिव्यक्तियाँ अपने वास्तविक क्षेत्रों से बाहर जाकर 'कूल' और 'जिवे' की तरह आम तौर पर इस्तेमाल करने लायक हो सकती हैं। जबकि कुछ शब्द अंतत: कठबोली के रूप में अपनी स्थिति को खो देते हैं (उदाहरण के लिए 'मॉब' शब्द के प्रयोग की शुरुआत लैटिन भाषा के मोबाइल वल्गस के सेक्स शॉर्टनिंग के रूप में हुई), अन्य शब्दों के प्रयोग को ज्यादातर वक्ताओं द्वारा इसी तरह माना जाता रहा। जब कठबोली मूल रूप से इसका इस्तेमाल करने वाले समूह या उप-संस्कृति से परे निकल जाती है तो इसके वास्तविक उपयोगकर्ता समूह की पहचान को कायम रखने के लिए इसकी जगह दूसरे, कम-मान्यता प्राप्त शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं।

कठबोली का एक उपयोग सामाजिक निषेधों को दरकिनार करना है क्योंकि मुख्यधारा की भाषा कुछ वास्तविकताओं को तारोताजा करने से दूर भागने की कोशिश करती है। इसी कारण से कठबोली की शब्दावलियाँ कुछ खास क्षेत्र जैसे कि हिंसा, अपराध, ड्रग्स और सेक्स में विशेष रूप से समृद्ध हैं। वैकल्पिक रूप से कठबोली वर्णन की गयी चीजों के साथ केवल मात्र अपनेपन से बाहर निकल सकती है। उदाहरण के लिए कैलिफोर्नियाई शराब के कदरदानों (और अन्य समूहों) में से कैबरनेट सौविगनॉन को अक्सर 'कैब सॉ' के रूप में, कार्डोने को 'कार्ड' के रूप में और इसी तरह से जाना जाता है, इसका मतलब यह है कि अलग-अलग शराबों का नामकरण इसके अनावश्यक प्रयोग को कम करता

है, साथ ही यह शराब के साथ उपयोगकर्ता के अपनेपन को दर्शाने में भी मदद करता है।

यहाँ तक कि एक भाषा वाले समुदाय में भी कठबोली और जिस हद तक इसका प्रयोग किया जाता है, यह संपूर्ण सामाजिक, जातीय, आर्थिक और भौगोलिक क्षेत्र में व्यापक रूप से भिन्न हो जाता है। कठबोली काफी समय के बाद प्रयोग से बाहर हो जा सकती है, हालांकि कभी-कभी इसका प्रयोग अधिक से अधिक सामान्य हो जाता है जब तक कि यह कुछ कहने का एक प्रभावशाली तरीका नहीं बन जाता है, जब आम तौर पर इसे मुख्यधारा की स्वीकार्य भाषा के रूप में समझा जाने लगता है (जैसे स्पेनिश शब्द कैबेलो), हालांकि निषेधात्मक शब्दों के मामले में ऐसी कोई अभिव्यक्ति नहीं भी हो सकती है, जिसे मुख्यधारा या स्वीकार्य भाषा समझा जाता हो। कठबोली के कई शब्द अनौपचारिक मुख्यधारा के संवाद में और कभी-कभी औपचारिक संवाद में प्रवेश कर जाते हैं, हालांकि इससे अर्थ या उपयोग में एक बदलाव भी शामिल हो सकता है।

कठबोली में अक्सर मौजूदा शब्दों के लिए औपन्यासिक अर्थों का सृजन शामिल होता है। उन औपन्यासिक अर्थों का मानक अर्थ से काफी हद तक अलग हो जाना एक आम बात है। इस प्रकार 'कूल' और 'हॉट' दोनों का मतलब 'बहुत अच्छा,' ष्प्रभावशाली,' या 'सुंदर' हो सकता है।

कठबोली के शब्दों को अक्सर केवल एक गुट या अन्तः समूह के अंदर इस्तेमाल के लिए जाना जाता है। उदाहरण के लिए लीट ('लीटस्पीक' या '1337') मूल रूप से केवल कुछ विशेष इंटरनेट उप-संस्कृतियों जैसे कि पटाखों और ऑनलाइन वीडियो गेमर्स के बीच लोकप्रिय थे। हालांकि 1990 के दशक के दौरान और 21वीं सदी की शुरुआत में लीट ने इंटरनेट पर अधिक से अधिक आम स्थान लेना शुरू कर दिया है और अब यह इंटरनेट आधारित संवाद और बातचीत की भाषाओं के बाहर भी फैल गया है। कठबोली के अन्य प्रकारों में शामिल हैं मोबाइल फोन पर इस्तेमाल होने वाली एसएमएस की भाषा और 'चौटस्पीक,' (जैसे, 'एलओएल जो 'जोर से हंसने' या 'जोरदार हँसी' या आरओएफएल 'हंसते-हंसते जमीन पर लोट जाना' का एक विपरीत अर्थ है), जिसका इस्तेमाल इंटरनेट पर त्वरित संवाद भेजने के लिए व्यापक रूप से किया जाता है।

कठबोली और बोलचाल की भाषा के बीच अंतर

कुछ भाषाविद् कठबोली के प्रयोग (कठबोली के शब्दों) और खिचड़ी भाषा के प्रयोग के बीच एक अंतर रखते हैं। घिलैड जुकरमैन के अनुसार 'कठबोली का संदर्भ एक विशिष्ट सामाजिक समूह, उदाहरण के लिए किशोरों, सैनिकों, कैदियों और चोरों द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले अनौपचारिक (और अक्सर क्षणिक) शाब्दिक सामग्रियों से है। कठबोली बोलचाल की भाषा (बोली) की तरह नहीं है, जो किसी अवसर पर वक्ता द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली एक अनौपचारिक, आसान बोली है, जिसमें शब्दसंकोच शामिल हो सकते हैं जैसे कि 'तुम्हारा' और अन्य बोलचाल के शब्दों का प्रयोग. आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग अनौपचारिक बोली में इस्तेमाल की जाने वाली एक शाब्दिक सामग्री है जबकि व्यापक अर्थों में 'बोलचाल की भाषा' शब्दावली में कठबोली का प्रयोग शामिल हो सकता है, इसके संकीर्ण अर्थों में नहीं। कठबोली का प्रयोग अक्सर बोलचाल की भाषा में किया जाता है, लेकिन सभी बोलचाल की भाषाएँ कठबोली नहीं होती हैं। कठबोली और बोलचाल की भाषा के बीच करने का एक तरीका यह पूछना है कि क्या ज्यादातर स्थानीय वक्ता इस शब्द को समझते हैं (और इसका प्रयोग करते हैं)या अगर वे ऐसा करते हैं तो यह एक बोलचाल की भाषा है। हालांकि समस्या यह है कि यह एक अलग, प्रमात्रण प्रणाली नहीं है बल्कि एक निरंतरता की प्रणाली है। हालांकि ज्यादातर कठबोलीयाँ अल्पकालिक होती हैं और अक्सर नए लोगों द्वारा प्रयोग की जाती हैं, जिनमें से कुछ गैर-कठबोली वाली बोलचाल की भाषा की स्थिति हासिल कर लेती हैं (जैसे अंगरेजी में सिली - सीएफ. जर्मन सेलिग 'भाग्यवान', 'मध्य उच्च जर्मन सेल्डे (snzlde) 'आनंद, भाग्य' और एक यहूदी महिला का पहला नाम, जेल्दा) और यहाँ तक कि एक औपचारिक स्थिति (जैसे अंग्रेजी में भीड़)।

शब्द-व्युत्पत्ति

कठबोली को कई भाषाओं में 'स्लैंग' कहा जाता हैभाषावैज्ञानिकों को इस शब्द की जड़ें अभी ज्ञात नहीं हैं। इसका संबंध चोरों की कुभाषा से है और इसका सबसे पहला प्रामाणिक प्रयोग (1756) 'निम्न या गैर-प्रतिष्ठित लोगों की शब्दावली से है, हालांकि इसके अलावा इसका मूल स्पष्ट नहीं है। एक स्कैंडिनेवियाई स्रोत का प्रस्ताव किया गया है (उदाहरण के लिए नार्वे के

'स्लेंजनेम' शब्द से तुलना करें), लेकिन 'तिथि और पूर्व संबंधों' के आधार पर इसे ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोश द्वारा छोड़ दिया गया है।

वर्गबोली

वर्गबोली, पेशेवर बोली, या जार्गन किसी विशेष व्यवसाय, कार्यक्षेत्र या वर्ग द्वारा प्रयोग होने वाले विशेष शब्दों को कहा जाता है। वर्गबोली इसलिए विकसित हो जाती हैं, क्योंकि 'हर विज्ञान की अपनी विशेष भाषा होती है क्योंकि हर विज्ञान के अपने विशेष विचार होते हैं। कठबोलियों की तरह वर्गबोली भी किसी विशेष वर्ग के लिए ऐसी चीजों के लिए शब्दों से भरी होती है, जो उस वर्ग के लोगों महत्त्व या रूचि रखती हो। जहाँ कठबोली औपचारिक भाषा का भाग नहीं होती, वहाँ वर्गबोली अक्सर सभ्य और औपचारिक प्रयोग के लिए उचित मानी जाती है। वर्ग से बाहर वाले आम लोगों को अक्सर वर्गबोली तकनीकी, कठिन, विचित्र या न समझ आने वाली प्रतीत होती है, जबकि वर्ग के सदस्य उसका प्रयोग आसानी से करते हैं। उदाहरण के लिए संगणकों (कम्प्यूटरों) से परिचित लोग प्रायः 'बिट', 'बाइट', 'रैम', 'सीपीयू' और 'हेक्साडेसिमल' जैसे वर्गबोली शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिन्हें संगणकों से अपरिचित लोग बिल्कुल नहीं समझ सकते।

लहजा (भाषाविज्ञान)

भाषाविज्ञान में लहजा बोलचाल में उच्चारण के उस तरीके को कहते हैं जिसका किसी व्यक्ति, स्थान, समुदाय या देश से विशेष सम्बन्ध हो। उदहारण के तौर पर कुछ दक्षिण-पूर्वी हिंदी क्षेत्र के ग्रामीण स्थानों में लोग 'श' की जगह पर 'स' बोलते हैं, जिसकी वजह से वह 'शहर' और 'अशोक' की जगह 'सहर' और 'असोक' बोलतें हैं - इसे उस क्षेत्र का देहाती लहजा कहा जा सकता है। व्यक्तिगत स्तर पर तुतलाने को भी एक बोलने का लहजा कहा जा सकता है।

उपभाषा विज्ञान

उपभाषा विज्ञान या बोली विज्ञान भाषाविज्ञान की एक है शाखा, जो बोलियों को भौगोलिक वितरण और व्याकरण की दृष्टि से अपने अध्ययन का लक्ष्य बनाती है। भौगोलिक वितरण पर विचार करते हुए सामाजिक वर्गों, जातीय

स्तरों, व्यावसायिक वैविध्यों और धार्मिक, सांस्कृतिक विशेषताओं का भी ध्यान रखा जाता है।

इन सब के अतिरिक्त बोली विज्ञान का एक लक्ष्य और भी है जिसे कोशविज्ञान का अंग माना जाता है। इसमें विभिन्न बोलियों के शब्दों को ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन में संगृहीत कर उनकी संकेतसीमा स्पष्ट की जाती है।

भाषा और बोली

भाषा और बोली के बीच की भेदकरेखा 'परस्पर बोधगम्यता' के अनुसार निर्धारित की जाती है। इस बोधगम्यता के चार स्तर होते हैं –

(1) पूर्ण बोधगम्यता,
(2) अपूर्ण बोधगम्यता,
(3) आंशिक बोधगम्यता,
(4) शून्य बोधगम्यता

बोधगम्यता के इन्हीं स्तरों के आधार पर व्यक्तिबोली, उपबोली, बोली तथा भाषा की पृथक् कोटियाँ वर्गीकृत होती हैं। पूर्ण बोधगम्यता एक बोली क्षेत्र के रहनेवाले व्यक्तियों की प्रायरू समान वाक्यप्रवृत्ति का संकेत देती है।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान की आधुनिकतम मान्यता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की वाक्प्रवृत्ति पूर्णतया समान नहीं होती। किंतु यह असमानता इतनी स्थूल नहीं होती कि वे एक दूसरे की बात न समझ सकें। इस प्रकार व्यक्तिगत वाक्यप्रवृत्तियों का समन्वित रूप व्यक्तिबोली है और व्यक्तिबोलियों का समन्वित रूप उपबोली तथा उपबोलियों का समन्वित रूप बोली है। इसी प्रकार बोलियों की समन्वित इकाई भाषा है। उपर्युक्त धारणा से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति बोली और भाषा के बीच बोधगम्यता के ही विविध स्तर सक्रिय होते हैं। भाषा के अध्ययन में अधिकतर उपबोली के स्तर तक विचार किया जाता है, किंतु बोली के संदर्भ में व्यक्तिबोलियों का भी महत्त्व होता है। भाषीय स्तर पर व्यक्तिबोली एवं उपबोली का एक युग्म होता है और बोली तथा भाषा का दूसरा। जिस प्रकार बोली और भाषा या भाषाओं के सीमावर्ती क्षेत्रों में रूपवैशिष्ट्य होते हुए भी एक दूसरे को समझना सरल होता है, उसी प्रकार या उससे भी अधिक बोधगम्यता बोली या उपबोली की सीमाओं पर होती है। सीमावर्ती क्षेत्रों में पाई जाने वाली ऐसी बोधगम्यता के कारण ही भाषा और बोली या बोली या उपबोली के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती।

एक भाषीय क्षेत्र में स्थानीय भेदों के अध्ययन को ब्लूमफील्ड ने बोली भूगोल का नाम देते हुए उसे तुलनात्मक विधा की उपलब्धियों का पूरक भी कहा है। बोलियों के अध्ययन को बोली एटलस के रूप में प्रस्तुत करना सर्वाधिक प्रचलित है। बोली क्षेत्र के ये एटलस मानचित्रों के ऐसे संकलन हैं जिनपर भाषीय रूपवैशिष्ट्यों को स्थानीय वितरण के आधार पर समरूप रेखाओं (प्वेहसवेमे) के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। विस्तृत रूपवैशिष्ट्यों को इन मानचित्रों पर प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। केवल भेदक रूप ही प्रदर्शित किए जाते हैं। इसीलिए कितने ही लोग बोली व्याकरण, बोलियों का सीमानिर्धारण, कोशसंकलन और तुलनात्मक, ऐतिहासिक निष्कर्षों को ही बोली विज्ञान का साध्य मानते हैं। एटलसों को भाषा भूगोल से संबद्ध मानकर उसे बोली विज्ञान से पृथक् कर देते हैं।

समरूप रेखाओं द्वारा विभक्त क्षेत्र तीन होते हैं–

(1) अवशेष क्षेत्र– ऐसे क्षेत्र जहाँ के रहनेवाले आर्थिक दृष्टि से अविकसित होते हैं और जहाँ की भौगोलिक स्थिति ऐसी हो कि आसानी से पहुँच पाना कठिन हो, उन क्षेत्रों में प्राचीनतम रूप मिल सकते हैं। दूसरे लोग इन स्थानों के रूपों को प्रायरू हेय मानते हैं।

(2) आकर्षण क्षेत्र– इन क्षेत्रों में आर्थिक या औद्योगिक दृष्टि से कोई महत्वपूर्ण केंद्र होता है। यही केंद्र नए रूपों की उद्भावना का स्रोत होता है। इसलिए समरूप रेखाओं का झुकाव भी केंद्राभिमुख होता है।

(3) संक्रमण क्षेत्र– ऐसे क्षेत्रों में रूपों का एकविध प्रयोग नहीं मिलता। समरूप रेखाएँ एक दूसरे को काटती हुई जाती हैं या उनके बीच का अंतर अधिक होता है।

आकर्षण क्षेत्रों के बारे में यह कहा जा सकता है कि इनके रूप इस क्षेत्र में बहुत पहले से प्रचलित रहे होंगे और उन्होंने अपने प्रतिद्वंद्वी शब्दों को व्यवहार की स्थिति से निकालकर पूरे क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया होगा। अवशेष क्षेत्र के रूप सब से पुराने माने जाते हैं और संक्रमण क्षेत्रवाले रूप इस बात का संकेत देते हैं कि किसी व्यवहारगत पुराने रूप के ऊपर किसी नए रूप को प्राथमिकता मिल रही है।

बोलियों का इतिहास

बोलियों के ऐसे अध्ययन का सूत्रपात 19वीं शती के पहले चरण में 'मेलर से हुआ था। 1873 में स्कीट ने 'इंग्लिश डायलेक्टॉलॉजी सोसायटी' की स्थापना

की और एटलस बनाने का भी प्रयास किया। 1876 में जार्ज बेंकर ने 40 वाक्यों की प्रश्नावली को पूरे जर्मन राज्य की 40,000 से भी अधिक स्थानीय बोलियों में रूपांतरित कराया। 1896 से 1908 के बीच एडमंड एडमॉट के सहयोग से गिलेरो ने फ्रांस का महत्त्वपूर्ण एटलस प्रस्तुत किया। इसी प्रकार स्वाविया और इटली के भी एटलस प्रकाशित हुए। 1939-43 के बीच हंस कुरैथ के निर्देशन में अमरीका और कैनाडा के भाषीय एटलस की पहली किश्त न्यू इंग्लैंड के एटलस के रूप में प्रकाशित हुई। इधर रूस, चीन और जापान में भी इस तरह के प्रयास हो रहे हैं। भारत में इस शती के पहले चरण में किया गया ग्रियर्सन का भाषा सर्वेक्षण अपनी तरह का अकेला प्रयास है।

उपभाषाएँ

उपभाषा किसी भाषा के ऐसे विशेष रूप को बोलते हैं, जिसे उस भाषा के बोलने वाले लोगों में एक भिन्न समुदाय प्रयोग करता हो। अक्सर 'उपभाषा' किसी भाषा के क्षेत्रीय प्रकारों को कहा जाता है, उदाहरण के लिए छत्तीसगढ़ी, हरयाणवी, मारवाड़ी, ब्रजभाषा और खड़ीबोली हिन्दी की कुछ क्षेत्रीय उपभाषाएँ हैं। लेकिन कभी-कभी किसी सामजिक वर्ग द्वारा प्रयोग होने वाली भाषा की किस्म को भी 'उपभाषा' कह दिया जाता है। कभी-कभी उपभाषा को बोली भी कहते हैं, हालाँकि यह शब्द मानक भाषाओं के लिए भी इस्तेमाल होता है।

पश्चिमी हिंदी

इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी का क्षेत्र उत्तर भारत में मध्य भारत के कुछ अंश तक फैला है। अर्थात् उत्तरांचल प्रदेश के हरिद्वार, हरियाणा से लेकर उत्तर प्रदेश के कानपुर के पश्चिमी भाग तक है। आगरा से लेकर मध्य क्षेत्र ग्वालियर और भोपाल तक है। क्षेत्र-विस्तार के कारण पश्चिमी हिंदी में पर्याप्त विविधता दिखाई देती है। इसमें मुख्यतः पाँच बोलियों के रूप मिलते हैं।

कौरवी—प्राचीनकाल में इस क्षेत्र को कुरू प्रदेश कहते थे। इसी आधार पर इसका कौरवी नाम पड़ा है। इसे पहले खड़ी-बोली नाम भी दिया जाता था। अब खड़ी-बोली हिंदी का पर्याय रूप है। खड़ी-बोली नामकरण के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि खड़ापन (खरेपन) शुद्धता के आधार पर है, तो कुछ

भाषाविदों का कहना है कि खड़ी-पाई (आ की मात्र 'ा') के प्रयोग (आना, खाना, चलना, हँसना) आधार पर खड़ी-बोली नाम पड़ा है।

वर्तमान समय में इसका प्रयोग दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फर नगर, रामपुर, बिजनौर, सहारनपुर (उ.प्र.) हरिद्वार, देहरादून (उत्तरांचल), यमुना नगर, करनाल, पानीपत (हरियाणा का यमुना तटीय भाग) में होता है।

कौरवी की विशेषताएँ

क्रिया रूप अकारांत होता है, यथा–आना, खाना, दौड़ना, हँसना, फैलना और सींचना आदि।

कर्ता परसर्ग 'ने' का प्रयोग स्पष्ट रूप में होता है।

कहीं-कहीं पर 'न' के स्थान पर 'ण' ध्वनि का का प्रयोग मिलता है।

इसमें तत्सम और तद्भव शब्दों की बहुलता है।

अरबी और फारसी के शब्द यत्र-तत्र मिलते हैं।

वर्तमान हिंदी का स्वरूप इसी बोली को आधार मान कर विकसित हुआ है। हिंदी को राजभाषा, राष्ट्रभाषा और जनभाषा का रूप देने में इस बोली की विशेष भूमिका है।

ब्रजभाषा

ब्रजभाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। हिंदी साहित्य के मध्यकाल अर्थात् भक्ति और रीतिकाल में इस भाषा में पर्याप्त साहित्य रचा गया है। उस काल में अवधी और ब्रज में ही मुख्यत: रचना होती थी। रीतिकाल ब्रजभाषा ही रचना की आधार भाषा थी। इसीलिए इसे हिंदी के रूप में स्वीकृति मिली थी। विशेष महत्त्व मिलने के कारण ही 'ब्रज बोली' कहना अनुकूल नहीं लगता वरन् 'ब्रजभाषा' कहना अच्छा लगता है।

इसका केन्द्र स्थल आगरा और मथुरा है। वैसे इसका प्रयोग अलीगढ़ और धौलपुर तक होता है। हरियाणा के गुड़गाँव और फरीदाबाद के कुछ अंश और मध्य प्रदेश के भरतपुर और ग्वालियर के कुछ भाग में ब्रज का प्रयोग होता है।

इसकी कुछ विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं–

पद-रचना में ओकार और औकार बहुला रूप है, जैसे–

खाया झ खायौ झ गया झ गयो या गयौ।

बहुवचन में 'न' का प्रयोग होता है, यथा–लोग झ लागनय बात झ बातन।

'उ' विपर्यय रूप मिलता है, जैसे–कुछ झ कछु।

संबंध कारकों के विशेष रूप मिलते हैं–मेरो, तेरो, हमारो, तिहारो, आदि।

तद्भव शब्दों की बहुलता है।

वर्तमान समय में अरबी, फारसी के साथ अंग्रेजी शब्द भी प्रयुक्त होते हैं।

इसके प्रमुख कवि हैं– सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, केशव, बिहारी, भूषण और रसखान आदि। हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में ब्रज की बलवती भूमिका रही है।

हरियाणवी–

इसे बाँगारू या हरियानी नाम भी दिया जाता है, किन्तु जब हरियाणवी ही सर्वप्रचलित और मान्य हो गया है। हरियाणा प्रदेश का उद्भव और नामकरण बोली के आधार पर हुआ है। हरियाणवी हरियाणा के सभी जिलों में बोली जाती हैं। हरियाणवी और कौरवी में पर्याप्त समानता है। हरियाणा की सीमा उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और राजस्थान से लगी हुई है। इस प्रकार इसके सीमावर्ती क्षेत्रों में निकट की बोली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रभाव के साथ हरियाणवी विशेष चर्चा हेतु इसे सात उपवर्गो में विभक्त कर सकते हैं।

केन्द्रीय हरियाणवी–इसका केन्द्र रोहतक है। सामान्य उदाहरण देने हेतु प्रायरू इसी रूप का उल्लेख किया जाता है। 'णकार' बहुला रूप होने के कारण 'न' के स्थान पर प्रायरू 'ण' का प्रयोग किया जाता है। 'ल' के स्थान पर 'ळ' विशेष ध्वनि सुनाई देती है, यथा–बालक झ बाळक क्रिया 'है' के स्थान पर 'सै' का प्रयोग होता है।

ब्रज हरियाणवी– फरीदाबाद और मथुरा के मध्य के हरियाणा के क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। ब्रज का रंग स्पष्ट दिखाई देता है। इसमें 'ओ' ध्वनियों की बहुलता है, यथा- खायौ, खायोरू गयो, गयोय नाच्यो, नाच्यौ आदि। 'ल' के स्थान पर 'र' का प्रयोग मिलता है–काला झ कारा, बिजली झ बिजुरी आदि।

मेवाती हरियाणवी– मेव क्षेत्र के आधार पर इसका नाम मेवाती पड़ा है। इसका केन्द्र रेवाड़ी है। इसमें झज्जर, गुड़गाँव, बावल और नूह का क्षेत्र आता है। इसमें, हरियाणवी, ब्रज और राजस्थानी का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें 'ण' और 'ल' ध्वनि की बहुलता है।

अहीरवाटी हरियाणवी– रेवाड़ी और महेन्द्रगढ़ का क्षेत्र अहीरवाल है। इसी आधार पर इसका नामकरण हुआ हैं। नारनौल से कोसली तक इसका स्वरूप मिलता है। इसमें मेवाती, राजस्थानी (बागड़ी) का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें ओकार बहुल रूप मिलता है, यथा- था झथो।

बागड़ी हरियाणवी– इसका क्षेत्र हिसार और सिरसा है। भिवानी जिले का पर्याप्त क्षेत्र इस बोली के अन्तर्गत आता है। इसे केन्द्रीय हरियाणी और राजस्थान (बागड़ी) का मिश्रित और विकसित रूप मान सकते है। बहुवचन रचन में आँ' प्रत्यय का योग मिलता है, यथा- बात झबाताँ। लोप का बहुल रूप सामने आता है, जैसे-अहीर झ हीर, अनाज ठाना, नाज, उठाना।

कौरवी हरियाणवी– कौरवी क्षेत्र से जुड़ें हरियाणा के भाग में इस उपबोली का रूप मिलता है। यमुना नगर, कुरूक्षेत्र, करनाल और पानीपत के कुछ भाग में इसका प्रयोग होता हैं। आकारांत शब्दों का बहुल प्रयोग मिलता है, यथा- खाना, धोना, सोना आदि।

अबदालवी हरियाणवी– अम्बाला इसका मुख्य केन्द्र है। इस उपबोली पर पंजाबी भाषा का स्पष्ट प्रमुख दिखाई देता है। इसमें महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण हो जाती है- हाथ झ हात, साथ झसात।

कन्नौजी– कन्नौजी नामकरण कन्नौज क्षेत्र के नाम से हुआ हैं। इसका प्रयोग फर्रूखाबाद, हरदोई, शाहजहाँपुर, पीलीभीत हैं इटावा और कानपुर के पश्चिमी भाग में भी इसका प्रयोग होता है। इसका क्षेत्र अवधी और ब्रज के मध्य है। इस पर ब्रज का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है।

बुंदेली– बुंदेलखंड में बोली जाने के कारण इसे बुंदेली बोली की संज्ञा दी गयी हैं इसके प्रयोग क्षेत्र में झांसी, छतरपुर ग्वालियर, भोपाल, जालौन का भाग आता है। इसमें और ब्रज बोली में पर्याप्त समानता है।

पूर्वी हिंदी– पूर्वी हिंदी का उद्भव अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी के पूर्व में स्थित होने के कारण इसे पूर्वी हिंदी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग प्राचीन कोशल राज्य के उत्तरी-दक्षिणी क्षेत्र में होता है। वर्तमान समय में इसे उत्तर प्रदेश के कानपुर, लखनऊ, गोंडा, बहराइच, फैजाबाद, जौनपुर, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, इलाहाबाद, मध्य प्रदेश के जबलपुर, रीवाँ आदि जिलों से संबंधित मान सकते हैं। यह इकार, उकार बहुल रूप वाली उपभाषा है। इसमें तीन बोलियाँ हैं–अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।

अवधी– 'अबध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे 'अवधी' नाम से अभिहित किया गया है। इसका प्रयोग गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, रायबरेली, बाराबंकी, इलाहाबाद, लखनऊ, जौनपुर आदि जिलों में होता है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं–

इसमें 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग होता है- शंकर झ संकर, शाम झ साम आदि।

इसमें 'व' ध्वनि प्रायरू 'ब' के रूप में प्रयुक्त होती है, जैसे वन झ बन, वाहन झ बाहन आदि।

'इ' और 'उ' स्वरों का बहुल प्रयोग होता है। इ आगम-स्कूल झ इस्कूल, स्त्री झ इस्त्री उ आगम-सूर्य झ सूरज झ सूरूजु

'ण' ध्वनि के स्थान पर प्रायरू 'न' का प्रयोग होता है।

ऋ के स्थान पर 'रि' का उच्चारण प्रयोग होता है।

भक्तिकाल में समृठ्ठ साहित्य की रचना हुई है। तुलसीदास कृत 'रामचरित मानव' और जायसी

कृत 'पद्मावत' महाकाव्यों की रचना अवधी में हुई है। सूफी काव्य-धारा के सभी कवियों ने

अवधी भाषा को ही अपनाया। समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

बघेली– इस बोली का केन्द्र रीवाँ हैं। मध्य प्रदेश के दमोह, जबलपुर, बालाघाट में और उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में कुछ अंश तक बघेली का प्रयोग होता है। इस क्षेत्र पर अवधी का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। कुछ विद्वानों ने बघेली को स्वतंत्र बोली न कह कर अवधी का दक्षिणी रूप कहा है। इसमें अवधी की भांति 'व' ध्वनि 'ब' के रूप में प्रयुक्त होती है।

छत्तीसगढ– 'छत्तीसगढ़' क्षेत्र से संबंधित होने के कारण इसे छत्तीसगढ़ी बोली नाम दिया गया है। वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ प्रदेश के रायपुर, बिलासपुर क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। इसमें कहीं-कहीं पर 'स' ध्वनि 'छ' हो जाती है।अल्पप्राण ध्वनियों के महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है। समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

बिहारी हिंदी

बिहार प्रदेश में प्रयुक्त होने के आधार पर इसे बिहारी नाम दिया गया है। इसका उद्भव मागधी अपभ्रंश भाषा से हुआ है। ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय

आर्यभाषाओं के बर्गीकरण में बिहारी को हिंदी से अलग वर्ग में व्यवस्थित किया है। ये भाषाएँ आकार बहुल हैं।

बहुवचन बनाने हेतु नि या न का प्रयोग होता है, यथा- लोग झ लागनि, लोगन सर्वमान के विशेष रूप प्रयुक्त होते हैं- तोहनी हमनी आदि।

बिहारी की अनेक प्रवृत्तियाँ पूर्वी हिंदी के समान मिलती हैं–

इससे मुख्यत: तीन बोली भागो में विभक्त करते है।

भोजपुरी–भोजपुरी निश्चय ही बिहारी हिंदी का सबसे विस्तृत क्षेत्र में पयुक्त रूप है। भोजपुर बिहार का एक चर्चित स्थान है। इसी के नाम पर इसे भोजपुरी कहते हैं। इसका केन्द्र बनारस है। भोजपुरी का प्रयोग उत्तर प्रदेश के गाजीपुर, बलिया, बनारस, आजमगढ़, देवरिया, गोरखपुर जिलों में पूर्ण या आशिंक रूप में और बिहार के छपरा, चम्पारन तथा सारन में प्रयोग होता है। इस भाषा में अवधी की कुछ प्रवृत्तियाँ मिलती हैं।

इसमें 'र' ध्वनि का प्रायरू लाप हो जाता है, यथा- लरिका झलरका (लड़का), करया झकइया (काला) 'ल' की ध्वनि की प्रबलता दिखाई देती है, जैसे खाइल, चलल, पाइल आदि। इकार और उकार बहुल रूप में मिलता है। समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

मैथिली– मिथिला क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे 'मैथिली' नाम दिया गया है। इसका प्रयोग दरभंगा, सहरसा, मुजफ्फरनगर, मुंगेर और भागलपुर में होता है। इसमें शब्द स्वरांत होते है। इसमें संयुक्त स्वरों (ए, ऐ, ओ, औ) के दीर्घ स्वर के साथ ह्रस्व रूप भी प्रयुक्त होता है। इसमें सहायक क्रियाओं के विशेष रूप मिलते हैं, यथा- छथि, छल आदि। इ, उ बहुला रूप अवधी के ही समान हैं।

मैथिली साहित्य में तत्सम शब्दाबली का आकर्षक प्रयोग साहित्यकारों के संस्कृत ज्ञान का परिचायक है। इसमें समृठ्ठ लोक-साहित्य और आकर्षक साहित्य रचा गया है। मैथिल कोकिल विद्यापति मैथिली भाषा को अपनाने वाले सुनाम धन्य कवि हैं।

मगही– 'मागधी' अपभ्रंश से विकसित होने और 'मगध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के आधार पर इसके नाम की इसके स्वरूप और भोजपुरी के स्वरूप में बहुत कुछ समानता है। इसमें सहायक 'हल' से हकी, हथी, हलखिन आदि का रूप प्रयुक्त होते है। कारक-चिह्नों में सामान्य के साथ अतिरिक्त चिह्न भी प्रयुक्त होते है, यथा- संप्रदान-ला, लेन, आर्धकरण-मों। शब्दों में तद्भव या बहुल तद्भव

रूप मिलते है, यथा- बच्चे के लिए 'बुतरू' का प्रयोग। उच्चारण में अनुनासिक बहुल रूप है।

राजस्थानी हिंदी

राजस्थानी प्रदेश के नाम पर विकसित हिंदी को यह नाम मिला है। इसका उदगम शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके प्रारंभिक रूप में डिंगल का प्रबल प्रभाव रहा है। इसकी कुछ प्रवृत्तियाँ ब्रजभाषा के समान हैं। इसमें टवर्गीय ध्वनियों की प्रधानता होती है, यथा- ड, ड़, ण, ळ। महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण होने की भी प्रवृत्ति है। बहुबचन परिवर्तन में मुख्यत: 'आँ' का प्रयोग होता है। तद्भव शब्दावली का प्रबल रूप मिलता है।

मेवाती– मेव जाति के नाम पर इस बोली का नाम 'मेवाती' रखा गया है। इसका प्रयोग राजस्थान के अलवर और भरतपुर के उत्तर-पश्चिम भाग में होता है। हरियाणा के गुड़गाँव के कुछ भाग में भी इस बोली का रूप देखा जा सकता है। ब्रज क्षेत्र से लगा होने के कारण इस पर ब्रज का प्रभाव होना स्वाभाविक है। मेवती में समृठ्ठ लोक-साहित्य है।

जयपुरी– इस बोली का केन्द्र जयपुर है, इसलिए इसे जयपुरी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग पूर्वी राजस्थान, जयपुर, कोटा और बूँदी में होता है। इस बोली पर ब्रज का प्रभाव दिखाई देता है। परसर्गो में कर्म-संप्रदान-नै, कैय करण-अपादान-सूं, सौय अधिकरण-मै, मालैं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसमें समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

मारबाड़ी– इस बोली को 'मेबाड़' क्षेत्र के नाम पर 'मेबाड़ी' कहा गया है। राजस्थान के पश्चिमी भाग में प्रयुक्त प्रयुक्त होने के कारण इसे पश्चिमी राजस्थान नाम भी दिया जाता है। इसका मुख्य क्षेत्र जोधपुर है। पुरानी मारवाड़ी डिंगल कहते थे। मारवाड़ी व्यवसाय की दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिठ्ठ कवि नरपति नाल्ह, चन्दबरदाई इसी से संबंधित रहे हैं। मीराबाई की रचनाओं में यह रूप देख सकते हैं।

इसमे 'स' ध्वनि 'श' हो जाती है। अनुनासिक ध्वनि का बहुल प्रयोग। तद्भव शब्दावली का बहुल रूप है।

मालवी- मालवा क्षेत्र से संबंधित होने के आधार पर इसे मालवी नाम मिलता है। राजस्थान के दक्षिण में प्रयुक्त होने से दक्षिण नाम भी दिया जाता था। इसके प्रयोग क्षेत्र में उज्जैन, इन्दौर और रतलाम आते हैं।

हिन्दी और उसका विकास

इसमें 'ड़' ध्वनि का विशेष प्रयोग होता है। इसमें 'ण' ध्वनि नहीं है। विभिन्न ध्वनियों का अनुनासिक रूप सामने आता है। इसमें समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

पहाड़ी हिंदी

पहाड़ी हिंदी का उद्भव 'खास' अपभ्रंश से हुआ है। पहाड़ी क्षेत्र में यातायात की शिथिलता के कारण भाषा में विविधता का होना निश्चित रहा। अध्ययन सुविधा के लिए इसे तीन उपवर्ग में विभक्त किया जाता है–पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, पूर्वी पहाड़ी।

पश्चिमी पहाड़ी- इसका केन्द्र शिमला है। इसमें चंबाली, कुल्लई, क्योंथली आदि मुख्य बोलियाँ आती है। यहाँ की बोलियों की संख्या तीस से अधिक है। ये मुख्यत: टाकरी या टक्करी लिपि में लिखी जाती हैं। यहाँ हिंदी का मूलरूप हिंदी में ही मिलता है।

मध्य पहाड़ी- नेपाल पूर्वी पहाड़ी का केन्द्र है। नेपाली, गुरखाली, पर्वतिया और खसपुरा नाम भी दिए जाते है। इसमें समृठ्ठ लोक-साहित्य और संक्षिप्त-साहित्य भी मिलता है। नेपाल के संरक्षण मिलने के आधार पर इसका साहित्यिक रूप में विकास हो रहा है। इसकी लिपि नागरी है।

दक्खिनी हिंदी

दक्खिनी शब्द दक्षिण का तद्भव शब्द है। आर्यो का आगमन जब सिंध, पंजाब प्रांत में हुआ, तो यह भाग दाहिने हाथ की ओर था, उसे दक्षिण कहा गया है। हिंदी साहित्य के इतिहास पर प्राचीनकाल से यदि विचार करें, तो भारत में प्रचलित विभिन्न लिपियों में हिंदी साहित्य मिलता है। गुजराज और महाराष्ट्र में हिंदी का प्रयोग हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र के समान ही होता रहा है। मध्य युग में, हिंदी दक्षिण के प्रांतो में आर्कषक रूप में प्रयुक्त होती थी।

अकबर के समय में दक्खिन क्षेत्र में मालवा, बरार, खानदेश, औरंगाबाद, हैदराबाद, मुहम्मदाबाद और बीजापुर आ गए हैं। इस प्रकार दक्खिन क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे दक्खिनी हिंदी नाम दिया गया है।

उद्भव-विकास–चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली का शासक मुहम्मद-बिन-तुगलग था। उन्होंने दक्षिण की शासन व्यवस्था को अनुकूल रूप देने के लिए अपनी

राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद करने का निर्णय लिया। मुहम्मद-बिन-तुगलक के जाने से पूर्व निजामुद्दीन चिश्ती ने 400 सूफी पहले ही दक्षिण भेज दिए थे। तुगलक अपने साथ सूफी फकीर भी ले गया। वहाँ शासन व्यवस्था अनुकूल होने पर राजधानी को पुनः दौलताबाद से दिल्ली लाने का निर्णय लिया। उस समय आज की तरह-यातायात सुविधा न थी। इस प्रकार अनेक सूफी-संत और सिपाही वहाँ से लौटे ही नहीं। इस निर्णय से तुगलक को 'पागल' की उपाधि उवश्य मिली, किन्तु इससे दर्कि्षण में प्रभावी प्रचार हुआ। दिल्ली से जाने वालों की भाषा खड़ी-बोली, ब्रज, अवधी, पंजावी आदि के मिश्रित के रूप में थी। वहाँ हिंदी का प्रचार होता गया। अलाउद्दीन खिलजी, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के समय तक दक्खिनी हिंन्दी विकसित होती गई है। दक्खिनी भाषा के स्वरूप के विषय में डॉ. परमानंद पांचाल का कथन इस प्रकार है–''दक्खिनी हिंदी का वह रूप है, जिसका विकास 14वीं सदी से अठारहवीं सदी तक दक्षिण के बहमनी, कुतुबशाही और आदिलशाही आदि राज्यों के सुलतानों के संरक्षण में हुआ था। यह मूलतः दिल्ली के आस-पास की हरियाणवी एवं खड़ी-बोली ही थी, जिस पर ब्रज, अवधी और पंजाबी के साथ मराठी, सिंधी, गुजराती और दक्षिण की सहवर्ती भाषाओं अर्थात तेलगु, कन्नड़ और पूर्तगाली आदि का भी प्रभाव पड़ा था और इसने अरबी, फारसी, तुर्की तथा मलयालम आदि भाषाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में ग्रहण किये थे। इसके लेखक और कवि प्रायरू इस्लाम के अनुयायी थे। इसे एक प्रकार से सबसे मिश्रित भाषा कहा जा सकता है।'' डॉ. श्रीराम शर्मा के अनुसार, बरार, हैदराबाद, महाराष्ट्र और मैसूर में ही दक्खिनी हिंदी भाषा का उद्भव विकास हुआ है।

पश्चिमी और पूर्वी हिंदी की तुलना

हिंदी भाषा के विभिन्न छः भागों-पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, पहाड़ी हिंदी और दक्खिनी हिंदी में पूर्वी और पश्चिमी हिंदी का विशेष महत्त्व है। हिंदी भाषा के मध्य युग में इन्ही दो वर्गो की अवधी और ब्रज दो बोलियों को हिंदी के रूप में मान्यता मिली थीं। इसी में काव्य-रचना होती रही है। भक्तिकाल में अवधि और ब्रज दोनों भाषाओं को काव्य-सृजन में अपनाई जाती रही हैं और रीतिकाल में ब्रजभाषा प्रयुक्त होती थी। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' महाकाव्य की रचना अवधी में की है। जायसी ने 'पदमावत' की रचना ठेठ अवधि में की है।

'प्रमाश्रयी काव्य' अवधी में ही लिखा गया है। भक्ति काल के समस्त अष्टछाप कवियों ने ब्रजभाषा को अपनाया है, तो रीतिकाल के केशव, घनानन्द, बिहारी आदि कवियों ने ब्रजभाषा को ही अपनाया है।

तुलनात्मक अध्ययन

1. पश्चिमी हिंदी की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई, तो पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्थ-मागधी से हुआ।
2. पश्चिमी हिंदी की पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं-कौरवी, हरियाणवी, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली। पूर्वी हिंदी की तीन प्रमुख बोलियाँ है—अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।
3. पश्चिमी हिंदी निकटवर्ती भाषा पंजाबी से यत्र-तत्र प्रभावित लगती है और पूर्वी हिंदी में बिहारी हिंदी से पर्याप्त समानता मिलती है।
4. पूर्वी हिंदी में 'इ' और 'उ' का बहुल रूप में प्रयुक्त पश्चिमी हिंदी में 'ई' और 'ऊ' के प्रयोग की प्रमुखता है।
5. पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है, यथा-बालक झ बालक किन्तु पूर्वी हिंदी में पूर्ववत रहती है।
6. पूर्वी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है, यथा-और झ क अउर ऐनक झ अइनक।
7. पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वर का बहुल रूप में प्रयोग होता है।
8. पूर्वी हिंदी में 'ल' के स्थान पर यदा-कदा 'र' का प्रयोग होता है, यथा-केला झ केरा, फर झ फल आदि।
9. पश्चिमी हिंदी में 'ल' का प्रयोग होता है।
10. पूर्वी हिंदी में 'श' ध्वनि प्रायः 'स' के रूप में प्रयुक्त होती है, यथा-शंकर झ संकर, शेर झ सेर। पश्चिमी हिंदी में प्रायरू मूल रूप प्रयुक्त होता है।
11. पूर्वी हिंदी में 'व' ध्वनि प्रायः 'ब' के रूप में प्रयुक्त होता है, यथा-वन झ बन, आशर्वाद झ आसीर्वाद आदि।
12. पश्चिमी हिंदी में प्रायरू मूल रूप प्रयुक्त होता है।
13. पूर्वी हिंदी में कारक-चिह्न 'ने' का प्रयोग विरल रूप में होता है, जबकि पश्चिमी हिंदी का मुख्य चिह्न है।
14. पूर्वी हिंदी में उत्तम पुरुष सर्वनाम में एकवचन के लिए 'हम' और बहुवचन के लिए 'हम' या 'हम सब' प्रयुक्त होते हैं। जबकि पश्चिमी

हिंदी में प्रायरू एकवचन के लिए 'मैं' और बहुवचन के लिए 'हम' का प्रयोग होता है।

15. पूर्वी हिंदी में क्रिया के साथ यत्र-तत्र 'ब' का प्रयोग होता है-चलब, करब आदि तो पश्चिमी हिंदी (ब्रज) में ओकार रूप सामने आता है–चलना झ चलनों, करना झ करनो।
16. क्रिया के भविष्यत् काल के रूप निर्धारण में ग, गी, गे के प्रयोग पश्चिमी हिंदी में मिलते हैं, किन्तु पूर्वी हिंदी में रूप-विविधता है।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि हिंदी की प्रमुख उपभाषाओं-पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी की बोलियाँ की शब्द-संपदा में बहुत कुछ समानता है, वहीं उनकी ध्वन्यात्मक, शब्द-संरचनागत और व्याकरण आधार पर पर्याप्त भिन्नता है। यह भिन्नता ही संबंधित बोलियो की अपनी विशेषताएँ हैं। हिंदी की इन दोनों उप-भाषाओं और उनकी बोलियों का महत्त्व स्वतः सिद्ध है।

बोलचाल की भाषा का सामान्य परिचय

आमतौर से सामान्य भाषा के अन्तर्गत भाषा के कई रूप उभर कर आते हैं। डॉ. भोलानाथ के अनुसार, ये रूप प्रमुखतः चार धारों पर आधारित हैं- इतिहास, भूगोल, प्रयोग और निर्माता। इनमें प्रयोग क्षेत्र सबसे विस्तृत है। जब कई व्यक्ति-बोलियों में पारम्पारिक सम्पर्क होता है, तब बोलचाल की भाषा का प्रसार होता है। दूसरे शब्दों में, आपस में मिलती-जुलती बोली या उपभाषाओं में हुए व्यवहार से बोलचाल की भाषा को विस्तार मिलता है। इसे 'सामान्य भाषा' के नाम से जाना जाता है। पर किसी भी भाषा की भाँति यह परिवर्तनशील है, समकालीन, प्रयोगशील तथा भाषा का आधुनिकतम रूप है।

साधारणतः हिन्दी की तीन शैलियों की चर्चा की जाती है। हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी। शिक्षित हिन्दी भाषी अक्सर औपचारिक स्तर पर (भाषण, कक्षा में अध्ययन, रेडियो वार्ता, लेख आदि में) हिन्दी या उर्दू शैली का प्रयोग करते हैं। अनौपचारिक स्तर पर (बाजार में, दोस्तों में गपशप करते समय) प्रायरू हिन्दुस्तानी का प्रयोग करते हैं। जिसमें हिन्दुस्तानी के दो रूप पाये जाते हैं। एक रूप वह है जिसमें अंग्रेजी के प्रचलित शब्द हैं और दूसरे में अगृहीत अंग्रजी शब्द का प्रचलन है। बोलचाल की हिन्दी में ये सारी शैलियाँ मौजूद रहती हैं। अर्थात् इसमें सरल बहुप्रचलित शब्दों का प्रयोग होता है। चाहे वह तत्सम प्रधान हिन्दी हो या परिचित

उर्दू अथवा अंग्रजी-मिश्रित हिन्दुस्तानी, व्याकरण तो हिन्दी का ही रहता है। बोलचाल की भाषा बड़े पैमाने पर विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होती है। भक्तों द्वारा, साधु-संतों द्वारा, व्यापारियों के जरिए, तीर्थस्थानों में, मेला-महोत्सव में, रेल के डिब्बों में, सेना द्वारा, शिक्षितों में, मजदूर और मालिक के बीच, किसान और जमींदार के बीच बोलचाल की भाषा बड़ी तेजी से फैलने लगती है। यह प्रेम की, भाई-चारे की, इस मिट्टी की तथा हमारी संस्कृति की भाषा है। चूंकि भारतीय संस्कृति सामासिक संस्कृति के रूप में समूचे विश्व में शुमार होती है, इसमें भाषाई अनेकरूपता का दृष्टिगत होना स्वाभाविक है। हमारी संस्कृति की भाँति हमारी भाषा हिन्दी भी अनेकता को अपने में समाहित कर राष्ट्रीय एकता की पहचान कराती है। बहुभाषी राष्ट्र की विविधता, सांस्कृतिक विशालता एवं भौगोलिक वैभिन्न्य के कारण सृष्ट बहुविध शब्दों में से कई मधुर क्षेत्रीय शब्द हमारी बोलचाल की भाषा में समाए हुए हैं। इससे सहजता, बोधगम्यता के साथ-साथ एक अपनापन भी अनायास आ जाता है।

संसार की प्रत्येक बोलचाल की भाषा आगे चलकर मानक भाषा बन जाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है इसकी सहजता और सरलता। मौखिक प्रयोग के कारण कहीं कहीं शुद्धता भले ही न हो, पर बोधगम्यता और सम्प्रेषणीयता में यह सबसे आगे है, जो भाषा जितनी सम्प्रेषणीय है, वह उतनी ही समर्थ है। सम्प्रेषणीयता के बिना भाषा की उपयोगिता कहाँ रह जायगी ? सच पूछिये तो भाषा दूसरे के लिए अभिप्रेत है। वक्ता और श्रोता के बिना भाषा की कोई परिचिति नहीं है। इसी सम्प्रेषण के चलते मनुष्य अपने आस-पास से लेकर सारे संसार से जुड़ता है। अपने को अच्छी तरह अभिव्यक्त करने हेतु वह अन्यन्त प्रभावशाली ढंग से भाषा का प्रयोग करता है। सतत् परिवर्तनशील होने के कारण भाषा में भिन्नता पायी जाती है। भाषा पर क्षेत्रीय प्रभाव को भी झूठलाया नहीं जा सकता, लेकिन यह भी सत्य है कि भाषा की इन विविधताओं के बावजूद उसका एक मानक रूप होता है। फिर भी 'भाषा बहता नीर' कभी स्थिर कैसे रह सकता है। जन-जन तक फैलकर सबसे घुलमिल कर उसका एक मौखिक रूप सदा बरकरार रहता है, जो सरल, सहज, बोधगम्य और मधुर भी है।

5

अवधी भाषा एवं बोली

अवधी हिंदी क्षेत्र की एक उपभाषा है। यह नेपाल राष्ट्र के लुंबिनी, राप्ती और महाकाली प्रांत में और भारतीय प्रांत उत्तर प्रदेश के 'अवध क्षेत्र' (लखनऊ, रायबरेली, सुल्तानपुर, बाराबंकी, उन्नाव, हरदोई, सीतापुर, लखीमपुर, अयोध्या, जौनपुर, प्रतापगढ़, प्रयागराज, कौशाम्बी, अम्बेडकर नगर, गोंडा, बस्ती, बहराइच, सिद्धार्थनगर, श्रावस्ती तथा फतेहपुर में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त इसकी एक शाखा बघेलखंड में बघेली नाम से प्रचलित है। 'अवध' शब्द की व्युत्पत्ति 'अयोध्या' से है। इस नाम का एक सूबा के राज्यकाल में था। तुलसीदास ने अपने 'मानस' में अयोध्या को 'अवधपुरी' कहा है। इसी क्षेत्र का पुराना नाम 'कोसल' भी था जिसकी महत्ता प्राचीन काल से चली आ रही है।

भाषा शास्त्री डॉ. सर 'जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन' के भाषा सर्वेक्षण के अनुसार अवधी बोलने वालों की कुल आबादी 1615458 थी जो सन् 1971 की जनगणना में 28399552 हो गई। मौजूदा समय में शोधकर्ताओं का अनुमान है कि 6 करोड़ से ज्यादा लोग अवधी बोलते हैं। भारत के उत्तर प्रदेश प्रान्त के 19 जिलों- सुल्तानपुर, अमेठी, बाराबंकी, प्रतापगढ़, प्रयागराज, कौशांबी, फतेहपुर, रायबरेली, उन्नाव, लखनऊ, हरदोई, सीतापुर, लखीमपुर खीरी, बहराइच, श्रावस्ती, बलरामपुर, गोंडा, अयोध्या व अंबेडकर नगर में पूरी तरह से यह बोली जाती है। जबकि 6 जिलों- जौनपुर, मिर्जापुर, कानपुर, शाहजहांपुर, बस्ती और बांदा के कुछ क्षेत्रों में इसका प्रयोग होता है। बिहार प्रांत के 2 जिलों के साथ

पड़ोसी देश नेपाल के कई जिलों – जिला बांके, जिला बर्दिया, जिला दांग, कपिलवस्तु जिला, पश्चिमी नवलपरासी जिला, जिलारुपन्देही जिला, जिला कंचनपुर आदि में यह काफी प्रचलित है। इसी प्रकार दुनिया के अन्य देशों– मॉरिशस, त्रिनिदाद एवं टुबैगो, फिजी, गयाना, सूरीनाम सहित आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड व हॉलैंड (नीदरलैंड) में भी लाखों की संख्या में अवधी बोलने वाले लोग हैं।

अवधी भाषी क्षेत्र का भौगोलिक विस्तार

अवधी प्रमुख रूप से भारत, नेपाल और फिजी में बोली जाती है। भारत में अवधी मुख्यत: उत्तर प्रदेश राज्य में बोली जाती है। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और बिहार के कुछ जिलों में बोली जाती है। उत्तर प्रदेश के अवधी भाषी जिलेरू अमेठी, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर, रायबरेली, प्रयागराज, कौशांबी, अम्बेडकर नगर, सिद्धार्थ नगर, गोंडा, बाराबंकी, अयोध्या, लखनऊ, हरदोई, सीतापुर, लखीमपुर खीरी, बहराइच, बस्ती एवं फतेहपुर।

नेपाल के अवधी भाषी जिले कपिलवस्तु, बर्दिया, डांग, रूपनदेही, नवलपरासी, कंचनपुर, बांके आदि तराई नेपाल के जिले।

इसी प्रकार दुनिया के अन्य देशों– मॉरिशस, त्रिनिदाद एवं टुबैगो, फिजी, गयाना, सूरीनाम सहित आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड व हॉलैंड (नीदरलैंड) में भी लाखों की संख्या में अवधी बोलने वाले लोग हैं।

परिचय

गठन की दृष्टि से हिंदी क्षेत्र की उपभाषाओं को दो वर्गों–पश्चिमी और पूर्वी में विभाजित किया जाता है। अवधी पूर्वी के अंतर्गत है। पूर्वी की दूसरी उपभाषा छत्तीसगढ़ी है। अवधी को कभी–कभी बैसवाड़ी भी कहते हैं। परंतु बैसवाड़ी अवधी की एक बोली मात्र है, जो उन्नाव, लखनऊ, रायबरेली और फतेहपुर जिले के कुछ भागों में बोली जाती है।

तुलसीदास कृत रामचरितमानस एवं मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत सहित कई प्रमुख ग्रंथ इसी बोली की देन है। इसका केन्द्र अयोध्या है। अयोध्या लखनऊ से 120 किमी की दूरी पर पूर्व में है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पं महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, राममनोहर लोहिया, कुंवर नारायण, दिवाकर द्विवेदी की यह जन्मभूमि है। उमराव जान,

आचार्य नरेन्द्र देव और राम प्रकाश द्विवेदी की कर्मभूमि भी यही है। रमई काका की लोकवाणी भी इसी भाषा में गुंजरित हुई। हिंदी के रीतिकालीन कवि द्विजदेव के वंशज अयोध्या का राजपरिवार है। इसी परिवार की एक कन्या का विवाह दक्षिण कोरिया के राजघराने में अरसा पहले हुआ था। हिंदी के वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ्घ त्रिपाठी ने अवधी भाषा और व्याकरण पर महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। फाह्यान ने भी अपने विवरण में अयोध्या का जिक्र किया है। आज की अवधी प्रवास और संस्कृतिकरण के चलते खड़ी बोली और अंग्रेजी के प्रभाव में आ रही है।

अवधी के पश्चिम में पश्चिमी वर्ग की बुंदेली और ब्रज का, दक्षिण में छत्तीसगढ़ी का और पूर्व में भोजपुरी बोली का क्षेत्र है। इसके उत्तर में नेपाल की तराई है।

व्याकरण

हिंदी खड़ीबोली से अवधी की विभिन्नता मुख्य रूप से व्याकरणात्मक है। इसमें कर्ता कारक के परसर्ग (विभक्ति) 'ने' का नितांत अभाव है। अन्य परसर्गों के प्रायरू दो रूप मिलते हैं- स्व और दीर्घ। (कर्म-संप्रदान-संबंध–क, काय करण-अपादान–स-त, से-तेय अधिकरण–म, मा)।

संज्ञाओं की खड़ीबोली की तरह दो विभक्तियाँ होती हैं- विकारी और अविकारी। अविकारी विभक्ति में संज्ञा का मूल रूप (राम, लरिका, बिटिया, मेहरारू) रहता है और विकारी में बहुवचन के लिए 'न' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है (यथा रामन, लरिकन, बिटियन, मेहरारुन)। कर्ता और कर्म के अविकारी रूप में व्यंजनान्त संज्ञाओं के अंत में कुछ बोलियों में एक स्व 'उ' की श्रुति होती है (यथा रामु, पूतु, चोरु)। किंतु निश्चय ही यह पूर्ण स्वर नहीं है और भाषाविज्ञानी इसे फुसफुसाहट के स्वर-स्व 'इ' और स्व 'ए' (यथा सांझि, खानि, ठेलुआ, पेहंटा) मिलते हैं।

संज्ञाओं के बहुधा दो रूप, स्व और दीर्घ (यथा नद्दी नदिया, घोड़ा घोड़वा, नाऊ नउआ, कुत्ता कुतवा) मिलते हैं। इनके अतिरिक्त अवधी क्षेत्र के पूर्वी भाग में एक और रूप-दीर्घतर मिलता है (यथा कुतउना)। अवधी में कहीं-कहीं खड़ीबोली का स्व रूप बिल्कुल लुप्त हो गया है, यथा बिल्ली, डिब्बी आदि रूप नहीं मिलते बेलइया, डेबिया आदि ही प्रचलित हैं।

सर्वनाम में खड़ीबोली और ब्रज के 'मेरा तेरा' और 'मेरो तेरो' रूप के लिए अवधी में 'मोर तोर' रूप हैं। इनके अतिरिक्त पूर्वी अवधी में पश्चिमी अवधी के 'सो' 'जो' 'को' के समानांतर 'से' 'जे' 'के' रूप प्राप्त हैं।

क्रिया में भविष्यकाल रूपों की प्रक्रिया खड़ी बोली से बिल्कुल भिन्न है। खड़ीबोली में प्रायः प्राचीन वर्तमान (लट्) के तद्भव रूपों में- गा-गी-गे जोड़कर (यथा होगा, होगी, होंगे आदि) रूप बनाए जाते हैं। ब्रज में भविष्यत् के रूप प्राचीन भविष्यत्काल (लट्) के रूपों पर आधारित हैं। (यथा होइहैंउ भविष्यति, होइहोंउ भविष्यामि)। अवधी में प्रायरू भविष्यत् के रूप तव्यत् प्रत्ययांत प्राचीन रूपों पर आश्रित हैं (होइबाउ भवितव्यम्)। अवधी की पश्चिमी बोलियों में केवल उत्तमपुरुष बहुवचन के रूप तव्यतांत रूपों पर निर्भर हैं। शेष ब्रज की तरह प्राचीन भविष्यत् पर। किंतु मध्यवर्ती और पूर्वी बोलियों में क्रमशः तव्यतांत रूपों की प्रचुरता बढ़ती गई है। क्रियार्थक संज्ञा के लिए खड़ी बोली में 'ना' प्रत्यय है (यथा होना, करना, चलना) और ब्रज में 'नो' (यथा होनो, करनो, चलनो)। परंतु अवधी में इसके लिए 'ब' प्रत्यय है (यथा होब, करब, चलब)। अवधी में निष्ठा एकवचन के रूप का 'वा' में अंत होता है (यथा भवा, गवा, खावा)। भोजपुरी में इसके स्थान पर 'ल' में अंत होने वाले रूप मिलते हैं (यथा भइल, गइल)। अवधी का एक मुख्य भेदक लक्षण है अन्यपुरुष एकवचन की सकर्मक क्रिया के भूतकाल का रूप (यथा करिसि, खाइसि, मारिसि)। य-'सि' में अंत होनेवाले रूप अवधी को छोड़कर अन्यत्र नहीं मिलते। अवधी की सहायक क्रिया में रूप 'ह' (यथा हइ, हइं), 'अह' (अहइ, अइई) और 'बाटइ' (यथा बाटइ, बाटइं) पर आधारित हैं।

ऊपर लिखे लक्षणों के अनुसार अवधी की बोलियों के तीन वर्ग माने गए हैं—पश्चिमी, मध्यवर्ती और पूर्वी। पश्चिमी बोली पर निकटता के कारण ब्रज का और पूर्वी पर भोजपुरी का प्रभाव है। इनके अतिरिक्त बघेली बोली का अपना अलग अस्तित्त्व है।

विकास की दृष्टि से अवधी का स्थान ब्रज, कन्नौजी और भोजपुरी के बीच में पड़ता है। ब्रज की व्युत्पत्ति निश्चय ही शौरसेनी से तथा भोजपुरी की मागधी प्राकृत से हुई है। अवधी की स्थिति इन दोनों के बीच में होने के कारण इसका अर्द्धमागधी से निकलना मानना उचित होगा। खेद है कि अर्द्धमागधी का हमें जो प्राचीनतम रूप मिलता है वह पाँचवीं शताब्दी ईसवी का है और उससे अवधी के रूप निकालने में कठिनाई होती है। पालि भाषा में बहुधा ऐसे रूप

मिलते हैं जिनसे अवधी के रूपों का विकास सिद्ध किया जा सकता है। संभवतः ये रूप प्राचीन अर्धमागधी के रहे होंगे।

अवधी साहित्य

प्राचीन अवधी साहित्य की दो शाखाएँ हैं–एक भक्तिकाव्य और दूसरी प्रेमाख्यान काव्य। भक्तिकाव्य में गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरितमानस' (सं. 1631) अवधी साहित्य की प्रमुख कृति है। इसकी भाषा संस्कृत शब्दावली से भरी है। 'रामचरितमानस' के अतिरिक्त तुलसीदास ने अन्य कई ग्रंथ अवधी में लिखे हैं। इसी भक्ति साहित्य के अंतर्गत लालदास का 'अवधबिलास' आता है। इसकी रचना संवत् 1700 में हुई। इनके अतिरिक्त कई और भक्त कवियों ने रामभक्ति विषयक ग्रंथ लिखे।

संत कवियों में बाबा मलूकदास भी अवधी क्षेत्र के थे। इनकी बानी का अधिकांश अवधी में है। इनके शिष्य बाबा मथुरादास की बानी भी अधिकतर अवधी में है। बाबा धरनीदास यद्यपि छपरा जिले के थे तथापि उनकी बानी अवधी में प्रकाशित हुई। कई अन्य संत कवियों ने भी अपने उपदेश के लिए अवधी को अपनाया है।

प्रेमाख्यान काव्य में सर्वप्रसिद्ध ग्रंथ मलिक मुहम्मद जायसी रचित 'पद्मावत' है जिसकी रचना 'रामचरितमानस' से 34 वर्ष पूर्व हुई। दोहे चौपाई का जो क्रम 'पद्मावत' में है प्रायरू वही 'मानस' में मिलता है। प्रेमाख्यान काव्य में मुसलमान लेखकों ने सूफी मत का रहस्य प्रकट किया है। इस काव्य की परंपरा कई सौ वर्षों तक चलती रही। मंझन की 'मधुमालती', उसमान की 'चित्रवली', आलम की 'माधवानल कामकंदला', नूरमुहम्मद की 'इंद्रावती' और शेख निसार की 'यूसुफ जुलेखा' इसी परंपरा की रचनाएँ हैं। शब्दावली की दृष्टि से ये रचनाएँ हिंदू कवियों के ग्रंथों से इस बात में भिन्न हैं कि इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की उतनी प्रचुरता नहीं है।

प्राचीन अवधी साहित्य में अधिकतर रचनाएँ देशप्रेम, समाजसुधार आदि विषयों पर और मुख्य रूप से व्यंग्यात्मक हैं। कवियों में प्रतापनारायण मिश्र, बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस', वंशीधर शुक्ल, चंद्रभूषण द्विवेदी 'रमई काका', गुरु प्रसाद सिंह 'मृगेश' और शारदाप्रसाद 'भुशुंडि' विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रबंध की परंपरा में 'रामचरितमानस' के ढंग का एक महत्त्वपूर्ण आधुनिक ग्रंथ द्वारिकाप्रसाद मिश्र का 'कृष्णायन' है। इसकी भाषा और शैली 'मानस' के ही

समान है और ग्रंथकार ने कृष्णचरित प्रायः उसी तन्मयता और विस्तार से लिखा है जिस तन्मयता और विस्तार से तुलसीदास ने रामचरित अंकित किया है। मिश्र जी ने इस ग्रंथ की रचना द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि प्रबंध के लिए अवधी की प्रकृति आज भी वैसी ही उपादेय है जैसी तुलसीदास के समय में थी।

अवधी लोक साहित्य

अवधी लोक साहित्य की एक समृद्ध परम्परा है। अवधी लोक साहित्य पर कई शोध हुए हैं। इनमें कुछ प्रमुख हैं- अवधी लोक साहित्य -डॉ. सरोजनी रोहतगी (1971)

अवधी लोक गायन

प्राचीन काल में अवधी साहित्य केवल पद्य के रूप में फला फूला है। अतः अवधी लोक गायकी भी प्राचीन काल से ही चली आ रही है। अवधी कलाकारों को बिरहा, नौटंकी नाच, अहिरवा नृत्य, कंहरवा नृत्य, चमरवा नृत्य, कजरी आदि नाट्य विधाओं का आविष्कारक माना जाता है तथा इसमें इन्हे अभी भी महारत हासिल है। अवधी की गारी तो पूरे अवध में प्रसिद्ध है, इसे शादी-ब्याह में महिलाओं द्वारा गाया जाता है। अवधी के सुप्रसिद्ध गायक दिवाकर द्विवेदी है।

अवधी भाषा का संघर्ष

विश्व भर में 6 करोड़ लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा अवधी को अभी तक भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में जगह नहीं मिल सकी है। इसी प्रकार फिजी में अवधी भाषा को फिजी हिंदी के रूप में प्रस्तुत करके भारत सरकार ने फिजी में भी अवधी के अस्तित्त्व को मानने से इंकार कर दिया है। किन्तु इन्हीं सब के बीच नेपाल ने प्रांत संख्या 5 में अवधी को आधिकारिक भाषा का दर्जा प्रदान करके अवधी साहित्यकारों की कलम में जान फूंकने का कार्य किया है। इससे भारत के अवधी भाषी भी काफी उत्साहित हैं।

अवधी साहित्य

भारत के अवध क्षेत्र की भाषा अवधी कहलाती है, जो राष्ट्रभाषा हिन्दी की एक उपभाषा है। अवधी का प्राचीन साहित्य बड़ा संपन्न है। इसमें भक्ति काव्य और प्रेमाख्यान काव्य दोनों का विकास हुआ।

अवधी साहित्य का इतिहास

भक्तिकाव्य और प्रेमाख्यान काव्य, प्राचीन अवधी साहित्य की दो शाखाएँ हैं।

भक्तिकाव्य

भक्तिकाव्य का शिरोमणि ग्रंथ गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' है। भक्तिकाव्य में गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस (संवत 1631) अवधी साहित्य की प्रमुख कृति है। इसकी भाषा संस्कृत शब्दावली से भरी है। रामचरितमानस के अतिरिक्त तुलसीदास ने अन्य कई ग्रंथ अवधी में लिखे हैं। इसी भक्ति साहित्य के अंतर्गत लालदास का 'अवधबिलास' आता है। इसकी रचना संवत् 1700 में हुई। इनके अतिरिक्त कई और भक्त कवियों ने रामभक्ति विषयक ग्रंथ लिखे।

संत कवियों में बाबा मलूकदास भी अवधी क्षेत्र के थे। इनकी बानी का अधिकांश अवधी में है। इनके शिष्य बाबा मथुरादास की बानी भी अधिकतर अवधी में है। बाबा धरनीदास यद्यपि छपरा जिले के थे। तथापि उनकी बानी अवधी में प्रकाशित हुई। कई अन्य संत कवियों ने भी अपने उपदेश के लिए अवधी को अपनाया है।

यहां पर यह ध्यान देने योग्य है कि सूरजदास की 'रामजन्म' (गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व हुए थे सूरजदास), ईश्वरदास की सत्यवती, कुतुबत का मिरगावत, लालचदास का हरिचरित, संवत 1558 में पुरुषोत्तम दास रचित जैमिनी पुराण, मंझन की मधुमालती, अमीर खुसरो व अब्दुलरहीम खानखाना की रचनाओं से अवधी को पूर्व में जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी, उसे आज रचनाशीलता के जरिए संरक्षित करने की जरूरत है।

नरोत्तमदास की संवत 1605 में रचित सुदामा चरित काव्य-ग्रंथ अवधी में हैं।

प्रेमाख्यान काव्य

प्रेमाख्यान काव्य में सर्वप्रसिद्ध ग्रंथ मलिक मुहम्मद जायसी रचित 'पद्मावत' है, जिसकी रचना 'रामचरितमानस' से 34 वर्ष पूर्व हुई। दोहे चौपाई का जो क्रम 'पद्मावत' में है प्रायः वही 'मानस' में मिलता है। प्रेमाख्यान काव्य में मुसलमान लेखकों ने सूफी मत का रहस्य प्रकट किया है। इस काव्य की

परंपरा कई सौ वर्षों तक चलती रही। मंझन की 'मधुमालती', उसमान की 'चित्रवली', आलम की 'माधवानल कामकंदला', नूरमुहम्मद की 'इंद्रावती' और शेख निसार की 'यूसुफ जुलेखा' इसी परंपरा की रचनाएँ हैं। शब्दावली की दृष्टि से ये रचनाएँ हिंदू कवियों के ग्रंथों से इस बात में भिन्न हैं कि इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की उतनी प्रचुरता नहीं है। प्रेमाख्यान का प्रतिनिधि ग्रंथ मलिक मुहम्मद जायसी रचित 'पद्मावत' है, जिसकी रचना 'रामचरितमानस' से चौंतीस वर्ष पहले हुई। अवधी की यह संपन्न परंपरा आज भी चली आ रही है।

प्राचीन अवधी साहित्य में अधिकतर रचनाएँ देशप्रेम, समाज सुधार आदि विषयों पर और मुख्य रूप से व्यंग्यात्मक हैं। कवियों में प्रतापनारायण मिश्र, बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस', वंशीधर शुक्ल, मृगेश, रमई काका और शारदाप्रसाद 'भुशुंडि' विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रबंध की परंपरा में 'रामचरितमानस' के ढंग का एक महत्त्वपूर्ण आधुनिक ग्रंथ द्वारिकाप्रसाद मिश्र का 'कृष्णायन' है। इसकी भाषा और शैली 'मानस' के ही समान है और ग्रंथकार ने कृष्णचरित प्रायरू उसी तन्मयता और विस्तार से लिखा है जिस तन्मयता और विस्तार से तुलसीदास ने रामचरित अंकित किया है। द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने इस ग्रंथ की रचना द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि प्रबंध के लिए अवधी की प्रकृति आज भी वैसी ही उपादेय है जैसी तुलसीदास के समय में थी।

वर्तमान में अवधी साहित्य

पढ़ीस, मृगेश, वंशीधर शुक्ल, रमई काका, पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र, विश्वनाथ पाठक, त्रिलोचन शास्त्री, डॉ. श्यामसुंदर मधुप, बेकल उत्साही, पारस भ्रमर, विकल गोंडवी, जुमई खां आजाद, आद्या प्रसाद उन्मत, निर्झर प्रतापगढ़ी, असविंद द्विवेदी, जगदीश पीयूष, विक्रम मणि त्रिपाठी डॉ. विद्या विंदु सिंह जैसे कई अनेक रचनाकार है, जिनका अवधी साहित्य में अमूल्य योगदान रहा हैं।

6

कन्नौजी भाषा

कन्नौज और उसके आस-पास बोली जाने वाली भाषा को कन्नौजी या कनउजी भाषा कहते हैं। 'कान्यकुब्ज' से 'कन्नौज' शब्द व्युत्पन्न हुआ और कन्नौज के आस-पास की बोली 'कन्नौजी' नाम से अभिहित की गयी। कन्नौज वर्तमान में एक जिला है, जो उत्तर प्रदेश में है। यह भारत का अति प्राचीन, प्रसिद्ध एवं समृद्ध नगर रहा है। इसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों रामायण आदि में मिलता है। कन्नौजी का विकास शौरसेनी प्राकृत की भाषा पांचाली प्राकृत से हुआ। इसीलिए आचार्य किशोरीदास बाजपेई ने इसे पांचाली नाम दिया। वस्तुतः पांचाल प्रदेश की मुख्य बोली 'पांचाली' अर्थात् 'कन्नौजी' ही है।

कन्नौजी, ब्रजभाषा से बहुत कुछ मिलती जुलती है। इटावा से इलाहाबाद के पास तक, अंतर्वेद में इसका प्रचार है। अवध के हरदोई और उन्नाव जिलों में भी यही भाषा बोली जाती है। हरदोई में ज्यादा उन्नाव में कम। इस भाषा में कुछ भी साहित्य नहीं है। कोई 100 वर्ष हुए श्रीरामपुर के पादरियों ने बाइबल का एक अनुवाद इस प्रांतिक भाषा में प्रकाशित किया था। उसे देखने से मालूम होता है कि तब की और अब की भाषा में फर्क हो गया है। कितने ही शब्द जो पहले बोले जाते थे अब नहीं बोले जाते।

यह बोली उत्तर में हरदोई, शाहजहाँपुर और पीलीभीत तक तथा दक्षिण में इटावा, मैनपुरी की भोगाँव, मैनपुरी तथा करहल तहसील, एटा की एटा और अलीगंज तहसील, बदायूँ की बदायूँ तथा दातागंज तहसील, बरेली की बरेली,

फरीदपुर तथा नवाबगंज तहसील, पीलीभीत, हरदोई (संडीला तहसील में गोसगंज तक), खेरी की मुहम्मदी तहसील तथा सीतापुर की मिस्रिख तहसील में बोली जाती है। स्पष्ट है कि उत्तर पांचाल के अनेक जनपदों में तथा दक्षिण पांचाल के लगभग समस्त जनपदों में 'कन्नौजी' का ही प्रचार-प्रसार है।

कन्नौजी का क्षेत्र

कन्नौजी का क्षेत्र बहुत विस्तृत नहीं है, परन्तु भाषा के सम्बंध में यह कहावत बड़ी सटीक है कि-

कोस-कोस पर पानी बदले दुइ-दुइ कोस में बानी।

व्यवहार में देखा जाता है कि एक गाँव की भाषा अपने पड़ोसी गाँव की भाषा से कुछ न कुछ भिन्नता लिए होती है। इसी आधार पर कन्नौजी की उपबोलियों का निर्धारण किया गया है।

कन्नौजी उत्तर प्रदेश के कन्नौज, औरैया, मैनपुरी, इटावा, फर्रुखाबाद, हरदोई, शाहजहांपुर, कानपुर, पीलीभीत जिलों के ग्रामीण अंचल में बहुतायत से बोली जाती है। कन्नौजी भाषा, पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत आती हॅ।

कन्नौजी की उप बोलियाँ

कन्नौजी भाषा क्षेत्र में विभिन्न बोलियों का व्यवहार होता है, जिनको इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है- मध्य कन्नौजी, तिरहारी, पछरुआ, बंग्रही, शहजहाँपुरिया, पीलीभीती, बदउआँ, अन्तर्वेदी। पहचान की दृष्टि से कन्नौजी ओकारान्त प्रधान बोली है। ब्रजभाषा और कन्नौजी में मूल अन्तर यही है कि कन्नौजी के ओकारान्त और एकारान्त के स्थान पर ब्रजभाषा में 'औकारान्त' और 'ऐकारान्त' क्रियाएँ आती हैं-

गओ - गयौ, खाओ - खायौ चले - चलै, करे - करै

कन्नौजी की ध्वनियाँ

इसकी ध्वनियो में मध्यम 'ह' का लोप हो जाता है- जाहि, जाइ शब्दारम्भ में ल्ह, र्ह, म्ह् व्यंजन मिलते हैं- ल्हसुन, हँट, महंगाई आदि। अन्त्य अल्पप्राण महाप्राण में बदल जाता है- हाथ झ हात। स्वरों में अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है- अइँचत, जुआँ, इंकार, भउजाई, उंघियात, अनेंठ, मों (मुँह)। 'य' के स्थान पर 'ज' हो जाता है- यमुना झ जमुना, यश झ जस। 'व' के स्थान

पर 'ब' का व्यवहार होता है- वर झ बर, वकील झ बकील। कहीं - कहीं पर 'व' के स्थान पर 'उ' भी प्रयुक्त होता है- अवतार झ अउतार। उसमें अवधी की भाँति उकारान्त की प्रवृत्ति भी पाई जाती है- खेत झ खेतु, मरत झ मत्तु। कहीं-कहीं 'ख' के स्थान पर 'क' उच्चरित होता है- भीख झ भीक, 'ण' 'ड़' हो जाता है- रावण झ रावड़, गण झ गड़। 'स' के स्थान पर 'ह'- मास्टर झ महट्टर, सप्ताह झ हप्ताह। उपेक्षाभाव से उच्चरित संज्ञा शब्दों में 'टा' प्रत्यय का योग विशेष उल्लेखनीय है- बनियाँ झ बनेटा, किसान झ किसन्टा, काछी झ कछेटा, बच्चा झ बच्चटा अदि।

कन्नौजी का व्याकरण

कन्नौजी के स्वरों में अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है- अइँचत, जुआँ, इंकार, भउजाई, उंघियात, अनेंठ, मों आदि। 'ऐ' और 'औ' स्वर संयुक्त स्वर 'अइ' और 'अउ' के रूप में प्रयुक्त होते हैं- गैया झ गइया, ऐनक झ अइनक, औकात झ अउकात। कन्नॉजी के स्त्रीलिंग प्रत्यय- ई, न, नी, इया हैं। घोड़ी, धोबिन, मास्टरनी, जाटिन, कुतरिया। इसके क्रिया रूप इस प्रकार हैं- वर्तमान निश्चयार्थ रूप।

7

खड़ी बोली का इतिहास

खड़ी से अर्थ है खरी अर्थात शुद्ध अथवा ठेठ हिंदी बोली। शुद्ध अथवा ठेठ हिंदी बोली या भाषा को उस समय खरी या खड़ी बोली के नाम से सम्बोधित किया गया जबकि हिंदुस्तान में अरबी फारसी और हिंदुस्तानी शब्द मिश्रित उर्दू भाषा का चलन था या दूसरी तरफ अवधी या ब्रज भाषा का। ठेठ या शुद्ध हिंदी का चलन न था। यह लगभग 18वीं शताब्दी के आरम्भ का समय था जब कुछ हिंदी गद्यकारों ने ठेठ हिंदी में लिखना शुरू किया। इसी ठेठ हिंदी को खरी हिंदी या खडी हिंदी बोली कहा गया।

खड़ी बोली से तात्पर्य खड़ी बोली हिंदी से है जिसे भारतीय संविधान ने राजभाषा के रूप में स्वीकृत किया है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से इसे आदर्श (स्टैंडर्ड) हिंदी, उर्दू तथा हिंदुस्तानी की मूल आधार स्वरूप बोली होने का गौरव प्राप्त है। गाजियाबाद हापूड ग्रेटर नोएडा में ब्रजभाषा प्रभावित खडी बोली बोली जाती है मेरठ व मुजफ्फरनगर(पूर्वी भाग) की खडी बोली आदर्श खडी बोली मानी जाती है जिससे आधुनिक हिंदी भाषा का जन्म हुआ वही दुसरी और मुजफ्फरनगर(पश्चिमी भाग) व सहारनपुर बागपत में खडी बोली में हयाणवी की झलक देखने को मिलती है अंबाला तथा पचंकूला जिलों में खडी बोली उपभाषा है, जो ग्रामीण जनता के द्वारा मातृभाषा के रूप में बोली जाती है।

खड़ी बोली वह बोली है जिस पर ब्रजभाषा या अवधी आदि की छाप न हो। ठेंठ हिंदी। आज की राष्ट्रभाषा हिंदी का पूर्व रूप। इसका इतिहास शताब्दियों से चला आ रहा है। यह परिनिष्ठित पश्चिमी हिंदी का एक रूप है।

परिचय

श्खड़ी बोली' (या खरी बोली) वर्तमान हिंदी का एक रूप है जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिंदी भाषा की सृष्टि की गई और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है। दूसरे शब्दों में, वह बोली जिस पर ब्रज या अवधी आदि की छाप न हो, ठेंठ हिंदीं। खड़ी बोली आज की राष्ट्रभाषा हिंदी का पूर्व रूप है। यह परिनिष्ठित पश्चिमी हिंदी का एक रूप है। इसका इतिहास शताब्दियों से चला आ रहा है।

जिस समय मुसलमान इस देश में आकर बस गए, उस समय उन्हें यहाँ की कोई एक भाषा ग्रहण करने की आवश्यकता हुई। वे प्रायः दिल्ली और उसके पूरबी प्रांतों में ही अधिकता से बसे थे और ब्रजभाष तथा अवधी भाषाएँ, क्लिष्ट होने के कारण अपना नहीं सकते थे, इसलिये उन्होंने मेरठ और उसके आस' पास की बोली ग्रहण की और उसका नाम खड़ी (खरी?) बोली रखा। इसी खड़ी बोली में वे धीरे धीरे फारसी और अरबी शब्द मिलाते गए जिससे अंत में वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि हुई। विक्रमी 14वीं शताब्दी में पहले-पहल अमीर खुसरो ने इस प्रांतीय बोली का प्रयोग करना आरंभ किया और उसमें बहुत कुछ कविता की, जो सरल तथा सरस होने के कारण शीघ्र ही प्रचलित हो गई। बहुत दिनों तक मुसलमान ही इस बोली का बोलचाल और साहित्य में व्यवहार करते रहे, पर पीछे हिंदुओं में भी इसका प्रचार होने लगा। 15वीं और 16वीं शताब्दी में कोई कोई हिंदी के कवि भी अपनी कविता में कहीं कहीं इसका प्रयोग करने लगे थे, पर उनकी संख्या प्रायः नहीं के समान थी।

अधिकांश कविता बराबर अवधी और ब्रजभाषा में ही होती रही। 18वीं शताव्धी में हिंदू भी साहित्य में इसका व्यवहार करने लगे, पर पद्य में नहीं, केवल गद्य मेंय और तभी से मानों वर्तमान हिंदी गद्य का जन्म हुआ, जिसके आचार्य मुंशी सदासुखलाल, लल्लू जी लाल और सदल मिश्र माने जाते हैं। जिस प्रकार मुसलमानों ने इसमें फारसी तथा अरबी आदि के शब्द भरकर वर्तमान उर्दू भाषा बनाई, उसी प्रकार हिंदुओं ने भी उसमें संस्कृत के शब्दों की अधिकता करके

वर्तमान हिंदी प्रस्तुत की। इधर थोड़े दिनों से कुछ लोग संस्कृत प्रचुर वर्तमान हिंदी में भी कविता करने लग गए हैं और कविता के काम के लिये उसी को खड़ी बोली कहते हैं।

वर्तमान हिंदी का एक रूप जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिंदी भाषा की और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है।

साहित्यिक सन्दर्भ

साहित्यिक संदर्भ में ब्रज, अवधी आदि बोलियों में साहित्य का पार्थक्य करने के लिए आधुनिक हिंदी साहित्य को खड़ी बोली साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है। यह भारतवर्ष की सर्वाधिक प्रचलित, सरल तथा बोधगम्य भाषा है। बिहार, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश एवं हरियाणा हिंदी (खड़ी बोली) भाषाभाषी राज्य हैं। परंतु इनके अतिरिक्त सुदूर दक्षिण के कुछ स्थानों को छोड़कर इसका प्रचार न्यूनाधिक समस्त देश में है।

नामकरण

खड़ी बोली अनेक नामों से अभिहित की गई है यथा-हिंदुई, हिंदवी, दक्खिनी, दखनी या दकनी, रेखता, हिंदोस्तानी, हिंदुस्तानी आदि। डॉ. ग्रियर्सन ने इसे वर्नाक्युलर हिंदुस्तानी तथा डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने इसे जनपदीय हिंदुस्तानी का नाम दिया है। डॉ. चटर्जी खड़ी बोली के साहित्यिक रूप को साधु हिंदी या नागरी हिंदी के नाम से अभिहित करते हैं। परंतु डॉ. ग्रियर्सन ने इसे हाई हिंदी का अभिधान प्रदान किया है। इसकी व्याख्या विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न रूप से की है। इन विद्वानों के मतों की निम्नांकित श्रेणियाँ है-

(1) कुछ विद्वान खड़ी बोली नाम को बज्रभाषा सापेक्ष मानते हैं और यह प्रतिपादन करते हैं कि लल्लू जी लाल (1803 ई.) के बहुत पूर्व यह नाम ब्रजभाषा की मधुरता तथा कोमलता की तुलना में उस बोली को दिया गया था जिससे कालांतर में आदर्श हिंदी तथा उर्दू का विकास हुआ। ये विद्वान खड़ी शब्द से कर्कशता, कटुता, खरापन, खड़ापन आदि ग्रहण करते हैं।

(2) कुछ लोग इसे उर्दू सापेक्ष मानकर उसकी अपेक्षा इसे प्रकृत शुद्ध, ग्रामीण ठेठ बोली मानते हैं।

(3) अनेक विद्वान खड़ी का अर्थ सुस्थित, प्रचलित, सुसंस्कृत, परिष्कृत या परिपक्व ग्रहण करते हैं।

(4) अन्य विद्वान् उत्तरी भारत की ओकारांत प्रधान ब्रज आदि बोलियों को पड़ी बोली और इसके विपरीत इसे खड़ी बोली के नाम से अभिहित करते हैं, जबकि कुछ लोग रेखता शैली को पड़ी और इसे खड़ी मानते हैं। खड़ी बोली को खरी बोली भी कहा गया है। संभवत: खड़ी बोली शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग लल्लू जी लाल द्वारा प्रेमसागर में किया गया है। किंतु इस ग्रंथ के मुखपृष्ठ पर खरी शब्द ही मुद्रित है।

खड़ी बोली की उत्पत्ति तथा इसके संबंध में विभिन्न मत

अत्यंत प्राचीन काल से ही हिमालय तथा विंध्य पर्वत के बीच की भूमि आर्यावर्त के नाम से प्रख्यात है। इसी के बीच के प्रदेश को मध्य प्रदेश कहा जाता है, जो भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का केंद्रबिंदु है। संस्कृत, पालि तथा शौरसेनी प्राकृत विभिन्न युगों में इस मध्यदेश की भाषा थी। कालक्रम से शौरसेनी प्राकृत के पश्चात् इस प्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार हुआ। यह कथ्य (बोलचाल की) शौरसेनी अपभ्रंश भाषा ही कालांतर में कदाचित् खड़ी बोली (हिंदी) के रूप में पारिणत हुई है। इस प्रकार खड़ी बोली की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से मानी जाती है, यद्यपि इस अपभ्रंश का विकास साहित्यक रूप में नहीं पाया जाता। भोज और हम्मीरदेव के समय से अपभ्रंश काव्यों की जो परंपरा चलती रही उसके भीतर खड़ी बोली के प्राचीन रूप की झलक दिखाई पड़ती है। इसके उपरांत भक्तिकाल के आरंभ में निर्गुण धारा के संत कवि खड़ी बोली का व्यवहार अपनी सधुक्कड़ी भाषा में किया करते थे।

कुछ विद्वानों का मत है कि मुसलमानों के द्वारा ही खड़ी बोली अस्तित्त्व में लाई गई और उसका मूलरूप उर्दू है, जिससे आधुनिक हिंदी की भाषा अरबी फारसी शब्दों को निकालकर गढ़ ली गई। सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्री, डॉ. ग्रियर्सन के मतानुसार खड़ी बोली अंग्रेजों की देन है। मुगल साम्राज्य के ध्वंस से खड़ी बोली के प्रचार में सहायता पहुँची। जिस प्रकार उजड़ती हुई दिल्ली को छोड़कर मीर, इंशा आदि उर्दू के अनेक शायर पूरब की ओर आने लगे उसी प्रकार दिल्ली के आसपास के हिंदू व्यापारी जीविका के लिये लखनऊ, फैजाबाद, प्रयाग, काशी, पटना, आदि पूरबी शहरों में फैलने लगे। इनके साथ ही साथ उनकी बोलचाल की भाषा खड़ी बोली भी लगी चलती थी। इस प्रकार बड़े शहरों के बाजार की

भाषा भी खड़ी बोली हो गई। यह खड़ी बोली असली और स्वाभाविक भाषा थी, मौलवियों और मुंशियों की उर्दू-ए-मुअल्ला नहीं। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के संबंध में वे लिखते हैं कि यह समय हिंदी (खड़ीबोली) भाषा के जन्म का समय था जिसका अविष्कार अंग्रेजों ने किया था और इसका साहित्यिक गद्य के रूप में सर्वप्रथम प्रयोग गिलक्राइस्ट की आज्ञा से लल्लू जी लाल ने अपने प्रेमसागर में किया।

लल्लू जी लाल और पं. सदल मिश्र को खड़ी बोली के उन्नायक अथवा इसको प्रगति प्रदान करनेवाला तो माना जा सकता है, परंतु इन्हें खड़ी बोली का जन्मदाता कहना सत्य से युक्त तथा तथ्यों से प्रमाणित नहीं है। खड़ी बोली की प्राचीन परंपरा के संबंध में ध्यानपूर्वक विचार करने पर इस कथन की अयथार्थता स्वयमेव सिद्ध हो जाती है। मुसलमानों के द्वारा इसके प्रसार में सहायता अवश्य प्राप्त हुई। उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नहीं बल्कि खड़ी बोली की ही एक शैली मात्र है जिसमें फारसी और अरबी के शब्दों की अधिकता पाई जाती है तथा जो फारसी लिपि में लिखी जाती है। उर्दू साहित्य के इतिहास पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट प्रमाणित है। अनेक मुसलमान कवियों ने फारसी मिश्रित खड़ी बोली में, जिसे वे 'रेख्ता' कहते थे, कविता की है। यह परंपरा 18वीं-19वीं शती में दिल्ली के अंतिम बादशाह बहादुरशाह तथा लखनऊ के अंतिम नवाब वाजिदअली शाह तक चलती रही।

साधारणत: लल्लू जी लाल, सदल मिश्र, इंशाअल्ला खाँ तथा मुंशी सदासुखलाल खड़ी बोली गद्य के प्रतिष्ठापक कहे जाते हैं परंतु इनमें से किसी को भी इसकी परंपरा को प्रतिष्ठित करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं है। आधुनिक खड़ी बोली गद्य की परंपरा की प्रतिष्ठा का श्रेय भारतेंदु बाबू हरिशचंद्र एवं राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद को प्राप्त है जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा एक सरल सर्वसम्मत गद्यशैली का प्रवर्तन किया। कालांतर में लोगों ने भारतेंदु की शैली अधिक अपनाई।

वस्तुत: आधुनिक हिंदी साहित्य खड़ी बोली का ही साहित्य है जिसके लिए देवनागरी लिपि का सामान्यत: व्यवहार किया जाता है और जिसमें संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि के शब्दों और प्रकृतियों के साथ देश में प्रचलित अनेक भाषाओं और जनबोलियों की छाया अपने तद्भव रूप में वर्तमान है।

हिंदी भारतीय गणराज की राजकीय और मध्य भारतीय- आर्य भाषा है। सन 2001 की जनगणना के अनुसार, लगभग 25.79 करोड़ भारतीय हिंदी का

उपयोग मातृभाषा के रूप में करते हैं, जबकि लगभग 42.20 करोड़ लोग इसकी 50 से अधिक बोलियों में से एक इस्तेमाल करते हैं। सन 1998 के पूर्व, मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें हिन्दी को तीसरा स्थान दिया जाता था

भाषाशास्त्र की दृष्टि से खड़ी बोली शब्द का प्रयोग दिल्ली - मेरठ के समीपस्थ ग्रामीण समुदाय की ग्रामीण बोली के लिए होता है। ग्रियर्सन ने इसे 'वर्नाक्यूलर हिन्दुस्तानी' तथा सुनीतिकुमार चटर्जी ने 'जनपदीय हिन्दुस्तानी' कहा है। खडी बोली नागरी लिपि में ही लिखी जाती है। हिंदी की रूपरेखा जानने के लिए खड़ी बोली का ज्ञान अति आवश्यक है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से खड़ी बोली ही स्टैण्डर्ड हिन्दी, उर्दू तथा हिन्दुस्तानी की मूलधार बोली है। साहित्यक सन्दर्भ में कभी-कभी अवधी, ब्रज आदि बोलियों के साहित्य से अलगाव करने के लिए आधुनिक हिन्दी साहित्य को 'खड़ी बोली सहित्य' से अभिहित किया जाता है और इस प्रसंग में खड़ी बोली शब्द 'स्टैण्डर्ड हिन्दी' का समानार्थक हो जाता है। प्रथम को हम 'खड़ी बोली' शब्द का विशिष्ट अर्थ और द्वितीय को सामान्य अर्थ कह सकते हैं। किंतु 'खड़ी बोली' शब्द के आरम्भिक अर्थ तथा नामकरण और उसके रूप, अर्थ, प्रयोग के विकास के सम्बन्ध में विद्वानों में मतवैभिन्न्य दिखाई पड़ता है। 'खड़ी बोली' नाम की व्याख्या भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न रूप से की है। उन विद्वानों की विचार-धाराओं को निम्नलिखित वर्गों में बाँट सकते हैं-

कुछ विद्वान् 'खड़ी बोली' नाम को ब्रजभाषा-सापेक्ष्य मानते हैं और यह प्रतिपादन करते हैं कि लल्लू लालजी (1803 ई.) से बहुत पूर्व यह नाम ब्रजभाषा की मधुर मिठास की तुलना में उस बोली को दिया गया था, जिससे कालांतर में स्टैण्डर्ड हिन्दी और उर्दू का विकास हुआ। ये विद्वान् 'खड़ी' शब्द से कर्कशता, कटुता, खरापन, खड़ापन आदि अर्थ लेते हैं।

कुछ लोग इसे उर्दू - सापेक्ष्य मानकर उसकी अपेक्षा इसे प्रकृत, 'शुद्ध', ग्रामीण ठेठबोली मानते हैं।

कुछ खड़ी का अर्थ 'सुस्थिर, सुप्रचलित, सुसंस्कृत, 'परिष्कृत या परिपक्व से मानते हैं।

कुछ लोग उत्तरी भारत की ओकारांत ब्रज आदि बोलियों को 'पड़ी बोली' और उसके विरोध में इसे 'खड़ी बोली' मानते हैं।

भारतेन्दु पूर्व युग

खड़ी बोली गद्य के आरम्भिक रचनाकारों में फोर्ट विलियम कॉलेज के बाहर दो रचनाकारों, सदासुख लाल 'नियाज' (सुखसागर) व इंशा अल्ला खघँ (रानी केतकी की कहानी) तथा फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता के दो भाषा मुंशियोंकृ लल्लू लालजी (प्रेम सागर) व सदल मिश्र (नासिकेतोपाख्यान) के नाम उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु पूर्व युग में मुख्य संघर्ष हिंदी की स्वीकृति और प्रतिष्ठा को लेकर था। इस युग के दो प्रसिद्ध लेखकों, राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' व राजा लक्ष्मण सिंह ने हिंदी के स्वरूप निर्धारण के सवाल पर दो सीमान्तों का अनुगमन किया। राजा शिव प्रसाद ने हिंदी का गँवारुपन दूर कर उसे उर्दूदृएख़ मुअल्ला बना दिया तो राजा लक्ष्मण सिंह ने विशुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिंदी का समर्थन किया।

भारतेन्दु युग (1850 ई.-900 ई.)

इन दोनों के बीच सर्वमान्य हिंदी गद्य की प्रतिष्ठा कर गद्य साहित्य की विविध विधाओं का ऐतिहासिक कार्य भारतेन्दु युग में हुआ। हिंदी सही मायने में भारतेन्दु के काल में 'नई चाल में ढली' और उनके समय में ही हिंदी के गद्य के बहुमुखी रूप का सूत्रपात हुआ। उन्होंने न केवल स्वयं रचना की, बल्कि अपना एक लेखक मंडल भी तैयार किया, जिसे 'भारतेन्दु मंडल' कहा गया। भारतेन्दु युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि गद्य रचना के लिए खड़ी बोली को माध्यम के रूप में अपनाकर युगानुरूप स्वस्थ दृष्टिकोण का परिचय दिया। लेकिन पद्य रचना के मसले में ब्रजभाषा या खड़ी बोली को अपनाने के सवाल पर विवाद बना रहा, जिसका अन्त द्विवेदी के युग में जाकर हुआ।

द्विवेदी युग (1900 ई.-1920 ई.)

खड़ी बोली और हिंदी साहित्य के सौभाग्य से 1903 ई. में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन का भार सम्भाला। वे सरल और शुद्ध भाषा के प्रयोग के हिमायती थे। वे लेखकों की वर्तनी अथवा त्रुटियों का संशोधन स्वयं करते चलते थे। उन्होंने हिंदी के परिष्कार का बीड़ा उठाया और उसे बखूबी अन्जाम दिया। गद्य तो भारतेन्दु युग से ही सफलतापूर्वक खड़ी बोली में लिखा जा रहा था, अब पद्य की व्यावहारिक भाषा भी एकमात्र खड़ी बोली प्रतिष्ठित होनी लगी। इस प्रकार ब्रजभाषा, जिसके साथ में 'भाषा' शब्द जुड़ा हुआ

है, अपने क्षेत्र में सीमित हो गई अर्थात् 'बोली' बन गई। इसके मुकाबले में खड़ी बोली, जिसके साथ 'बोली' शब्द लगा है, 'भाषा बन गई' और इसका सही नाम हिंदी हो गया। अब खड़ी बोली दिल्ली के आसपास की मेरठख्रजनपदीय बोली नहीं रह गई, अपितु यह समस्त उत्तरी भारत के साहित्य का माध्यम बन गई। द्विवेदी युग में साहित्य रचना की विविध विधाएँ विकसित हुई।। महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्याम सुन्दर दास, पद्म सिंह शर्मा, माधव प्रसाद मिश्र, पूर्णसिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि के अवदान विशेषत: उल्लेखनीय हैं।

इसी दौरान वर्ष 1918 में इन्दौर में गांधी जी की अध्यक्षता में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' आयोजित हुआ और उसी में पारित एक प्रस्ताव के द्वारा हिन्दी राष्ट्रभाषा मानी गयी। इस प्रस्ताव के स्वीकृत होने के बाद दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिये दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की भी स्थापना हुई जिसका मुख्यालय मद्रास में था।

छायावाद युग (1920 ई.1936 ई. एवं उसके बाद)

साहित्यिक खड़ी बोली के विकास में छायावाद युग का योगदान काफी महत्त्वपूर्ण है। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा और राम कुमार आदि ने महती योगदान किया। इनकी रचनाओं को देखते हुए यह कोई नहीं कह सकता कि खड़ी बोली सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने में ब्रजभाषा से कम समर्थ है। हिंदी में अनेक भाषायी गुणों का समावेश हुआ। अभिव्यजंना की विविधता, बिंबों की लाक्षणिकता, रसात्मक लालित्य छायावाद युग की भाषा की अन्यतम विशेषताएँ हैं। हिंदी काव्य में छायावाद युग के बाद प्रगतिवाद युग (1936 ई.ख1946 ई.) प्रयोगवाद युग (1943) आदि आए। इस दौर में खड़ी बोली का काव्य भाषा के रूप में उत्तरोत्तर विकास होता गया।

पद्य के ही नहीं, गद्य के सन्दर्भ में भी छायावाद युग साहित्यिक खड़ी बोली के विकास का स्वर्ण युग था। कथा साहित्य (उपन्यास व कहानी) में प्रेमचंद, नाटक में जयशंकर प्रसाद, आलोचना में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जो भाषाख्रशैलियाँ और मर्यादाएँ स्थापित कीं, उनका अनुसरण आज भी किया जा रहा है। गद्य साहित्य के क्षेत्र में इनके महत्त्व का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि गद्य,साहित्य के विभिन्न विधाओं के इतिहास में कालों का नामकरण इनके नाम को केन्द्र में रखकर ही किया गया है। जैसे उपन्यास के इतिहास में प्रेमचंद–पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रेमचंदोत्तर युगय नाटक के इतिहास में

प्रसाद–पूर्व युग, प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युगय आलोचना के इतिहास में शुक्ल–पूर्व युग, शुक्ल युग, शुक्लोत्तर युग।

खड़ी बोली ही क्यों

वास्तव में 'खड़ीबोली' में प्रयुक्त 'खड़ी' शब्द गुण्बोधक विशेषण है और किसी भाषा के नामाकरण में गुण–अवगुण–प्रधान दृष्टिकोण अधिकांशरू अन्य भाषा–सापेक्ष्य होती है। अपभ्रंश और उर्दू आदि इसी श्रेणी के नाम हैं, अतएव 'खड़ी' शब्द अन्य भाषा सापेक्ष्य अवश्य है, किंतु इसका मूल खड़ी है अथवा खरी? और इसका प्रथम मूल अर्थ क्या है? इसके लिए शब्द के इतिहास की खोज आवश्यक है। बोली के अर्थ में इस नाम का उल्लेख हमें मध्यकाल में कहीं नहीं मिलता है। निश्र्वित रूप से इस शब्द का प्रयोग 19वीं शती के प्रथम दशाब्द में लल्लूजी लाल ने 2 बार, सदल मिश्र ने 2 बार, गिलक्राइस्ट ने 6 बार किया है।

लल्लूलाल जी और सदल मिश्र ने 'प्रेमसागर' तथा 'नासिकेतोपाख्यान' और 'रामचरित्र' नागरी लिपी में लिखा था। इन ग्रंथों में खड़ी बोली ही शब्द मिलता है, जिसका उच्चारण निश्चय ही खड़ी रहा होगा। इस प्रकार हिंदू लेखकों में खड़ीबोली शब्द ही प्रचलित रहा होगा, किंतु रोमनलिपि में 'प्रेमसागर' के मुखपृष्ठ पर खरी (kharee) ही मुद्रित है। रोमनलिपि में हिंदी के ड़ या डः को त या त से प्रकट करते हैं। इसी से हिंदी 'खड़ी' को खरी लिखा गया है। सम्भवतः विदेशी अंग्रेजों में 'खरी' शब्द ही अधिक प्रचलित हुआ। आज का सामान्य अंग्रेज 'खड़ी' शब्द का उच्चारण खरी के आसपास ही करेगा।

भारतीय ध्वनि विकास में भी र और ड़ ध्वनि में परस्पर विनिमय होता रहा है। सम्भवतः उच्चारण की दृष्टि से 'खड़ी' और 'खरी' उस समय बहुत ही निकट के शब्द थे। इस शब्द के वास्तविक अर्थ ज्ञान के लिए हमें लल्लूलाल जी, सदल मिश्र और गिलक्राइस्ट के उद्धरणों पर पुनः गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए। इन उद्धरणों से किसी भी प्रकार यह सिद्ध नहीं होता कि ब्रजभाषा की अपेक्षा अधिक 'कर्कश', 'कटु' होने के कारण इस बोली को यह नाम दिया गया। यदि उन्नीसवीं शती से बहुत पूर्व ही ब्रजभाषा के विरोध में यह नाम प्रचलित रहा होता तो स्टैण्डर्ड उर्दू, हिंदी, हिंदुस्तानी सबके लिए यह शब्द प्रयुक्त होता, क्योंकि भाषावैज्ञानिक दृष्टि से तीनों की मूलाधार बोली यही है और 'प्रेमसागर' तथा 'बागो बहार' दोनों को खड़ी बोली का ग्रंथ कहा जाता है, किंतु

ऐसा कहीं भी नहीं कहा गया। स्वयं लल्लूलाल जी ने 'लाल चंद्रिका' की भूमिका में अपने ग्रंथों की भाषा के तीन भेद किये हैं-

रेख्ता की बोली (उर्दू)

यदि खड़ी बोली को ब्रजभाषा सापेक्ष्य समझते तो लल्लूलाल जी अपने ग्रंथों की भाषा के दो ही भाग करते। वास्तव में खड़ी बोली के लिए कर्कश, कटु आदि अर्थ भारतेंदु युग की देन है, जबकि हिंदी कविता के लिए ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में प्रतियोगिता हो रही थी। सम्भवत: ब्रजभाषा पक्षवालों ने उसी युग में 'खडी बोली' का इस प्रकार अर्थ किया होगा। बेली महोदय के अनुसार 'खड़ी' ही मूल शब्द है, 'खरी' नहीं, जो खड़ा का स्त्रीलिंग रूप है। 'खड़ी' शब्द का अर्थ है 'उठी' और जब यह शब्द किसी भाषा के लिए प्रयुक्त होता होगा, तो तब इसका अर्थ 'प्रचलित' रहा होगा। इस प्रकार इसके अनुसार 'खड़ी' का अर्थ है 'परिपक्व', 'प्रचलित' या सुस्थिर। जयशंकर प्रसाद ने अपनी काव्य भाषा में खड़ी बोली का व्यापक रूप से प्रयोग किया है।

चंद्रबली पाण्डे ने अपने लेख 'खडी बोली की निरुक्ति' में बोली ले परिपक्व, प्रचलित अर्थ का खंडन करते हुए यह प्रतिपादन करने का प्रयत्न किया है कि खड़ी बोली सदल मिश्र की निजी या उनके यहाँ की प्रचलित बोली नहीं है। किंतु उनका खंडन मान्य नहीं, क्योंकि इस बोली का प्रचलन हिंदवी रूप में अंत:प्रांतीय व्यवहार के लिए बहुत पहले से था, अन्यथा सिंध, गुजरात के स्वामी प्राणनाथ (कुलजम स्वरूप) और लालदास (वीतक), पटियाला के रामप्रसाद निरंजनी (योगवाशिष्ठ), राजस्थान के दौलतराम (पद्मपुराण) और बिहार के सदल मिश्र इस बोली में रचना नहीं कर सकते। अतएव 'खड़ी' शब्द का अर्थ परिपक्व, प्रचलित मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। साथ ही इस बोली को 'खड़ी' (स्टैण्डर्ड केवल वाचार्थ लेकर) इसलिए मानना कि इसकी तुलना में उत्तर प्रदेश की 'ब्रजभाषा' आदि अन्य बोलियाँ 'पड़ी' बोलियाँ थीं, भी न्यायसंगत नहीं है।

किंतु बेली का अर्थ भी पूर्ण नहीं है। खड़ी शब्द का अर्थ केवल 'स्टैण्डर्ड', 'करेण्ट' अर्थ लेने से उर्दू से उसका स्पष्ट अलगाव सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि हिंदी सामान्य अर्थ की उर्दू शैली दिल्ली, आगरा में भली भाँति प्रचलित और सुस्थिर थी, किंतु उर्दू का झुकाव 'यामिनी' भाषा अर्थात् फारसी और अरबी की ओर अधिक था, अतएव मूल रूप से हिंदी या हिंदुस्तानी होने

पर भी गिलक्राइस्ट के पूर्व हेलहेडने इस हिंदुस्तानी को 'मिश्रित हिंदुस्तानी' कहा था, जब कि उसके अनुसार हिंदुस्तानी की हिंदवी शैली शुद्ध हिंदुस्तानी थी अथवा शुद्ध हिन्दी थी। 'प्रेमसागर' के प्रथम तीन संस्करणों के मुखपृष्ठ पर मुद्रित चनतम भ्पदकमम संदहनंहम वत ज्ञींतमम ठवसमम (1805 ई.), पुनः इसके संस्करण में Hinduwee (1811 ई.) और तीसरे संस्करण में भ्पदकमम(1842 ई.) शब्द इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं।

सर्वप्रथम प्रयोग

खड़ी बोली नाम सर्वप्रथम हिंदी या हिंदुस्तानी की उस शैली के लिए दिया गया जो उर्दू की अपेक्षा अधिक शुद्ध हिंदी (भारतीय) थी और जिसका प्रयोग संस्कृत परम्परा अथवा भारतीय परम्परा से सम्बंधित लोग अधिक करते थे। अधिकांशतः वह नागरीलिपि में लिखी जाती थी। 1805 ई. से हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू शब्द गिलक्राइस्टके अनुसार समानार्थक थे, अतएव इनसे अलगाव सिद्ध करने के लिए 'शुद्ध' (चनतम) विशेषण जोड़ने की आवश्यकता पड़ी तथा खड़ीबोली नाम सार्थक हुआ। इस प्रकार खड़ी बोली का वास्तविक अर्थ होगा शुद्ध, परिष्कृत या परिनिष्ठित प्रचलित भाषा। उर्दू भी दिल्ली आगरा की भाषा थी, किंतु वह यामिनी मिश्रित थी, अतएव वह दिल्ली आगरा की खड़ी और प्रचलित बोली नहीं थी। खड़ी बोली शब्द का अर्थ 1823 ई. के बाद हिंदी हुआ। यही करण है कि 'प्रेमसागर' के 1842 ई. के संस्करण में हिंदी शब्द ही मुखपृष्ठ पर मुद्रित है।

खड़ी बोली शब्द का प्रयोग आरम्भ में उसी भाषा शैली के लिए हुआ, जिसे 1823 ई. के बाद 'हिंदी' कहा गया। किंतु जब प्राचीन या प्रचलित शब्द ने 'खड़ी बोली' का स्थान ले लिया तो खड़ी बोली शब्द उस शैली के लिए बहुत कम प्रयुक्त हुआ, केवल साहित्यिक संदर्भ में कभी कभी प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार जब यह मत प्रसिद्ध हो गया कि हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी की मूलाधार बोली ब्रजभाषा नहीं वरन् दिल्ली और मेरठ की जनपदीय बोली है, तब उस बोली का अन्य उपयुक्त नाम प्रचलित ना होने के कारण उसे 'खड़ी बोली' ही कहा जाने लगा। इस प्रकार खड़ी बोली का प्रस्तुत भाषाशास्त्रीय प्रयोग विकसित हुआ। प्राचेन कुरु जनपद से सम्बंध जोड़कर कुछ लोग अब इसे 'कौरवी बोली' भी कहने लगे हैं, किंतु जब तक पूर्णरूप से यह सिद्ध ना हो जाए कि इस बोली का विकास उस जनपद में प्रचलित अपभ्रंश से ही हुआ है तब तक इसे कौरवी कहना वैज्ञानिक दृष्टि से युक्तियुक्त नहीं।

खड़ी बोली बहुल क्षेत्र

खड़ी बोली निम्न लिखित स्थानों के ग्रामीण क्षेत्रों में बोली जाती है– मेरठ, बिजनौर, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून के मैदानी भाग, अम्बाला, कलसिया और पटियाला के पूर्वी भाग, रामपुर और मुरादाबाद। बाँगरू, जाटकी या हरियाणवी एक प्रकार से पंजाबी और राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली ही हैं, जो दिल्ली, करनाल, रोहतक, हिसार और पटियाला, नाभा, झींद के ग्रामीण क्षेत्रों में बोली जाती है। खड़ी बोली क्षेत्र के पूर्व में ब्रजभाषा, दक्षिण पूर्व में मेवाती, दक्षिण पश्चिम में पश्चिमी राजस्थानी, पश्चिम में पूर्वी पंजाबी और उत्तर में पहाड़ी बोलियों का क्षेत्र है। बोली के प्रधानतः दो रूप मिलते हैं–

पूर्वी या पूर्वी खड़ी बोली

साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली के आदि प्रयोग 'गोरखवाणी' तथा बाबा फरीद शररगंज की बानियों में मिलते हैं। मुसलमानों ने इस बोली को अपनाकर इसे अंतःप्रांतीय रूप दिया। निर्गुण संतों ने भी इसके प्रचार में सहयोग दिया। धीरे धीरे इस बोली में व्याकरण के क्षेत्र में तथा शब्द कोश में अन्य भाषाओं का मिश्रण होने लगा, जिससे हिंदी (आधुनिक अर्थ), उर्दू और हिंदुस्तानी का विकास हुआ। आज इस बोली के कुछ लोकगीत भी मिलते हैं, जो प्रकाशित भी हुए हैं।

8

ब्रजभाषा एवं बोली का विकास

ब्रजभाषा मूलत: ब्रज क्षेत्र की बोली है। श्रीमद्भागवत के रचनाकाल में 'व्रज' शब्द क्षेत्रवाची हो गया था। विक्रम की 13वीं शताब्दी से लेकर 20वीं शताब्दी तक भारत के मध्य देश की साहित्यिक भाषा रहने के कारण ब्रज की इस जनपदीय बोली ने अपने उत्थान एवं विकास के साथ आदरार्थ 'भाषा' नाम प्राप्त किया और 'ब्रजबोली' नाम से नहीं, अपितु 'ब्रजभाषा' नाम से विख्यात हुई। अपने विशुद्ध रूप में यह आज भी भरतपुर, मथुरा, आगरा, हिण्डौन सिटी, धौलपुर, मैनपुरी, एटा और अलीगढ़ जिलों में बोली जाती है। इसे हम 'केंद्रीय ब्रजभाषा' भी कह सकते हैं।

प्रारम्भ में ब्रजभाषा में ही काव्य रचना हुई। भक्तिकाल के कवियों ने अपनी रचनाएँ ब्रजभाषा में ही लिखी हैं, जिनमें सूरदास, रहीम, रसखान, बिहारी लाल, केशव, घनानन्द आदि कवि प्रमुख हैं। हिन्दी फिल्मों और फिल्मी गीतों में भी ब्रजभाषा के शब्दों का बहुत प्रयोग होता है। आधुनिक ब्रजभाषा 1 करोड़ 23 लाख जनता के द्वारा बोली जाती है और लगभग 38,000 वर्गमील के क्षेत्र में फैली हुई है। आदर के भाव से कहें तो वस्तुत: बृज भाषा का प्रसाद है हिन्दी –साहित्य आज सम्पूर्ण विश्व में भारत की जुबान कही जाने वाली राष्ट्र भाषा हिंदी के मूल में यद्यपि संस्कृत, बंग्ला, फारसी, अंग्रेजी एवं प्रांतीय बोली भाषाओं का समामेलन है, तथापि ब्रज का काव्य और वैष्णव वार्ताऐं वह अविभावक हैं जिन्होंने संस्कृत के धरातल पर भारत को प्रतिनिधी भाषा– हिंदी प्रदान की है।

यद्यपि भारत की सनातन भाषा संस्कृत है तथापि जव विदेशियों के आक्रमण और लूट विध्वन्सों ने वेदों की वाणी को मंदिरों या कतिपय घरों में सीमित कर दीया था, तबा भगवान श्री कृष्ण के मुख से कही गयी मैया यशोदा की बृज वोली सम्पूर्ण भारत में पद-कीर्तनों के रूप में गायी जाने लगी और कालान्तर में भारत की राष्ट्र भाषा हिंदी के रूप में परिणित हो गयी।

संस्कृति को संक्रमण से सुरक्षित करते हुए पुष्टिमार्गिय अष्ट सखाओं के संगीत और साहित्य संगत गीतों ने पुराण और वेदों से भी आगे बढ़कर पंचम वेद का स्थान धारण कीया और गो. आचार्य श्री गोकुल नाथ जी के ग्रन्थ 84 ध्252 वैष्णवों की वार्ता वह प्रथम लेख माने गये जिनके कि दिग्दर्शन से 19 वीं शताब्दी में पहली वार हिंदी में गद्य अर्थात च्तवेम लेख लिखे गये।

हिंदी साहित्य के इतिहासकार आचार्य रामचंन्द्र शुक्ल (सन् 1844 - 1941) ने हिन्दी भाषा का शोध पूर्ण इतिहास लिखा है और स्पष्टतः कहा है कि ब्रज भाषा हिन्दी साहित्य का प्राण है।

आपने हिंदी के इतिहास को चार युगों में विभक्त कीया है–

1. वीरगाथा काल (1050 ई से 1375 ई)
2. भक्तिकाल (1375 से 1700 ई.)
3. रीतिकाल (1700 से 1900 ई.)
4. आधुनिक काल (1900 से अब तक)।

जोशीली और उत्साह पूरक कविताओं का युग वीरगाथा काल कहा जाता है जिसमेंकि राजा पृथवी राज चौहान और मुहम्मद गौरी की 17 लड़ाइयाँ, राणा प्रताप और शिवाजी की वीरगाथाएँ एवं राज कवियों द्वारा जोशीले काव्यों का लेखन भारत वर्ष की चारों दिशाओं में मथुरा की बोली - ब्रज भाषा में गाया गया है।

युद्ध, लूट और कूट की नीतियों के कठिन काल में परिवर्तन के साथ शान्ति और सद्भावना का संदेश लेकर चारों ओर भक्ति काल में संतों का उदय हूीआ जिसमें पंजाब के गुरु नानक, दिल्ली में अमीरखुसरो, उ.प्र. में तुलसी दास, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, महाराष्ट्र में संत तुकाराम, गुजरात में नरसी, राजस्थान में मीरा, संत कबीर, जायसी, रसखान आदि जो ब्रज मूल के तो नहीं थे, लेकिन आपकी रचनाएँ प्रमुखतः ब्रज भाषा से ओत-प्रोत हैं।

यहाँ ब्रज में जो कि दिल्ली और आगरा के मध्य परम तीर्थ स्थान था, मानो स्वयं भगवान ने मानवता की रक्षा केलिए अवतार लेकर स्वामी श्री हरिदास,

श्रीमद वल्लभाचार्य, सूरदास, नंद दास, चौवे छीतस्वामी आदि के रूप में साहित्य और संगीत की जो अविरल धारा प्रवाहित की उसमें धर्म और जाति का भेद भूलकर सम्पूर्ण भारत आज भी अवगाहन करता है।

कालान्तर में राजाओं की रिआसतें पुनस्थापित हुई जिसमें श्रंगार एवं प्रेम प्रधान कविताओं का युग प्रारंभ हुआ और बृज भाषा में छन्द अलंकारों के विशारदीय प्रयोग हुए जिसे रीति काल कहा जाता है। उल्लेखनीय है कि रीति कालीन छंन्दों में चौबे श्री विहारी लाल महति कवियों का कृतित्त्व शीर्ष स्तरिय माना जाता है, जिनके वारे में प्रसिद्ध कहावत है कि – सतसैया के दोहरे, ज्यौं नाविक के तीर। देखत में सीधे लगें, घाव करें गम्भीर।।

अभीतक पध् (poetry) का युग था लेकिन अंग्रेजी की तरह अखवार या पत्रिका लिखने के लिए गध् (चतवेम) को ढूँढा जा रहा था, स्वतंत्रता संग्रामी चाहते थे कि अनेक भाषाओं के भारत में किसी ऐसी वोली को चुना जाय जो समझने में सरल और सभी को सर्वमान्य हो। अतएव क्रान्तिकारी वीर सावरकर और महात्मा गांधी आदि की अभिप्रेरणा से वनारस के सेठ श्री भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने साहित्यकारों के साथ शोध करके – बृज भाषा के ग्रन्थ "चैरासी वैष्णवों की वार्ता" जोकि काव्य या पदों में ना होकर गध् अर्थात चतवेम में लिखा गया है को निदेशन माना तथा फारसी और संस्कृत के मिश्रण से खड़ी वोली में हिन्दी साहित्य का आविर्भाव कीया।

अब यहाँ से प्रारंभ होता है आधुनिक काल जो आज विश्व में हिंदी को हिंद की पहिचान देता है।

स्वयं श्री कृष्ण मुख से गायी गई और श्री यमुना जी के निकट विराजमान इस बृज की भाषा को साष्टांग प्रणाम है।

भौगोलिक विस्तार

अपने विशुद्ध रूप में ब्रजभाषा आज भी भरतपुर, आगरा, धौलपुर, हिण्डौन सिटी, मथुरा, मैनपुरी, एटा और अलीगढ़ जिलों में बोली जाती है। इसे हम 'केंद्रीय ब्रजभाषा' के नाम से भी पुकार सकते हैं। केंद्रीय ब्रजभाषा क्षेत्र के उत्तर पश्चिम की ओर बुलंदशहर जिले की उत्तरी पट्टी से इसमें खड़ी बोली की लटक आने लगती है। उत्तरी-पूर्वी जिलों अर्थात् बदायूँ और एटा जिलों में इसपर कन्नौजी का प्रभाव प्रारंभ हो जाता है। डॉ. धीरेंद्र वर्मा, 'कन्नौजी' को ब्रजभाषा का ही एक रूप मानते हैं। दक्षिण की ओर ग्वालियर में पहुँचकर इसमें बुंदेली

की झलक आने लगती है। पश्चिम की ओर गुड़गाँव तथा भरतपुर का क्षेत्र राजस्थानी से प्रभावित है।

ब्रज भाषा आज के समय में प्राथमिक तौर पर एक ग्रामीण भाषा है, जो कि मथुरा-भरतपुर केन्द्रित ब्रज क्षेत्र में बोली जाती है। यह मध्य दोआब के इन जिलों की प्रधान भाषा है–

1. भरतपुर
2. मथुरा
3. आगरा
4. फिरोजाबाद
5. मैनपुरी
6. एटा
7. हाथरस
8. बुलंदशहर
9. गौतम बुद्ध नगर
10. अलीगढ़
11. कासगंज

गंगा के पार इसका प्रचार बदायूँ, बरेली होते हुए नैनीताल की तराई, उत्तराखंड के उधम सिंह नगर जिले तक चला गया है। उत्तर प्रदेश के अलावा इस भाषा का प्रचार राजस्थान के इन जिलों में भी है–

1. भरतपुर
2. धौलपुर
3. हिण्डौन सिटी

और करौली जिले के कुछ भाग (हिण्डौन सिटी)। जिसके पश्चिम से यह राजस्थानी की उप-भाषाओं में जाकर मिल जाती है।

हरियाणा में यह दिल्ली के दक्षिणी इलाकों में बोली जाती है- फरीदाबाद जिला और गुड़गाँव और मेवात जिलों के पूर्वी भाग।

विकास यात्रा

इसका विकास मुख्यत: पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उससे लगते राजस्थान व मध्य प्रदेश में हुआ। मथुरा, भरतपुर, हिण्डौन सिटी, धौलपुर, आगरा, ग्वालियर आदि इलाकों में आज भी यह मुख्य संवाद की भाषा है। इस एक पूरे इलाके

में बृजभाषा या तो मूल रूप में या हल्के से परिवर्तन के साथ विद्यमान है। इसीलिये इस इलाके के एक बड़े भाग को बृजांचल या बृजभूमि भी कहा जाता है।

भारतीय आर्यभाषाओं की परंपरा में विकसित होनेवाली 'ब्रजभाषा' शौरसेनी अपभ्रंश की कोख से जन्मी है। जब से गोकुल वल्लभ संप्रदाय का केंद्र बना, ब्रजभाषा में कृष्ण विषयक साहित्य लिखा जाने लगा। इसी के प्रभाव से ब्रज की बोली साहित्यिक भाषा बन गई। भक्तिकाल के प्रसिद्ध महाकवि महात्मा सूरदास से लेकर आधुनिक काल के विख्यात कवि श्री वियोगी हरि तक ब्रजभाषा में प्रबंध काव्य तथा मुक्तक काव्य समय समय पर रचे जाते रहे।

ब्रजभाषा की बोलियाँ

ब्रजभाषा एक साहित्यिक एवं स्वतंत्र भाषा है और इसकी अपनी कई बोलियाँ हैं।

साहित्य यात्रा

बोलचाल की भाषा और साहित्यिक ब्रजभाषा में अन्तर करने की आवश्यकता दो कारणों से पड़ती है, बोलचाल की ब्रजभाषा ब्रज के भौगोलिक क्षेत्र के बाहर उपयोग में नहीं लाई जाती, जबकि साहित्यिक ब्रजभाषा का उपयोग ब्रजक्षेत्र के बाहर के कवियों ने भी उसी कुशलता के साथ किया है, जिस कुशलता के साथ ब्रजक्षेत्र के कवियों ने किया है। दूसरा अन्तर यह है कि बोलचाल की ब्रज और साहित्यिक ब्रज के बीच में एक मानक ब्रज है, जिसमें ब्रजभाषा के उपबोलियों के सभी रूप स्वीकार्य नहीं है, दूसरे शब्दों में ब्रजक्षेत्र के विभिन्न रूप-विकल्पों में से कुछ ही विकल्प मानक रूप में स्वीकृत हैं और इस मानक रूप को ब्रज के किसी क्षेत्र विशेष से पूर्ण रूप से जोड़ना सम्भव नहीं है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि ब्रज प्रदेश के मध्यवर्ती क्षेत्र की भाषा मानक ब्रज का आधार बनती है।

जिस तरह मेरठ के आस-पास बोली जाने वाली बोली (जिसे कौरवी नाम दिया गया है) मानक हिन्दी से भिन्न है, किन्तु उसका व्याकरणिक ढाँचा मानक हिन्दी का आधार है, उसी तरह मध्यवर्ती ब्रज का ढाँचा मानक ब्रज का आधार है। मानक ब्रज और साहित्यिक ब्रज के बीच भी उसी प्रकार का अन्तर है, यह भेद वाक्य-विन्यास, पद-विन्यास और उक्ति-भंगिमा के स्तरों पर भी रेखांकित

होता है। यह तो भाषा विज्ञान का माना हुआ सिद्धान्त है कि साहित्यिक भाषा और सामान्य भाषा में अन्तर प्रयोजनवश आता है और चूँकि साहित्यिक भाषा अपने सन्देश से कम महत्व नहीं रखती और उसमें बार-बार दुहराये जाने की, नया अर्थ उदभावित करने की क्षमता अपेक्षित होती है, उसमें मानक भाषा की यान्त्रिकता अपने आप टूट जाती है, उसमें एक-दिशीयता के स्थान पर बहुदिशीयता आ जाती है और शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास, पद-विन्यास सब इस प्रयोजन को चरितार्थ करने के लिए कुछ न कुछ बदल जाते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि व्याकरण बदल जाता है या शब्द कोश बदल जाता है, केवल व्याकरण और शब्द के कार्य बदल जाते हैं, क्योंकि दोनों अतिरिक्त सोद्देश्यता से विद्युत चालित कर दिये जाते हैं।

ब्रजभाषा का प्रयोग

साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग ब्रज के अतिरिक्त बोली-क्षेत्रों में होने के कारण उन-उन क्षेत्रों की बोलियों के रंग भी जुड़े हैं। आज की साहित्यिक हिन्दी में भी इस प्रकार का प्रभाव दिखाई पड़ता है। वह एक किसी एक मुहावरे एक चाल में बँधी हुई भाषा नहीं है, उसमें क्षेत्रीय रंगतों को अपनाने की और उन्हें अपने रंग में डालने की क्षमता है। ब्रजभाषा में भी भोजपुरी, अवधी, बुन्देली, पंजाबी, पहाड़ी, राजस्थानी प्रभावों की झाँई पड़ी और उससे ब्रजभाषा में दीप्ति और अर्थवत्ता आई। कुछ शब्दकोश भी बढ़ा, मुहावरे तो निश्चित रूप से नये-नये उसमें सन्निविष्ट हुए। बुन्देलखण्ड के कवियों में पद्माकर, ठाकुर बोधा और बख्शी हंसराज का प्रभाव उल्लेखनीय है।

भोजपुरी क्षेत्र के कवियों में इतने बड़े नाम तो नहीं लिए जा सकते, लेकिन रंगपाल, छुटकन जैसे कवियों के द्वारा रचे गए फागों में भोजपुरी से भावित ब्रजभाषा की छटा एक अलग ही मिलती है। ग्वाल कवि, गुरु गोविन्दसिंह जैसे पंजाब क्षेत्र के कवियों ने पंजाबी प्रभाव दिया है। दादू, सुन्दरदास और रज्जब जैसे सन्तकवियों की भाषा में (जो प्रमुख रूप से ब्रजभाषा ही है) राजस्थानी का पुट गहरा है।

रसों का प्रयोग

रचना बाहुल्य के आधार पर प्रायः यह मान लिया जाता है कि, ब्रजभाषा काव्य का विषय रूप-वर्णन, शोभा-वर्णन, शृंगारी चेष्टा-वर्णन, शृंगारी

हाव-भाव-वर्णन, प्रकृति के शृंगारोद्दीपक रूप का वर्णन विविध प्रकार की कामिनियों की विलासचर्या का वर्णन, ललित कला-विनोदों का वर्णन और नागर-नागरियों के पहिराव, सजाव, सिंगार का वर्णन तक ही सीमित है। इसमें साधारण मनुष्य के दु:ख-दर्द या उनके जीवन-संघर्ष का चित्र नहीं है, न कुछ अपवादों को छोड़कर जीवन में उत्साह वृद्धि जगाने के लिए विशेष चाव है। इसमें जो आलौकिक, आध्यात्मिक भाव है भी, वह भी या तो अलक्षित और सुकुमार भावों की परिधि के भीतर ही समाये हुए हैं या मनुष्य के दैन्य या उदास भाव के अतिरेक से ग्रस्त हैं।

ब्रजभाषा काव्य का संसार इस प्रकार बड़ा ही संकुचित संसार है। पर जब हम ब्यौरे में जाते हैं और भक्ति-कालीन काव्य की जमीन का सर्वेक्षण करते हैं और उत्तर मध्यकाल की नीति-प्रधान रचनाओं में या आक्षेप प्रधान रचनाओं का पर्यवेक्षण करते हैं, तो यह संसार बहुत विस्तुत दिखाई पड़ता है। इसमें जिन्हें दरबारी कवि कहकर छोटा मानते हैं, उनकी कविता में गाँव के बड़े अनूठे चित्र हैं और लोक-व्यवहार के तो तरह-तरह के आयाम मिलते हैं। ये आयाम शृंगारी ही नहीं हैं अदभुत, हास्य, शान्त रसों के सैंकड़ों उदाहरण उस उत्तर मध्यकाल में भी मिलते हैं, जिसे शृंगार-काल कहा जाता है। यही नहीं, पद्माकर जैसे कवि की रचना में सूक्ष्म रूप में अंग्रेजों के आने के खतरे की चिन्ता भी मिलती है। भूषण की बात छोड़ भी दे, तो भी अनेक अनाम कवियों के भीतर धरती का लगाव, जो जन-जन के अराध्य आलंबनों से जुड़े हुए हैं, बहुत सरल ढंग से अंकित मिलता है। देव का एक प्रसिद्ध छन्द है, जिसमें बारात के आकर विदा होने में और उसके बाद की उदासी का चित्र मिलता है।

काम परयौ दुलही अरु दुलह, चाकर यार ते द्वार ही छूटे।
माया के बाजने बाजि गये परभात ही भात खवा उठि बूटे।
आतिसबाजी गई छिन में छूटि देकि अजौ उठिके अँखि फूटे।
'देव' दिखैयनु दाग बने रहे, बाग बने ते बरोठहिं लूटे।

विद्वानों व कवियों द्वारा प्रयोग

यह बात अनदेखी करने योग्य नहीं है कि, ब्रजभाषा के कवियों ने सामान्य गृहस्थ जीवन को ही केन्द्र में रखा है, चाहे वे कवि संत हो, दरबारी हो, राजा हो या फकीर हो। रहीम के निम्नलिखित शब्द-चित्रों में श्रमजीवी की सहधर्मिता अंकित है-

लइके सुघर खुरपिया पिय के साथ।
छइबे एक छतरिया बरसत पाथ॥

ब्रजभाषा साहित्य सर्वेक्षण

साहित्यिक ब्रजभाषा कोश तैयार करने के पीछे उद्देश्य यह नहीं है कि, साहित्यिक ब्रजभाषा को साहित्यिक हिन्दी से अलग करके देखा जाए, बल्कि उद्देश्य यह है कि, इस साहित्यिक ब्रजभाषा को पढ़ने-पढ़ाने में जो कठिनाई हो रही है, विशेष रूप से उन प्रान्तों में, जहाँ क्षेत्रीय भाषाएँ प्रथम भाषा के रूप में स्वीकृत हैं। उसके मार्ग दर्शन के लिए एक ऐसा कोश होना चाहिए, जो ब्रजभाषा साहित्य के अध्ययन-अध्यापन, ठीक रूप से कहें हिन्दी साहित्य के समूचे अध्ययन-अध्यापन को एक आवश्यक अवलम्ब दे सके। साहित्यिक ब्रजभाषा के ऐतिहासिक स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है कि ब्रजभाषा साहित्य का सर्वेक्षण इस रूप में कराया जाए कि इस साहित्य की प्रकृति सार्वदेशिक सार्वभौमिक एकात्मता लाने वाली रही है।

ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग

जब हम ब्रजभाषा साहित्य कहते हैं तो, उसमें गद्य का समावेश नहीं करते। इसका कारण यह नहीं है कि ब्रजभाषा में गद्य और साहित्यिक गद्य है ही नहीं। वैष्णवों के वार्ता साहित्य में, भक्ति ग्रन्थों के टीका साहित्य में तथा रीतकालीन ग्रन्थों के टीका साहित्य में ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग हुआ है, परन्तु गद्य का प्रसार दो ही स्थितियों में होता है, या तो वह शास्त्र हो या गद्यगन्धी हो, क्योंकि इन्हीं दोनों दिशाओं में उसमें पुनरावर्तमानता होती है। छापाखाने के आगमन के बाद गद्य का महत्व अपने आप बढ़ा, क्योंकि तब कंठगत करने की अपरिहार्यता नहीं रही। लल्लूलाल जी ने अपने प्रेमसागर में ब्रजभाषा से भावित ऐसे गद्य की रचना की और वह गद्य ही आधुनिक गद्य की भूमि बना, किन्तु ब्रजभाषा का स्थान उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से जो हिन्दी को मिला, उसमें गद्य की नयी भूमिका का महत्त्व तो था ही, सबसे बड़ा कारण था, अंग्रेजों के द्वारा उत्तर भारत में कचहरी भाषा के रूप में उर्दू को मान्यता देना।

काल विभाजन

ब्रजभाषा साहित्य के इतिहास को तीन चरणों में बाँटा जा सकता है। इसका उदयकाल जिसके ऊपर 'नागर' अपभ्रंश काव्य की छाप है। इसी कारण उसमें

दिखने वाले हिन्दी के मध्य देश में पैदा हुए अमीर खुसरो से लेकर महाराष्ट्र में पैदा हुए महानुभाव और ज्ञानेश्वर के साथी नामदेव हैं। दूसरी ओर पंजाब से लेकर बिहार तक के सन्त कवि हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रयोजनों से भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषा का व्यवहार करते हैं, परन्तु गेय प्रयोजन के लिए प्रायरू ब्रजभाषा का ही व्यवहार करते हैं। इनकी सूची बड़ी लम्बी है और पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के अधिकांश सन्त-कवि साहित्यिक ब्रजभाषा का ही प्रयोग करते हैं। मुख्य नाम ये हैं-कबीर, रैदास, धर्मदास और गुरु नानक, दादू दयाल और सत्रहवीं शताब्दी के सुन्दरदास, मलूकदास और अक्षरअनन्य हैं।

क्षेत्रीय भाषाओं के तत्त्व

यह मान लेना की प्रारम्भ के कवि भाषा के प्रति उदासीन थे और उनका ध्यान भाषा के सँवार पर नहीं था, सही नहीं है। कम से कम बहुत दूर तक नहीं ही सही है। उपदेश की भाषा या फटकार की भाषा में एक जानबूझकर बाजार-भाषा का रूप मिलता है, अनेक क्षेत्रीय भाषाओं के तत्त्व मिलते हैं, किन्तु जहाँ रागात्मक संवेदना तीव्र है, वहाँ भाषा परिनिष्ठित है और यह परिनिष्ठित भाषा ब्रज है। ऐसा लगता है, जैसे उस युग में भाषा के प्रयोग की कुछ रूढ़ियाँ उसी तरह से स्वीकृत हो चुकी थीं, जिस तरह संस्कृत के नाटकों में संस्कृत और विभिन्न प्राकृतों के संन्दर्भ में कुछ रूढ़ियाँ बन गई थी। इसीलिए एक ही कवि भिन्न-भिन्न भूमिकाओं में भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग करता है। अमीर खुसरो से ही यह बात दृष्टिगोचर होने लगती है। गेय पदों में चूँकि रागात्मकता का सन्निवेश अपरिहार्य है, इसलिए उनकी भाषा में तो ब्रजभाषा प्रायरू निरपवाद रूप में है।

जिन दोहों, सोरठों, झूलने, सवैयों और कवित्तों में कोरी उपदेशपरकता नहीं है, सुन्दर तरीके से कहने का भाव है या किसी लालित्य की अभिव्यंजना है या कोई गहरी संवेदना व्यक्त करने का भाव है, उनमें प्रायरू ब्रजभाषा का ही प्रयोग मिलेगा। इसके विपरीत युद्ध वर्णन में डिंगल या राजस्थानी भाषा का प्रयोग मिलेगा। कहीं-कहीं इस डिंगल में प्राचीन अपभ्रंश के भी अवशेष दिखाई देते हैं। जहाँ कहीं एक खघस किस्म का शहरीपन है, वहाँ पर खड़ी बोली का प्रयोग है और जहाँ सधुक्कड़ी ठाठ है, वहाँ पर मिश्रित भाषा का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार से प्रबन्ध योजना में अवधी भाषा का प्रयोग अधिकतर देखने को मिलता है। उसका कारण है कि अवधी ने जिस अपभ्रंश का उत्तराधिकार लिया

है, उस अपभ्रंश में प्रबन्ध काव्य बहुत लिये गए थे। स्वयंभू जैसे कवियों ने अनेक प्रबन्ध काव्य लिखे थे।

तदभव और तत्सम शब्दों का प्रयोग

द्वितीय चरण के ब्रजभाषा साहित्य के पाँच बिन्दु अत्यन्त संलक्ष्य रूप से दिखाई देते पड़ते हैं।

तदभव और तत्सम शब्दों का एक ऐसा सहज सन्तुलन मिलता है, जिसमें तत्सम शब्द भी ब्रजभाषा की प्रकृति में ढले दिखते हैं, अधिकतर तो वे अर्द्ध-तत्सम रूप में। 'प्रतीत' के लिए 'परतीति' जबकि इसके साथ-साथ तद्भव रूप 'पतियाबो' भी मिलता है, जैसे तत्सम प्रतिपादकों में नई नाम धातुएँ बनाकर 'अभिलाष' से 'अभिलाखत' या 'अनुराग' से 'अनुरागत'। इस अवधि में समानान्तर तत्सम और तद्भव शब्दों के अर्थक्षेत्र भी कुछ न कुछ स्पष्टतः व्यतिरेकी हो गए हैं। जब नख-शिख की बात करेंगे, तब 'नह' का प्रयोग नहीं करेंगे और जब दसों नह का प्रयोग करेंगे, तब 'नख' वहाँ प्रयुक्त नहीं होगा।

भाषा के प्रति असजगता

एक प्राचीन कविसमय के अभिप्राय की नई उदभावना की गई है कि, प्रभु के चरणों के नखों में सूर्य की ज्योति का प्रकाश है, वहाँ रात की कोई सम्भावना नहीं, वहाँ समस्त द्वन्द्वों की विश्रान्ति है। भक्ति के द्वारा जहाँ एक ओर सामान्य व्यक्ति की भाषा को असामान्य महत्त्व दिया गया और सामान्य भाषा का संगीतात्मक उपयोग न केवल भगवद भक्ति का साधन हुआ, वह भगवद भक्ति की सिद्धि भी बना। इस कारण से प्रत्येक भक्त गायक और पद रचनाकार होने लगा। दूसरी ओर जो भक्त कवि कुशल नहीं थे, वे भाषा के प्रति सजग नहीं रहे, वे सम्प्रेषण के प्रति उदासीन रहे, उनके मन में यह भ्रम रहा कि भाव मुख्य है, भाषा नहीं। वे यह समझ नहीं सकते थे कि भाव और भाषा का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनके अचेत कवि-कर्म की बहुलता का प्रभाव भाषा पर पड़ा, उसमें कुछ जड़ता आने लगी।

ब्रजभाषा की समृद्धता

रीतिकाल पुनर्मूल्यांकन की अपेक्षा रखता है। वह व्यक्तित्त्वों के आधार पर किया जाता रहा है। अथवा उन्नीसवीं शताब्दी की विक्टोरियन, खोखली नैतिकता

के मानदण्डों से किया जाता रहा है। यह सही है कि सूरदास या तुलसीदास की ऊँचाई का कवि या उनके व्यापक काव्य संसार जैसा संसार इस युग के कवियों में नहीं प्राप्त है, पर साधारण जन के कंठ में तुलसी, सूर, कबीर की ही तरह रहीम, रसखान, पद्माकर, ठाकुर, देव, बिहारीलाल ही नहीं बहुत अपेक्षाकृत कम विख्यात कवि भी चढ़े। उसका कारण उनकी कविता की lºznrk और सम्प्रेषणीयता ही थी।

इन कवियों से ब्रजभाषा समृद्ध हुई है, उसने एक ऐसे जीवन में प्रवेश किया है, जो सबका हो सकता है। यह उल्लेखनीय है कि इस युग के जो कवि राजदरबारों में हैं, वे भी केवल कसीदा या बधाई लिखकर सन्तोष नहीं पाते थे। वे अपना काव्य राजा को समर्पित कर दें, पर उस काव्य में राजा या राजदरबार का जीवन बहुत कम रहता था। वे प्रकृति के मुक्त वितान के कवि थे, सँकरी और अँधेरी गली के कवि नहीं थे। इसलिए इस युग के उत्कृष्ट काव्य में सेनापति जैसे कवि के स्वच्छ प्रकृति चित्रण मिलते हैं और विभिन्न व्यवसायों, विशेष करके कृषि व्यवसाय के मनोरम चित्र कहीं विम्ब के रूप में, कहीं वर्ण्य विषय के रूप में, कहीं सादृश्य के रूप में मिलते हैं। संस्कृत की मुक्तक काव्य परम्परा और संस्कृत की काव्यशिखा परम्परा का दाय इस काल में प्रसृत दिखता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उसके पूर्ववर्ती काल में उसकी छाप न हो, अपभ्रंश काव्य में वीर गाथाओं, वैष्णव पदावली साहित्य इन सबमें उसकी छाप है।

अतः इसको रीतिकाल का अभिलक्षण बताना उचित नहीं। रीतिकाल के कवियों में देश की चेतना न हो, ऐसी बात भी नहीं है। भूषण, लाल, सूदन, पद्माकर जैसे प्रसिद्ध कवियों के अतिरिक्त भी अनेक कवि हुए, जिनके काव्य में स्वदेश का अनुराग व्यक्त होता है और वह परम्परा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीधर पाठक और सत्य नारायण कविरत्न तक अक्षुण्ण चली आई है।

9

बुंदेली एवं बघेली बोलियाँ

बुंदेलखंड के निवासियों द्वारा बोली जाने वाली बोली बुंदेली है। यह कहना बहुत कठिन है कि बुंदेली कितनी पुरानी बोली हैं, लेकिन ठेठ बुंदेली के शब्द अनूठे हैं, जो सादियों से आज तक प्रयोग में आ रहे हैं। बुंदेलखंडी के ढेरों शब्दों के अर्थ बंग्ला तथा मैथिली बोलने वाले आसानी से बता सकते हैं। प्राचीन काल में बुंदेली में शासकीय पत्र व्यवहार, संदेश, बीजक, राजपत्र, मैत्री संधियों के अभिलेख प्रचुर मात्र में मिलते है। कहा तो यहघ् भी जाता है कि औरंगजेब और शिवाजी भी क्षेत्र के हिंदू राजाओं से बुंदेली में ही पत्र व्यवहार करते थे। ठेठ बुंदेली का शब्दकोश भी हिंदी से अलग है और माना जाता है कि वह संस्कृत पर आधारित नहीं हैं। एक-एक क्षण के लिए अलग-अलग शब्द हैं। गीतो में प्रकृति के वर्णन के लिए, अकेली संध्या के लिए बुंदेली में इक्कीस शब्द हैं। बुंदेली में वैविध्य है, इसमें बांदा का अक्खड़पन है और नरसिंहपुर की मधुरता भी है।

बुंदेली का इतिहास

वर्तमान बुंदेलखंड चेदि, दशार्ण एवं कारुष से जुड़ा था। यहां पर अनेक जनजातियाँ निवास करती थी। इनमें कोल, निषाद, पुलिंद, किराद, नाग, सभी की अपनी स्वतंत्र भाषाएं थी, जो विचारों अभिव्यक्तियों की माध्यम थीं। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में इस बोली का उल्लेख प्राप्त है, शबर, भील, चांडाल, सजर,

द्रविड़ोद्भवा, हीना वने वारणम् व विभाषा नाटकम् स्मृतम् से बनाफरी का अभिप्रेत है। संस्कृत भाषा के विद्रोहस्वरुप प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ। इनमें देशज शब्दों की बहुलता थी। हेमचंद्र सूरि ने पामरजनों में प्रचलित प्राकृत अपभ्रंश का व्याकरण दशवी शती में लिखा. मध्यदेशीय भाषा का विकास इस काल में हो रहा था। हेमचन्द्र के कोश में विंध्येली के अनेक शब्दों के निघंटु प्राप्त हैं।

बारहवीं सदी में दामोदर पंडित ने उक्ति व्यक्ति प्रकरण की रचना की। इसमें पुरानी अवधी तथा शौरसेनी ब्रज के अनेक शब्दों का उल्लेख मिलता है। इसी काल में अर्थात एक हजार ईस्वी में बुंदेली पूर्व अपभ्रंश के उदाहरण प्राप्त होते हैं। इसमें देशज शब्दों की बहुलता थी। पं. किशोरी लाल वाजपेयी, लिखित हिंदी शब्दानुशासन के अनुसार हिंदी एक स्वतंत्र भाषा है, उसकी प्रकृति संस्कृत तथा अपभ्रंश से भिन्न है। बुंदेली की माता प्राकृत शौरसेनी तथा पिता संस्कृत भाषा है। दोनों भाषाओं में जन्मने के उपरांत भी बुंदेली भाषा की अपनी चाल, अपनी प्रकृति तथा वाक्य विन्यास को अपनी मौलिक शैली है। हिंदी प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत के निकट है।

मध्यदेशीय भाषा का प्रभुत्व अविच्छन्न रूप से ईसा की प्रथम सहस्त्रब्दी के सारे काल में और इसके पूर्व कायम रहा। नाथ तथा नाग पंथों के सिद्धों ने जिस भाषा का प्रयोग किया, उसके स्वरुप अलग-अलग जनपदों में भिन्न-भिन्न थे। वह देशज प्रधान लोकभाषा थी। इसके पूर्व भी भवभूति उत्तर रामचरित के ग्रामीणजनों की भाषा विंध्येली प्राचीन बुंदेली ही थी। संभवत: चंदेल नरेश गंडदेव (सन् 940 से 999 ई.) तथा उसके उत्तराधिकारी विद्याधर (999 ई. से 1025 ई.) के काल में बुंदेली के प्रारंभिक रूप में महमूद गजनवी की प्रशंसा की कतिपय पंक्तियाँ लिखी गई। इसका विकास रासो काव्य धारा के माध्यम से हुआ। जगनिक आल्हाखंड तथा परमाल रासो प्रौढ़ भाषा की रचनाएं हैं। बुंदेली के आदि कवि के रूप में प्राप्त सामग्री के आधार पर जगनिक एवं विष्णुदास सर्वमान्य हैं, जो बुंदेली की समस्त विशेषताओं से मंडित हैं।

बुंदेली के बारे में कहा गया है– बुंदेली वा या है जौन में बुंदेलखंड के कवियों ने अपनी कविता लिखी, बारता लिखवे वारों ने वारता (गद्य) लिखी. जा भाषा पूरे बुंदेलखंड में एकई रूप में मिलत आय। बोली के कई रूप जगा के हिसाब से बदलत जात हैं। जई से कही गई है कि कोस-कोस पे बदले पानी, गाँव-गाँव में बानी. बुंदेलखंड में जा हिसाब से बहुत सी बोली चलन

में हैं जैसे डंघाई, चौरासी पवारी, विदीशयी या(विदिशा जिला में बोली जाने वाली) आदि।

बुंदेली का स्वरूप

बुंदेलखंड की पाटी पद्धति में सात स्वर तथा 45 व्यंजन हैं। कातन्त्र व्याकरण ने संस्कृत के सरलीकरण प्रक्रिया में सहयोग दिया। बुंदेली पाटी की शुरुआत ओना मासी घ मौखिक पाठ से प्रारंभ हुई। विदुर नीति के श्लोक विन्नायके तथा चाणक्य नीति चन्नायके के रूप में याद कराए जाते थे। वणिक प्रिया के गणित के सूत्र रटाए जाते थे। नमः सिद्ध मने ने श्री गणेशाय नमः का स्थान ले लिया। कायस्थों तथा वैश्यों ने इस भाषा को व्यवहारिक स्वरुप प्रदान किया, उनकी लिपि मुड़िया निम्न मात्र विहीन थी। स्वर बैया से अक्षर तथा मात्र ज्ञान कराया गया। चली चली बिजन वखों आई, कां से आई का का ल्याई .. . वाक्य विन्यास मौलिक थे। प्राचीन बुंदेली विंध्येली के कलापी सूत्र काल्पी में प्राप्त हुए हैं।

कुछ प्रसिद्ध शब्द–

कपडालत्तां=कपड़े	संजा- शाम
उमदा–अच्छा	काय–क्यों
का–क्या हओ–हां	
पुसात–पसंद आता है।	हुईये–होगा
इखों–इसको	उखों–उसको
इको–इसका	अपनोरें–हम सब

हमोरे–हम सब (जब किसी दूसरे व्यक्ति से बोल रहे हों)

रींछ–भालू	लडैया–भेडिया
मंदर–मंदिर	जमाने भर के–दुनिया भर के
उलांयतेघ–जल्दी	तोसे–तुमसे
मोसे–मुझसे	किते - कहां
एते आ - यहां आ	नें करो- मत करो

करियो- करना (तुम वह आप के उच्चारण में)

करिये- करना (तू के उच्चारण में)

तैं–तू	हम–मैं
जेहें–जायेंगे/जायेंगी	जेहे–जायेगा–जायेंगी

नें–नहीं व मत के उच्चारण में

खीब–खूब	ररोध्मुलक/मुझको/वेंजा–बहुत
टाठी–थाली	चीनवो–जानना
लगां–लिंगा–पास में	नोरुलों–तक
हे–को आय–है	
हैगो–हैगी–है	हमाओ–हमरो–मेरा
हमायी–हमरी–मेरी	हमाये–हमरे–मेरे
किते, कहाँ	इते, यहाँ
सई, सच	सपन्ना, स्नानघर

जिसको मराठी आती है ओ ऊपर दिए गए शब्दों में 40% शब्द मराठी में आज भी इस्तेमाल होते है और जान जाएगा कि बुन्देली और मराठी का रिश्ता हिंदी से भी ज्यादा जुड़वा है।

क्षेत्रीय बुंदेलखंडी

जो बोली दमोह सागर झांसी आदि में बोली जाती है वो ठेठ तथा जो विदिशा रायसेन होशंगाबाद में बोली जाती है क्षेत्रीय बुंदेलखंडी कहलाती है।

बुन्देल खंडी और हिन्दी भाषा

बुँदलखण्डी में दस स्वर और सत्ताइस व्यंजन हैं। हिन्दी के 16 अक्षर इसमें नहीं हैं। इसक 10 स्वरों में भी 8 स्वरों का उच्चारण बिल्कुल अलग है। इस मुख्य भेद को दखकर हमें चौंकना ने चाहिय क्योंकि 2500 वर्ष पहल ब्राम्ही भाषा की वर्णमाला में 33 अक्षर हैं, जिसमें स्वर केवल 6 ही हैं। 250 ई.पू. अशोक के धर्म ले खों से विदित होता हैकि अ,ई,ए,औ के लिए कोई अक्षर नहीं, ऋ, लृ तो हैं ही नहीं। एक हजार ई.पू. की अवस्था भाषा जो संस्कृति की बहिन है, उसमें 13 स्वर और 34 व्यंजन हैं, जो सार के सार हलन्त है ही। 1000 ई. पू. की फिनौशियन भाषा में भी केवल 22 अक्षर हैं। इसक और पूर्व की इजिप्शयन भाषा के भाव चित्रों में सिर्फ 24 व्यंजन ही है और स्वर दिखते ही नहीं। यूं तो मिश्र की इजिप्शन लिपि तीन खण्डों में चलती है। प्रथम काल पहिल राज्यवश से दसव राज्यवंश 100–1700 ई.पू. तक भावचित्रों में 203 संकत हैं। द्वितीय खण्ड में 14 राज्यवंश से 17वं राज्यवंश तक 1700–525 ई.पू. में जिस "हरोटिक" कहते हैं, कुल 24 व्यंजनों की वर्णमाला थी। अन्त के काल को

'कोआप्टिक' भाषा 525 ई.पू से 638 ईस्वी तक तक आते हुए केवल 7 अक्षर और जुड़। याने 11 सौ वर्षो में 31 अक्षर वाली भाषा बनी और अंत में लुप्त हो गई। इसी तरह 3 हजार ई.पू. के करीब सुमरी लिपि को अक्कादियों ने अपनी सिमैटिक भाषा के लिए अपना लिया। सुमरी कीलाक्षर लिपि में 41 संकते हैं। जिसमें 36 ध्वनि संकतों से प्राप्त हैं। अक्कादियों के अक्षर से यह मसोपोटमियां और सार पश्चिम एशिया में फैल गई तथा इसी कीलाक्षर लिपि को अनातोली, कनानी, हिवू और हितियों ने अपना लिया। फिर पूर्व की ओर की बाढ़ ने इस एलाम और समस्त ईरान ने अपना लिया।

भिन्न-भिन्न भौगोलिक स्थलों ने और देशों ने इस पर भी जरूर असर डाला, परिवर्तन भी किया इसीलिए इसक भावचित्र सिकुड़ और कम होते गए। चित्रात्मक से आरम्भ हुई, यह लिपि भावात्मक, ध्वनिआत्मक तथा अक्षरात्मक स्वरूपों को लांघती हुई वर्णात्मक के स्वरूप में पहुंच गई। असीरी के अक्कदी में 600 संकत थ। जिसमें भावचित्र भी भर पड़ थ व सुमर और एलाम पहुँचने पर केवल 120 चिन्हों में रह गई। आखिर 600 ई.पू. में ईरान के अखमानी साम्राज्य ने इन्हीं कीलाक्षरों अर्धवर्णात्मक में जन्म दिया। केवल 41 संकत ही रह गए। यह सब परिव ??ZrZu 3000 ई. पू. से 600 ई.पू. तक याने 2400 वर्षो में सम्पन्न हुआ। याने कीलाक्षर सुमरी में कुल 41 संकत है, जो 36 ध्वनियों से प्राप्त होते हैं। जैस चार संकत राजा, प्रांत, भूमि और अहुर-मज्दा शुद्व भावचित्र हैं। सभी व्यन्जनों में अ स्वर निहित है और जिन व्यंजनों में इ, उ हैं उनक चिन्ह अलग हैं। इसी तरह सिन्धु-घाटी मोहन-जो-दारो और हड़प्पा भाषा में श्री सुधाँषु शंकर राय द्वारा 48 वर्ण अक्षरों को ढूँढा गया है और डा. राव के अनुसार सिंध वर्णमाला में 15 व्यन्जन और सिर्फ 5 स्वर ही हैं।

अगर हम आधुनिक प्रथम शताब्दी के वैद्याकर्णी वरूरूचि की महाप्राकृत पर नजर डालं तो उनकी परिपाटी के शिष्य आचार्य हमेंन्द्र ने अपभ्रंश में 9 स्वर और 26 व्यंजन बताए हैं। इसलिय यह स्पष्ट है कि बुन्देली ने तो हिन्दी की बहन है और ने तो संस्कृत की पुत्री। इसको स्वयं स्वतन्त्र भाषा होने का श्रय प्राप्त है। हाँ हो सकता है संस्कृत से बुन्देली ने ठीक उसी प्रकार शब्द लिए हों जैस कन्नड़, तुलुगू, मलयालम भाषाओं ने अपने 1 लाख शब्दों के अनुपात में 60 से 70 हजार शब्द उधार लिए हैं और तमिल ने तो लाख में सिर्फ 40 हजार ही संस्कृत शब्द पचाए हैं।

बुन्देली का व्याकरण

हिन्दी भाषा ने अपनी व्याकरण का सारा कलवर संस्कृत से उधार लिया है। इस प्रकार की बात बुन्देली में नहीं है। बुन्देली का प्रारम्भिक युग में कोई व्याकरण अवश्य रहा होगा, जो या तो अब लुप्त हो गया या छानबीन का मोहताज है। लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि यह कातन्त्र व्याकरण की परम्परा में पली है। साथ ही महश्वर परम्परा याने पाणिनी व्याकरण से बहुत दूर तक अलग है। गम्भीरता से दखन पर महर्षि पाणिनी की व्याकरण शैली लगातार 2468 वर्षो से संस्कृत को अपने पन्ज में जकड़ हुए है, जकड़ं रखगी। जब तक भविष्य युग की मांग के अनुसार टक्कर में दूसरा पाणिनी नहीं पैदा होता। आज तो भयंकर गति से बढ़ता हुआ आधुनकि ज्ञान हजारों नूतन शब्द तथा नई वाक्य रचना की मांग कर रहा है। नय संदर्भ में नय ज्ञान को नई व्याकरण परिपाटी भी चाहिय। कैस.. ? कब.. ? यह तो भविष्य के गर्भ में है। पर आभास होने लगा है कि संस्कृत को पाणिनी के स्थान पर नय पाणिनी की आवश्यकता है। पाणिनी की जकड़ में फंसी संस्कृत अब छटपटाने लगी हैं। लेकिन बुन्देली ने पहल से ही इस प्रकार की परिधि में घिरना अस्वीकार कर दिया और बोलचाल की परिपाटी वाली कातन्त्र व्याकरण को सहज अपनाया। इसलिए कि बोलचाल की भाषा सदा गिरती पड़ती सदा गतिमान रहती है तथा वह सदा-सदा आम जन समुदाय के निकट से निकट ही रहगी।

बुन्देली का स्वर स्फुर्ण भेद

प्रथम हम स्वरों के उच्चारण को ही पकड़ते है। बुंदेली में दस स्वरों का उच्चरण हिन्दी के आठ स्वरों बिल्कुल भिन्न है। यह कैस जाना जाव.. ? इसक लिए हमें ध्वनिशास्त्र पर नजर डालनी होगी। ध्वनि में केवल भेद ही नहीं वजन भी होता है। हमार भाषा-शास्त्रियों ने इस बड़ी बारीकी से नापा है। शब्द ध्वनि को 8 परमाणुओं की एक मात्र कहा है। व्यंजनों में एक मात्र 8 परमाणुओं की होती है। डढ़ मात्र 12 परमाणुआं की। 2 मात्र 16 परमाणुआं की,ढाई मात्र 20 परमाणुआं की और 3 मात्र 24 परमाणुओं की होती है। इस क्रम में बुन्देली का स्वर उच्चारण वैभिन्न समझनं के लिय हम केवल 'अ' स्वर को ले ते हैं। और इसक उच्चार्णो के पांचों अलगाव को मात्रओं में दर्शाते हैं।

इस तालिका को दखकर हम ठीक-ठीक समझ सकंग कि ध्वनि भेद कैसा होता है। हिन्दी के इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ और औ का उच्चरण 2!! से

3 मात्र का होता है, जबकि बुंदेली में इनकी ध्वनियाँ 1 से 2 मात्राओं, याने 8 से 16 परमाणुओं के माध्य से स्फुरिट होता है। इन्हीं मात्रओं की वहज से बुंदेली काव्य तथा संगीत में कितनी सरसता आती होगी इसका अन्दाजा लगाया नहीं जा सकता। अभी तक बुन्देली जगत ने ईश्वरी सरीख कवियों को इस मापदण्ड पर तौला नहीं है और ने उनकी स्वर ध्वनियों को संगीत लहरी में लखबद्ध किया है।

बुन्देली में ई, ए, इ, ओ, औ, ऐ प्रत्यय हैं, जब य प्रत्यय बुन्देली धातु से जुड़ते हैं तो हिन्दी और बुन्देली का एक समान उच्चारण हो जाता है। जैस बुन्देली चर धातु से चल शब्द और उसमें जब उपरोक्त प्रत्यय जुड़ते हैं तो इनका रूप चलो, चल, चली इत्यादि हिन्दी के समान ही होता है। लेकिन याद रह इनकी बनावट में जमीन आसमान का फर्क है, क्योंकि फर्क 'अ' की पूर्व ध्वनि का है। बुँदलखण्डी उच्चारण में 'अ' इस ध्वनि की कमी हो जाती है। सबस विचित्र बात यह है कि बुन्देली में संस्कृत जैसी संधि अमान्य है। इसी अक्षर स्वर और व्यंजन एक दूसर के सामन या बाद में स्वच्छन्दता से आत और व्यंजन एक दूसर के सामने या बाद में स्वच्छन्दता से आत और बन रहते हैं। पास-पास रहन से उनक उच्चारण में कोई फर्क पड़ता ही नहीं।

बुन्देली में हिन्दी के अक्षर ऋ ल अं अरू ड,, ढ, ष, य, व, क्ष, त्र ज्ञ नहीं है। और स्वरों में अ आ को छोड़कर इ, ई उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ को संयुक्त अक्षर माना है। इसलिय इनक उच्चारण में बड़ा फर्क पड़ गया है। उदाहरण लीजिय-

'ई' स्वतन्त्र स्वर ने होकर अ़ईअी है इसी तरह 'उ' पूणाँस्वर नहीं, बल्कि अ़उअु अथवा अ़ऐअै, अ़ओअऔ इत्यादि। इसी संदर्भ में उपरोक्त 'इ' की लिपि का कुछ इतिहास भी दखे। दक्षिण भारत के मदुरा तथा तिरूनलवली जिल के सित्तनवासल स्थान के गुफा लेखों से क. व्ही. सुब्रामण्यम अययर ने यह सिद्ध किया कि इनमें 'इ' अक्षर के लिए एक दण्ड और दोनों ओर दो बिन्दुओं का चिन्ह मिलता है। इस 'इ' के लिए उत्तर भारत में इस प्रकार का चिन्ह 300 ई. पू. तक के ब्राी लेखकों में कहीं भी प्राप्त नहीं होता। लेकिन कालांतर में यही चिन्ह उत्तर और पश्चिम भारत के लेखों में मिलता है। इसलिए यह सहज कहा जा सकता है कि ई.पू. तीसरी शताब्दी में ई' का यह चिन्ह दक्षिण से उत्तर पहुँच गया था। और इसका स्वरूप 'इ' बना। इसस भी अनुमान किया जाता है कि उत्तर भारत में ई' का स्वरूप बहुत बाद में जुड़ा। चूँकि बुन्देली इस युग से बहुत पहल

प्रचलित थी तो इस 'इ' की ध्वनि जैस वैदिक काल के पूर्व थी उसी तरह इसका उच्चारण कायम रखा और अ़ईअि की तरह युक्ताक्षर माना तथा स्वतन्त्र स्वर मानने से इंकार कर दिया।

धातु

किसी भी भाषा का मूलाधार धातुएँ हैं। आज के पाश्चात्य विद्वान धातुओं को अमान्य करने लग हैं। कारण कुछ भी हो पर लगता है कि उनकी भाषाएँ इतनी मिश्रित हैं कि मूल का पता पाना असम्भव है। लेकिन अगर हम अपने धातु जगत को भूल जाए तो समस्त भाषाओं का कलेवर ही ढह जाएगा।

मानव को ज्ञान कोष की वृद्धि के साथ ध्वनियाँ भी बढ़ानी पडीघ ताकि शब्द कोष बढ़। इसलिय संस्कृत के फैलाव में ध्वनियों का विस्तार करना पड़ा लेकिन मूल ध्वनियाँ कहीं ने कहीं तो थी हीं और व संस्कृत के लिय छन्दस् से प्राप्त हुई और इसी छन्दस् सपांली ने भी ली परन्तु वह उनका विस्तार नहीं कर पाई। फिर भी वह अपना ज्ञान 10़3344 ध्वनियों से निकाल लेती थीं। क्योंकि इसमें सहज लोच था। इसी प्रकार बुन्देली तो 10़2737 से ही अपना कार्य चला लेती थी, क्योंकि इसमें समयानुकूल शब्दावली प्राप्त थी। याने इन्हीं 37 और 44 स्वर व्यन्जनों का विकास 52 ध्वनियाँ हैं इसस प्रमाणित होता है कि 37 ध्वनियों वाली बुन्देली बोली या भाषा सबस पुरानी हैं और वह अपना अस्तित्त्व अभी तक शान से निभाय चली जा रही है। यहाँ यह भी कह देना जरूरी है कि प्रत्यक संस्कृत अक्षर की ध्वनियाँ 2835 प्रकार की हैं और इस महती छलनी से छानकर बुन्देली की ध्वनि प्रकार भी निकालना होगा।

बघेली बोली

बघेली या बाघेली, हिन्दी की एक बोली है, जो भारत के बघेलखण्ड क्षेत्र में बोली जाती है। यह मध्य प्रदेश के रीवा, सतना, सीधी, उमरिया, एवं शहडोल, अनूपपुर मेंय उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद एवं मिर्जापुर जिलों में तथा छत्तीसगढ़ के बिलासपुर एवं कोरिया जनपदों में बोली जाती है। इसे 'बघेलखण्डी', 'रिमही' और 'रिवई' भी कहा जाता है। वघेलखण्ड में वघेली लोक गीत प्रचलित है, जिसके अंतर्गत सोहर, कजरी, जेवनार, अंजुरी, सुहाग, हिंदुली, बरुआ, आदि बड़े उत्साह के साथ गाये जाते हैं। यदि जंन-जातिय गीतों की बात की जाय तो छैला,कर्मा व भगत जैसे लोक गीत गाये जाते रहे हैं। आधुनिक युग(21वी सदी)

में बघेली बोली में बहुत सारे युवा कमेडीयन बने हैं, जिसमे पंडित अविनाश तिवारी, पूजा तिवारी, व लखन भैइया बहुत ही लोक प्रिय हैं। कविता के क्षेत्र में श्री रामलखन वघेल का नाम भला कौन बघेलखण्डी भूल सकता है।

हिंदी शब्दों का बघेली रूप–

हिंदी-शब्द बघेली-शब्द

लोटा–लोटबा	गाय–गइया
लड़का–लड़िका	लड़की–लड़िकीबा
क्रिया–पद–	
होना–होब	खाना–खाब
जाना–जाब	करना–करब
बनना–बनब	आना–आउब
रहना–रहब।	

कुछ महत्त्वपूर्ण सहायक-क्रियाएँ–

वर्तमान काल–

है –हबय	है –हबय (इज)
हैं–हमय (आर)	हूँ–हयन(एम)
हो–हया(आर)	

भूतकाल–

था–ते(वाज)	थी–ते(वाज)
थे–ते(वर)	

भविष्यकाल–

होगा–होई	होगी–होई
होंगे–होंई।	

सर्वनाम-शब्द–

य–यह	व–वह
मैं–हम	तुम–तुम
आप–अपना	हम–हम पंचे
वह–उवा	वे–ऊँ
किधर–केंघा	क्या–का
कब–कबे	विशेषण–पद

छोटा–छोट बड़ी–बड़ी
कैसा–कइसा कारक–शब्द
ने–उआ को –ओका
से–ओसे
को, लिए–ओका, ओके लाने
से, अलग होने के अर्थ में–ओसे
का, के, की–ओकर
में, पे, पर–ओमा, मा

संयोजक शब्द–

और–अउर और–अउर
और–अउर

दिनों के नाम–

1. सोमवार–सम्मार
2. मंगल–मंगल
3. बुधवार–बुद्धवार
4. गुरुवार–बिहफैं
5. शुक्र–शुक्र
6. शनि–शनीचर
7. रविवार–अइतवार

10

भोजपुरी भाषा एवं बोली

भोजपुरी भाषाई परिवार के स्तर पर एक आर्य भाषा है और मुख्य रूप से पश्चिम बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश और उत्तरी झारखण्ड के क्षेत्र में बोली जाती है। भोजपुरी हिन्दी की एक उपभाषा या बोली है। भोजपुरी अपने शब्दावली के लिये मुख्यत: संस्कृत एवं हिन्दी पर निर्भर है कुछ शब्द इसने उर्दू से भी ग्रहण किये हैं। भोजपुरी जानने-समझने वालों का विस्तार विश्व के सभी महाद्वीपों पर है जिसका कारण ब्रिटिश राज के दौरान उत्तर भारत से अंग्रेजों द्वारा ले जाये गये मजदूर हैं जिनके वंशज अब जहाँ उनके पूर्वज गये थे वहीं बस गये हैं। इनमे सूरिनाम, गुयाना, ट्रिनिदाद, फीजी और टोबैगो आदि देश प्रमुख है।

भोजपुरी शब्द का निर्माण बिहार का प्राचीन जिला भोजपुर के आधार पर पड़ा। जहाँ के राजा 'राजा भोज' ने इस जिले का नामकरण किया था। भाषाई परिवार के स्तर पर भोजपुरी एक आर्य भाषा है और मुख्य रूप से पश्चिम बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा उत्तरी झारखण्ड के क्षेत्र में बोली जाती है। आधिकारिक और व्यवहारिक रूप से भोजपुरी हिन्दी की एक उपभाषा या बोली है। भोजपुरी अपने शब्दावली के लिये मुख्यत: संस्कृत एवं हिन्दी पर निर्भर है कुछ शब्द इसने उर्दू से भी ग्रहण किये हैं।

भोजपुरी जानने-समझने वालों का विस्तार विश्व के सभी महाद्वीपों पर है जिसका कारण ब्रिटिश राज के दौरान उत्तर भारत से अंग्रेजों द्वारा ले जाये गये मजदूर हैं जिनके वंशज अब जहाँ उनके पूर्वज गये थे, वहीं बस गये हैं।

इनमे सूरिनाम, गुयाना, त्रिनिदाद और टोबैगो, फिजी आदि देश प्रमुख है। भारत के जनगणना (2001) आँकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 3.3 करोड़ लोग भोजपुरी बोलते हैं। पूरे विश्व में भोजपुरी जानने वालों की संख्या लगभग 4 करोड़ है। वक्ताओं के संख्या के आंकड़ों में ऐसे अंतर का संभावित कारण ये हो सकता है कि जनगणना के समय लोगों द्वारा भोजपुरी को अपनी मातृ भाषा नहीं बताई जाती है। भोजपुरी प्राचीन समय में कैथी लिपि में लिखी जाती थी।

भौगोलिक वर्गीकरण

डॉ. ग्रियर्सन ने भारतीय भाषाओं को अन्तरंग ओर बहिरंग इन दो श्रेणियों में विभक्त किया है जिसमें बहिरंग के अन्तर्गत उन्होंने तीन प्रधान शाखाएँ स्वीकार की हैं –

(1) उत्तर पश्चिमी शाखा
(2 दक्षिणी शाखा और
(3) पूर्वी शाखा।

इस अन्तिम शाखा के अन्तर्गत उड़िया, असमी, बँग्ला और पुरबिया भाषाओं की गणना की जाती है। पुरबिया भाषाओं में मैथिली, मगही और भोजपुरी – ये तीन बोलियाँ मानी जाती हैं। क्षेत्रविस्तार और भाषा-भाषियों की संख्या के आधार पर भोजपुरी अपनी बहनों मैथिली और मगही में सबसे बड़ी है।

नामकरण

भोजपुरी भाषा का नामकरण बिहार राज्य के आरा (शाहाबाद) जिले में स्थित भोजपुर नामक गाँव के नाम पर हुआ है। पूर्ववर्ती आरा जिले के बक्सर सब-डिविजन (अब बक्सर अलग जिला है) में भोजपुर नाम का एक बड़ा परगना है जिसमें 'नवका भोजपुर' और 'पुरनका भोजपुर' दो गाँव हैं। मध्य काल में इस स्थान को मध्य प्रदेश के उज्जैन से आए भोजवंशी परमार राजाओं ने बसाया था। उन्होंने अपनी इस राजधानी को अपने पूर्वज राजा भोज के नाम पर भोजपुर रखा था। इसी कारण इसके पास बोली जाने वाली भाषा का नाम 'भोजपुरी' पड़ गया।

भोजपुरी भाषा का इतिहास 7वीं सदी से शुरू होता है – 1000 से अधिक साल पुरानी। गुरु गोरख नाथ 1100 वर्ष में गोरख बानी लिखा था। संत कबीर

दास (1297) का जन्मदिवस भोजपुरी दिवस के रूप में भारत में स्वीकार किया गया है और विश्व भोजपुरी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

क्षेत्रविस्तार

भोजपुरी भाषा प्रधानतया पश्चिमी बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा उत्तरी झारखण्ड के क्षेत्रों में बोली जाती है। इन क्षेत्रों के अलावा भोजपुरी विदेशों में भी बोली जाती है। भोजपुरी भाषा फिजी और नेपाल की संवैधानिक भाषाओं में से एक है। इसे मॉरीशस, फिजी, गयाना, सूरीनाम, सिंगापुर, उत्तर अमेरीका और लैटिन अमेरिका में भी बोला जाता है।

मुख्यरुप से भोजपुरी बोले जाने वाले जिले

बिहार–बक्सर जिला, सारण जिला, सिवान, गोपालगंज जिला, पूर्वी चम्पारण जिला, पश्चिम चम्पारण जिला, वैशाली जिला, भोजपुर जिला, रोहतास जिला, बक्सर जिला, भभुआ जिला।

उत्तर प्रदेश–बलिया जिला, वाराणसी जिला,चन्दौली जिला, गोरखपुर जिला, महाराजगंज जिला, गाजीपुर जिला, मिर्जापुर जिला, मऊ जिला, इलाहाबाद जिला, जौनपुर जिला, प्रतापगढ़ जिला, सुल्तानपुर जिला, फैजाबाद जिला, बस्ती जिला, गोंडा जिला, बहराईच जिला, सिद्धार्थ नगर, आजमगढ जिला।

झारखण्ड–पलामु जिला, गढ़वा जिला,

नेपाल–रौतहट जिला, बारा जिला, बीरगंज, चितवन जिला, नवलपरासी जिला, रुपनदेही जिला, कपिलवस्तु जिला, पर्सा जिला।

गयाना–जार्जटाउन

फिजी–सुवा

भोजपुरी भाषा की प्रधान बोलियाँ

(1) आदर्श भोजपुरी,
(2) पश्चिमी भोजपुरी और
(3) अन्य दो उपबोलियाँ (सब डाइलेक्ट्स) 'मघेसी' तथा 'थारु' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

आदर्श भोजपुरी

जिसे डॉ. ग्रियर्सन ने स्टैंडर्ड भोजपुरी कहा है वह प्रधानतया बिहार राज्य के आरा जिला और उत्तर प्रदेश के देवरिया, बलिया, गाजीपुर जिले के पूर्वी भाग और घाघरा (सरयू) एवं गंडक के दोआब में बोली जाती है। यह एक लंबें भूभाग में फैली हुई है। इसमें अनेक स्थानीय विशेताएँ पाई जाती है। जहाँ शाहाबाद, बलिया और गाजीपुर आदि दक्षिणी जिलों में 'ड़' का प्रयोग किया जाता है वहाँ उत्तरी जिलों में 'ट' का प्रयोग होता है। इस प्रकार उत्तरी आदर्श भोजपुरी में जहाँ 'बाटे' का प्रयोग किया जाता है, वहाँ दक्षिणी आदर्श भोजपुरी में 'बाड़े' प्रयुक्त होता है। गोरखपुर की भोजपुरी में 'मोहन घर में बाटें' कहते परंतु बलिया में 'मोहन घर में बाड़ें' बोला जाता है।

पूर्वी गोरखपुर की भाषा को 'गोरखपुरी' कहा जाता है परंतु पश्चिमी गोरखपुर और बस्ती जिले की भाषा को 'सरवरिया' नाम दिया गया है। 'सरवरिया' शब्द 'सरुआर' से निकला हुआ है, जो 'सरयूपार' का अपभ्रंश रूप है। 'सरवरिया' और गोरखपुरी के शब्दों - विशेषत: संज्ञा शब्दों- के प्रयोग में भिन्नता पाई जाती है।

बलिया (उत्तर प्रदेश) और सारन (बिहार) इन दोनों जिलों में 'आदर्श भोजपुरी' बोली जाती है। परंतु कुछ शब्दों के उच्चारण में थोड़ा अन्तर है। सारन के लोग 'ड' का उच्चारण 'र' करते हैं। जहाँ बलिया निवासी 'घोड़ागाड़ी आवत बा' कहता है, वहाँ छपरा या सारन का निवासी 'घोरा गारी आवत बा' बोलता है। आदर्श भोजपुरी का नितांत निखरा रूप बलिया और आरा जिले में बोला जाता है।

पश्चिमी भोजपुरी

जौनपुर, आजमगढ़, बनारस, गाजीपुर के पश्चिमी भाग और मिर्जापुर में बोली जाती है। आदर्श भोजपुरी और पश्चिमी भोजपुरी में बहुत अधिक अन्तर है। पश्चिमी भोजपुरी में आदर सूचक के लिये 'तुँह' का प्रयोग दीख पड़ता है परंतु आदर्श भोजपुरी में इसके लिये 'रउरा' प्रयुक्त होता है। संप्रदान कारक का परसर्ग (प्रत्यय) इन दोनों बोलियों में भिन्न-भिन्न पाया जाता है। आदर्श भोजपुरी में संप्रदान कारक का प्रत्यय 'लागि' है परंतु वाराणसी की पश्चिमी भोजपुरी में इसके लिये 'बदे' या 'वास्ते' का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ–

पश्चिमी भोजपुरी -

हम खरमिटाव कइली हा रहिला चबाय के।
भेंवल धरल बा दूध में खाजा तोरे बदे।।
जानीला आजकल में झनाझन चली रजा।
लाठी, लोहाँगी, खंजर और बिछुआ तोरे बदे।। (तेग अली-बदमाश दपर्ण)

मधेसी

मधेसी शब्द संस्कृत के 'मध्य प्रदेश' से निकला है, जिसका अर्थ है बीच का देश। चूँकि यह बोली तिरहुत की मैथिली बोली और गोरखपुर की भोजपुरी के बीचवाले स्थानों में बोली जाती है, अत: इसका नाम मधेसी (अर्थात वह बोली जो इन दोनो के बीच में बोली जाये) पड़ गया है। यह बोली चंपारण जिले में बोली जाती और प्राय: 'कैथी लिपि' में लिखी जाती है।

'थारू' लोग नेपाल की तराई में रहते हैं। ये बहराइच से चंपारण जिले तक पाए जाते हैं और भोजपुरी बोलते हैं। यह विशेष उल्लेखनीय बात है कि गोंडा और बहराइच जिले के थारू लोग भोजपुरी बोलते हैं जबकि वहाँ की भाषा पूर्वी हिन्दी (अवधी) है। हॉग्सन ने इस भाषा के ऊपर प्रचुर प्रकाश डाला है।

भोजपुरी जन एवं साहित्य

भोजपुरी बहुत ही सुंदर, सरस, तथा मधुर भाषा है। भोजपुरी भाषाभाषियों की संख्या भारत की समृद्ध भाषाओं- बँगला, गुजराती और मराठी आदि बोलनेवालों से कम नहीं है। इन दृष्टियों से इस भाषा का महत्व बहुत अधिक है और इसका भविष्य उज्जवल तथा गौरवशाली प्रतीत होता है।

भोजपुरी भाषा में निबद्ध साहित्य यद्यपि अभी प्रचुर परिमाण में नहीं है तथापि अनेक सरस कवि और अधिकारी लेखक इसके भंडार को भरने में संलग्न हैं। भोजपुरिया-भोजपुरी प्रदेश के निवासी लोगों को अपनी भाषा से बड़ा प्रेम है। अनेक पत्रपत्रिकाएँ तथा ग्रन्थ इसमें प्रकाशित हो रहे हैं तथा भोजपुरी सांस्कृतिक सम्मेलन, वाराणसी इसके प्रचार में संलग्न है। विश्व भोजपुरी सम्मेलन समय-समय पर आंदोलनात्म, रचनात्मक और बैद्धिक तीन स्तरों पर भोजपुरी भाषा, साहित्य और संस्कृति के विकास में निरंतर जुटा हुआ है। विश्व भोजपुरी सम्मेलन से ग्रन्थ के साथ-साथ त्रैमासिक 'समकालीन भोजपुरी साहित्य' पत्रिका का प्रकाशन हो रहे हैं। विश्व भोजपुरी सम्मेलन, भारत ही नहीं ग्लोबल स्तर पर भी भोजपुरी भाषा

और साहित्य को सहेजने और इसके प्रचार-प्रसार में लगा हुआ है। देवरिया (यूपी), दिल्ली, मुंबई, कोलक भोजपुता, पोर्ट लुईस (मारीशस), सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका, इंग्लैंड और अमेरिका में इसकी शाखाएँ खोली जा चुकी हैं।

भोजपुरी साहित्य में भिखारी ठाकुर योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उन्हें भोजपुरी का शकेस्पीयर भी कहा जाता है। उनके लिखे हुए नाटक तत्कालीन स्त्रियों के मार्मिक दृश्य को दर्शाते हैं, अपने लेखों के द्वारा उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया है। उनके प्रमुख ग्रंथ है–बिदेशिया, बेटी बेचवा,भाई बिरोध, कलजुग प्रेम,विधवा बिलाप इतियादी।

महेंदर मिसिर भी भोजपुरी के एक मूर्धन्य साहित्यकार हैं। एक स्वतंत्रता सेनानी होने के साथ साथ महेंदर मिसिर भोजपुरी के महान कवि भी थे। उन्हें पुरबी सम्राट के नाम से भी जाना जाता है।

संस्कृत से ही निकली भोजपुरी

आचार्य हवलदार त्रिपाठी 'सह्मदय' लम्बे समय तक अन्वेषण कार्य करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भोजपुरी संस्कृत से ही निकली है। उनके कोश-ग्रन्थ ('व्युत्पत्ति मूलक भोजपुरी की धातु और क्रियाएं') में मात्र 761 धातुओं की खोज उन्होंने की है, जिनका विस्तार 'ढ़' वर्ण तक हुआ है। इस प्रबन्ध के अध्ययन से ज्ञात होता है कि 761 पदों की मूल धातु की वैज्ञानिक निर्माण प्रक्रिया में पाणिनि सूत्र का अक्षरशः अनुपालन हुआ है।

इस कोश-ग्रन्थ में वर्णित विषय पर एक नजर डालने से भोजपुरी तथा संस्कृत भाषा के मध्य समानता स्पष्ट परिलक्षित होती है। वस्तुतः भोजपुरी-भाषा संस्कृत-भाषा के अति निकट और संस्कृत की ही भांति वैज्ञानिक भाषा है। भोजपुरी-भाषा के धातुओं और क्रियाओं का वाक्य-प्रयोग विषय को और अधिक स्पष्ट कर देता है। प्रामाणिकता हेतु संस्कृत व्याकरण को भी साथ-साथ प्रस्तुत कर दिया गया है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें भोजपुरी-भाषा के धातुओं और क्रियाओं की व्युत्पत्ति को स्रोत संस्कृत-भाषा एवं उसके मानक व्याकरण से लिया गया है।

11

राजस्थानी की बोलियाँ

राजस्थानी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में से एक है, जिसका वास्तविक क्षेत्र वर्तमान राजस्थान प्रांत तक ही सीमित न होकर मध्यप्रदेश के कतिपय पूर्वी तथा दक्षिणी भाग में और पाकिस्तान के बहावलपुर जिले तथा दूसरे पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी सीमा प्रदेशों में भी है।

राजस्थानी का विकास, अधिकांश विद्वानों के मतानुसार, मध्यदेशीय प्राकृत या शौरसेनी से हुआ है, किंतु डॉ. चाटुर्ज्या इसका विकास अशोककालीन सौराष्ट्री प्राकृत से मानते हैं, जो 'शौरसेनी या मध्यदेशीय प्राकृत से कुछ विभिन्न थीष। इसी प्राकृत का क्षेत्र गुजरात प्रांत तथा मारवाड़ प्रांत था और यह बोली यहाँ मध्यप्रदेश से न आकर 'उत्तर-भारत के किसी और प्रांत या जनपद से आई थी। इसी आधार पर डॉ. चाटुर्ज्या गुजराती मारवाड़ी को पश्चिमी पंजाब की लँहदा तथा सिंध की सिंधी से विशेष संबद्ध मानते हैं। वैसे इस प्रदेश की बोलियों को मध्ययुग में शौरसेनी ने काफी प्रभावित किया है। ईसा की तीसरी-चौथी सदियों में स्वात प्रदेश के गुर्जर गुजरात, राजस्थान तथा मालवा में आ बसे थे। पिछले दिनों इन लोगों ने यहाँ कई राज्य स्थापित किए और ये लोग ही वर्तमान अग्निवंशी राजपूतों में बदल गए। गुर्जर जाति की मूल बोलियों ने इस प्रदेश की प्राकृत को पर्याप्त प्रभावित किया है तथा अपभ्रंश के विकास में, खास तौर पर उसके शब्दकोश के विकास में, इस जाति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। दंडी ने तो 'अपभ्रंश' भाषा को आभीरादि की ही बोलियाँ माना है। नागर अपभ्रंश के ही परवर्ती रूप

से, जिसे माकोबी जैसे विद्वान् गुर्जर अपभ्रंश या श्वेतांबर अपभ्रंश कहना अधिक ठीक समझते हैं, गुजराती-राजस्थानी का विकास हुआ है। गुजराती मूलतः राजस्थानी (पश्चिमी राजस्थानी) का ही एक विभाषा थी, जो सोलहवीं सदी तक अविभक्त थी, किंतु बाद में चलकर सांस्कृतिक, प्रांतीय तथा साहित्यिक कारणों से स्वतंत्र भाषा बन बैठी। पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी जहाँ गुजराती और सिंधी के अधिक निकट है वहाँ पूर्वी राजस्थानी (जैपुरी हाड़ौती) ब्रजभाषा (पश्चिमी हिंदी) से पर्याप्त रूप में प्रभावित है। फिर भी पूर्वी राजस्थानी में भी स्पष्ट भेदक तत्त्व मौजूद हैं, जो इसे हिंदी की विभाषा मानने से इंकार करते हैं। राजस्थानी भाषा की भाषाशास्त्रीय स्थिति रिहारी तथा पहाड़ी की तरह उन भाषाओं में है, जिन्हें हिंदी की विभाषा नहीं माना जा सकता, किंतु हिंदी के सांस्कृतिक तथा साहित्यिक इतिहास के साथ इसका गठबंधन इतना दृढ़ हो गया है कि साहित्यिक दृष्टि से राजस्थानी भाषा की स्वतंत्र सत्ता न रह पाई और यह उसकी विभाषासी बन गई।

साहित्य

राजस्थानी में पर्याप्त प्राचीन साहित्य उपलब्ध है। जैन यति रामसिंह तथा हेमचंद्राचार्य के दोहे राजस्थानी गुजराती के अपभ्रंश कालीन रूप का परिचय देते हैं। इसके बाद भी पुरानी पश्चिमी राजस्थानी में जैन कवियों के फागु, रास तथा चर्चरी काव्यों के अतिरिक्त अनेक गद्य कृतियाँ उपलब्ध हैं। प्रसिद्ध गुजराती काव्य पद्मनाभकविकृत 'कान्हडदेप्रबंध' वस्तुतः पुरानी पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी की ही कृति है। इसी तरह 'प्राकृतपैंगलम्' के अधिकांश छंदों की भाषा पूर्वी राजस्थानी की भाषा-प्रकृति का संकेत करती है। यदि राजस्थानी की इन साहित्यिक कृतियों को अलग रख दिया जाए तो हिंदी और गुजराती के साहित्यिक इतिहास को मध्ययुग से ही शुरु करना पड़ेगा। पुरानी राजस्थानी की पश्चिमी विभाषा का वैज्ञानिक अध्ययन डॉ. एल. पी. तेस्सितोरी ने 'इंडियन एंटिक्वेरी' (1914-16) में प्रस्तुत किया था, जो आज भी राजस्थानी भाषाशास्त्र का अकेला प्रामाणि ग्रंथ है। हिंदी में डॉ. चाटुर्ज्या की "राजस्थानी भाषा" (सूर्यमल्ल भाषणों) के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा के विशय में कोई प्रामाणिक भाषाशास्त्रीय कृति उपलब्ध नहीं है। वैसे दो तीन पुस्तकें और भी हैं, पर उनका दृष्टिकोण परिचयात्मक या साहित्यिक है, शुद्ध भाषाशास्त्रीय नहीं। ग्रियर्सन की लिंग्विस्टिक सर्वे में राजस्थानी बोलियों का विस्तृत परिचय अवश्य मिलता है।

पश्चिमी राजस्थानी का मध्ययुगीन साहित्य समृद्ध है। राजधानी की ही एक कृत्रिम साहित्यिक शैली डिंगल है, जिसमें पर्याप्त चारण-साहित्य उपलब्ध है। 'ढोला मा डिग्री रा दोहा जैसे लोक-काव्यों ने और 'बेलि क्रिसन रुकमणी री' जैसी अलंकृत काव्य कृतियों ने राजस्थानी की श्रीवृद्धि में योग दिया है। भाषागत विकेंद्रीकरण की नीति ने राजस्थानी भाषाभाषी जनता में भी भाषा संबंधी चेतना पैदा कर दी है और इधर राजस्थानी में आधुनिक साहित्यिक रचनाएँ होने लगी है। राजस्थानी नागरी लिपि में लिखी जाती है। इसके अतिरिक्त यहाँ के पुराने लोगों में अब भी एक भिन्न लिपि प्रचलित है, जिसे 'बाण्याँ वाटी' कहा जाता है। इस लिपि में प्रायः मात्र-चित्र नहीं दिए जाते। राजस्थानी बनिये आज भी बहीखातों में इस लिपि का प्रयोग करते हैं। राजस्थानी भाषा का साहित्यिक रूप डिंगल है और डिंगल साहित्य एक सम्रध साहित्य है डिंगल साहित्य में अनेको ग्रन्थ है इसका विकास 7-8 वीं सदी से शुरु हुआ था डिंगल को चारण सहित भी कहते है, क्योकि मध्य काल में मुख्यत इसके रचना कार चारण ही थे।

राजस्थानी की बोलियाँ

डॉ. ग्रियर्सन ने राजस्थानी की पाँच बोलियाँ मानी हैं-

(1) पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी),
(2) उत्तर पूर्वी राजस्थानी (मेवाती अहीरवाटी),
(3) मध्यपूर्वी (या पूर्वी) राजस्थानी (ढूँढाडी हाड़ौती),
(4) दक्षिण-पूर्वी राजस्थानी (मालवी),
(5) दक्षिणी राजस्थानी (निमाड़ी)।
(6) राजस्थान मैं बंजारा भाषा एक जैसी है।

ग्रियर्सन ने भीली और खानदेशी को स्वतंत्र भाषा वर्ग में माना है, किंतु डॉ. चाटुर्ज्या इन्हें 'राजस्थानी वर्ग' के ही अंतर्गत रखना चाहेंगे, जो अधिक समीचीन जान पड़ता है। डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ तथा आसपास की भीली बोलियों और खानदेशी की व्याकरणिक संघटना राजस्थानी से विशेष भिन्न नहीं है। वस्तुतः ये राजस्थानी के वे रूप हैं, जो क्रमशः गुजराती और मराठी तत्त्वों से मिश्रित हैं। राजस्थानी वर्ग के अंतर्गत पाकिस्तान तथा कश्मीर के सीमांत प्रदेश की गूजरी बोली और तमिल-नाड की सौराष्ट्र बोली भी आती है, जो पूर्वी राजस्थानी से विशेष संबद्ध जान पड़ती है। डॉ. चाटुर्ज्या ने ग्रियर्सन के राजस्थानी के पाँच बोली-भेदों को नहीं माना हे। वे मारवाड़ी और ढूँढाडी हाड़ौती को ही

'राजस्थानी' संज्ञा देना ठीक समझते हैं। उनके अनुसार राजस्थानी के दोही वर्ग है –

मेवाड़ी बोली

यह बोली दक्षिणी राजस्थान के उदयपुर, भीलवाड़ा और चित्तौड़गढ़ जिलों में मुख्य रुप से बोली जाती है। इस बोली में मारवाड़ी के अनेक शब्दों का प्रयोग होता है। केवल ए और औ की ध्वनि के शब्द अधिक प्रयुक्त होते हैं।

बांगड़ी बोली

यह बोली डूंगरपूर व बांसवाड़ा तथा दक्षिणी–पश्चिमी उदयपुर के पहाड़ी क्षेत्रों में बोली जाती हैं। गुजरात की सीमा के समीप के क्षेत्रों में गुजराती–बाँगड़ी बोली का अधिक प्रचलन है। इस बोली की भाषागत विशेषताओं में च, छ, का, स, का है का प्रभाव अधिक है और भूतकाल की सहायक क्रिया था के स्थान पर हतो का प्रयोग किया जाता है।

हाड़ौती बोली

इस बोली का प्रयोग झालावाड़, कोटा, बूँदी जिलों तथा उदयपुर के पूर्वी भाग में अधिक होता है।

मेवाती बोली

यह बोली राजस्थान के पूर्वी जिलों मुख्यत: अलवर, भरतपुर, धौलपुर और सवाई माधोपुर की करौली तहसील के पूर्वी भागों में बोली जाती है। जिलों के अन्य शेष भागों में बृज भाषा और बांगड़ी का मिश्रित रुप प्रचलन में है। मेवाती में कर्मकारक में लू विभक्ति एवं भूतकाल में हा, हो, ही सहायक क्रिया का प्रयोग होता है।

12

मैथिली भाषा का इतिहास

मैथिली भारत के बिहार और झारखंड राज्यों और नेपाल के तराई क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा है। यह हिन्द आर्य परिवार की सदस्य है। इसका प्रमुख स्रोत संस्कृत भाषा है जिसके शब्द 'तत्सम' वा 'तद्भव' रूप में मैथिली में प्रयुक्त होते हैं। यह भाषा बोलने और सुनने में बहुत ही मोहक लगता है।

मैथिली भारत में मुख्य रूप से दरभंगा, मधुबनी, सीतामढ़ी, समस्तीपुर, मुंगेर, मुजफ्फरपुर, बेगूसराय, पूर्णिया, कटिहार, किशनगंज, शिवहर, भागलपुर, मधेपुरा, अररिया, सुपौल, वैशाली, सहरसा, रांची, बोकारो, जमशेदपुर, धनबाद और देवघर जिलों में बोली जाती हैद्य।

नेपाल के आठ जिलों धनुषा, सिरहा, सुनसरी, सरलाही, सप्तरी, मोहतरी, मोरंग और रौतहट में भी यह बोली जाती है।

बँगला, असमिया और ओड़िया के साथ-साथ इसकी उत्पत्ति मागधी प्राकृत से हुई है। कुछ अंशों में ये बंगला और कुछ अंशों में हिंदी से मिलती जुलती है।

वर्ष 2003 में मैथिली भाषा को भारतीय संविधान की 8वीं अनुसूची में सम्मिलित किया गया। सन 2007 में नेपाल के अन्तरिम संविधान में इसे एक क्षेत्रीय भाषा के रूप में स्थान दिया गया है। भारत के झारखंड राज्य में इसे द्वितीय राजभाषा का दर्जा प्राप्त है।

लिपि

पहले इसे मिथिलाक्षर तथा कैथी लिपि में लिखा जाता था, जो बांग्ला और असमिया लिपियों से मिलती थी पर कालान्तर में देवनागरी का प्रयोग होने लगा। मिथिलाक्षर को तिरहुता या वैदेही लिपी के नाम से भी जाना जाता है। यह असमिया, बांगला व उड़िया लिपियों की जननी है। उड़िया लिपी बाद में द्रविड़ भाषाओं के सम्पर्क के कारण परिवर्तित हुई।

विकास

मैथिली का प्रथम प्रमाण रामायण में मिलता है। यह त्रेता युग में मिथिलानरेश राजा जनक की राज्यभाषा थी। इस प्रकार यह इतिहास की प्राचीनतम भाषाओं में से एक मानी जाती है। प्राचीन मैथिली के विकास का शुरूआती दौर प्राकृत और अपभ्रंश के विकास से जोड़ा जाता है। लगभग 700 इस्वी के आस-पास इसमें रचनाएँ की जाने लगी। विद्यापति मैथिली के आदिकवि तथा सर्वाधिक ज्ञाता कवि हैं। विद्यापति ने मैथिली के अतिरिक्त संस्कृत तथा अवहट्ट में भी रचनाएँ लिखीं। ये वह दो प्रमुख भाषाएँ हैं जहाँ से मैथिली का विकास हुआ। भारत की लगभग 5.6 प्रतिशत आबादी लगभग 7-8 करोड़ लोग मैथिली को मातृ-भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं और इसके प्रयोगकर्ता भारत और नेपाल के विभिन्न हिस्सों सहित विश्व के कई देशों में फैले हैं। मैथिली विश्व की सर्वाधिक समृद्ध, शालीन और मिठास पूर्ण भाषाओं में से एक मानी जाती है।

मैथिली भारत में एक राजभाषा के रूप में सम्मानित है। मैथिली की अपनी लिपि है, जो एक समृद्ध भाषा की प्रथम पहचान है। नेपाल हो या भारत कही भी सरकार के द्वारा मैथिली भाषा के विकास हेतु कोई खास कदम नहीं उठाया गया है। अब जा कर गैर-सरकारी संस्था और मीडिया द्वारा मैथिली के विकास का थोड़ा प्रयास हो रहा है। अभी 15-20 रेडियो स्टेशन ऐसे है जिसमें मैथिली भाषा में कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। समाचार हो या नाटक कला और अन्तरवार्ता भी मैथिली हो रहा है। किसी किसी रेडिओ में तो 50% से अधिक कार्यक्रम मैथिली में हो रहा है। ये पिछले 2-3 वर्षो से विकास हो रहा है ये सिलसिला जारी है। टीवी में भी अब मैथिली में खबर दिखाती है। नेपाल में कुछ चौनल है जैसे नेपाल 1, सागरमाथा चौनल, तराई टीवी और मकालू टीवी है।

साहित्य

मैथिली साहित्य का अपना समृद्ध इतिहास रहा है और चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शताब्दी के कवि विद्यापति को मैथिली साहित्य में सबसे ऊँचा दर्जा प्राप्त है। विद्यापति के बाद के काल में गोविन्द दास, चन्दा झा, मनबोध, पंडित सीताराम झा, जीवनाथ झा (जीवन झा) प्रमुख साहित्यकार माने जाते हैं।

स्थिति

भारत की साहित्य अकादमी द्वारा मैथिली को साहित्यिक भाषा का दर्जा पंडित नेहरू के समय 1965 से हासिल है। 22 दिसंबर 2003 को भारत सरकार द्वारा मैथिली को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में भी शामिल किया गया है और नेपाल सरकार द्वारा मैथिली को नेपाल में दूसरे स्थान में रखा गया है।

मैथिली साहित्य

मैथिली मुख्यत: भारत के उत्तर-पूर्व बिहार एवम् नेपाल के तराई क्षेत्र की भाषा है। भारत के सोलह जिलों में (मधुबनी, दरभंगा, समस्तीपुर, मुजफ्फरपुर,खगड़िया, कटिहार, अररिया, किशनगंज, सुपौल, मधेपुरा, मुंगेर, भागलपुर, सहरसा, पूर्णिया, सीतामढ़ी और बेगूसराय) और नेपाल के सात जिलों में (धनुषा जिला, महोत्तरी जिला, सिराहा जिला, सर्लाही जिला, सप्तरी जिला, सुनसरी जिला और मोरंग जिला) यह बोली जाती है। इसका क्षेत्र लगभग 30,000 वर्गमील में व्याप्त है। मैथिली भाषा का सांस्कृतिक केंद्र भारत में दरभंगा और नेपाल में जनकपुर है।

बांग्ला भाषा, असमिया और उड़िया के साथ-साथ इसकी उत्पत्ति मागधी प्राकृत से हुई है। कुछ अंशों में ये बंगला और कुछ अंशों में हिंदी से मिलती जुलती है।

मैथिली लिपि

अन्य स्वतंत्र साहित्यिक भाषाओं की तरह मैथिली की अपनी प्राचीन लिपि है जिसे 'तिरहुता' या मिथिलाक्षर कहते हैं। इसका विकास नवीं शताब्दी ईव में शुरू हो गया था। आजकल छपी हुई पुस्तकों में अधिकांश देवनागरी का ही प्रयोग होने लगा है।

मैथिली साहित्य का काल विभाजन

मैथिली के साहित्य को तीन कालों में विभक्त किया जाता है –
आदिकाल (1000 ई. – 1600 ई.),
मध्यकाल (1600 ई. –1860 ई.), और
आधुनिक काल (1860 ई. से .....)।

प्रथम काल में गीतिकाव्य, द्वितीय में नाटक और तृतीय में गद्य की प्रधानता रही है।

आदिकाल

मैथिली का सबसे प्राचीन साहित्य बौद्ध तांत्रिकों के अपभ्रंश दोहों और भाषा गीतों में पाया जाता है। इनकी भाषा मिथिला के पूर्वीय भाग की बोली का प्राचीन रूप है तथापि बँगला, उड़िया और असमिया भी अपना आदि–साहित्य इन्हीं को मानती हैं। इसके बाद इसवीं शताब्दी ईस्वी के लगभग मिथिला में कार्णाट राजाओं का उदय हुआ। उन्होंने मैथिल संगीत की परंपरा स्थापित की जिसके कारण काणाटिवंश के हरसिंह देव का काल स्वर्णयुग (लगभग 1324 ई.) कहलाया। उनके समकालीन ज्योतिरीश्वर ठाकुर का 'वर्णन–रत्नाकर' नामक एक महान गद्यकाव्य मिलता है। इसमें विभिन्न विषयों पर कवियों के उपयोगार्थ उपमाओं और वर्णनों को सजाकर रखा गया है। (हाल ही में उन्हीं का 'धूर्तसमागम' नामक नाटक और मैथिली गीत भी उपलब्ध हुए हैं।)

ज्यातिरीश्वर के उपरांत विद्यापति ठाकुर का युग आता है (1350–1450)। इस युग में मिथिला में ओइनिवार वंश का राज्य था। बंगाल में जयदेव ने जिस कृष्ण प्रेम के संगीत की परंपरा चलाई, उसी में मैथिल कोकिल विद्यापति ने हजारों पदों में अपना सुर मिलाया और उसी के साथ मैथिली काव्यधारा की विशेषत: गीतिकाव्य की एक अनोधी परंपरा चल पड़ी, जिसने तीन शताब्दियों तक पूर्वीय भारत में मैथिली का सिक्का जमा दिया।

विद्यापति की प्रसिद्धि बंगाल में, उड़ीसा में और असम में खूब हुई। इन देशों में विद्यापति को वैष्णव माना गया और उनके अनुकरण में अनेक कवियों ने मैथिली में पदावलियाँ रची। इस साहित्य की परंपरा आधुनिक काल तक चली आई है। 20वीं शताब्दी में विश्वकवि रवींद्र ने 'भानुसिंहेर पदावली' के नाम से कई सुंदर ब्रजबुलीद पद लिखे।

विद्यापति की परंपरा मिथिला में भी चली। न केवल इनके राधाकृष्ण संबंधी श्रृंगारिक गीत, किंतु शक्ति और शिव विषयक कविताओं का भी (जिन्हें क्रमशः गोसाउनिक गीत और नचारी कहते हैं) लोग अभ्यास करने लगे। विद्यापति के समकालीन कवियों में अमृतकर, चंद्रकला, भानु, दशावधान, विष्णुपुरी, कवि शेखर यशोधर, चतुर्भुज और भीषम कवि उल्लेखनीय हैं। विद्यापति के परवर्ती कवियों में, महाराज कंसनारायण (लगभग 1527 ई0) के दरबार में रहनेवाले कवियों का नाम लिया जाता है। इनमें सबसे प्रसिद्ध लोकप्रिय कवि गोविंद हुए। ये गोविंददास से भिन्न थे और इनकी पदावली 'कंसनारायण पदावली' में मिलती है। विद्यापति परंपरा के परकालीन कवियों में महिनाथ ठाकुर, लोचन झा, हर्षनाथ झा और चंदा झा के नाम गिनाए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल में तीन कवि प्रसिद्ध हुए जिन्होंने विद्यापति के शिव और शक्ति विषयक पदों का विशेष अनुकरण किया। उनके नाम हैं सिंह नरसिंह, भूपतींद्र मल्ल और जगतप्रकाश मल्ल।

मध्य काल

मध्यकाल में मुसलमानों के आक्रमणों के कारण मिथिला में कई वर्षो तक अराजकता रही। ओइनिवार वंश के नष्ट होने के बाद मिथिला के अधिकतर विद्वान कवि और संगीतज्ञ नेपाल के राजदरबारों में संरक्षण के लिये चले गए। वहाँ के मल्ल राजाओं की काव्य और नाटक का बड़ा शौक था। इसलिए मध्ययुगीन मैथिली साहित्य का एक बड़ा अंश नेपाल में ही लिखा गया।

नेपाल में रचित साहित्य में नाट्य साहित्य मुख्य था। पहले संस्कृत के नाटकों में मैथिली गानों का संनिवेश करना आरंभ हुआ। क्रमशः उनमें संस्कृत और प्राकृत का व्यवहार कम होने लगा और मैथिली में ही संपूर्ण नाटक लिखे जाने लगे। अंत में संस्कृत नाटक की भी रूपरेखा छोड़ दी गई और एक अभिनव गीतिनाट्य की परंपरा स्थापित हुई। इनमें संगीत की प्रधानता रहती थी। अधिकांश कथानक संकेत में ही व्यक्त होता था और गद्य का व्यवहार नहीं होता था। राजसभाओं में ही ये नाटक अभिनीत होते थे। रंगमंच खुला रहता था और अभिनय दिन में होता था। कथानक नवीन नहीं हुआ करते थे- बहुधा पुराने पौराणिक आख्यान या नाटक को ही फिर से गीतिनाट्य का रूप देकर अथवा केवल संशोधन करके ही उपस्थित कर देते थे।

नेपाली नाटककारों की कार्यभूमि मुख्यतः तीन स्थानों में रही- भक्तपुर, काठमांडू और पाटन। भक्तपुर में सबसे अधिक नाटक लिखे गए और अभिनीत

हुए। मुख्य नाटककार पाँच हुए- जगज्योतिर्मल्ल, जगत्प्रकाश मल्ल, जितामित्र मल्ल, भूपतींद्र मल्ल और रणजित मल्ल। इनमें सबसे अधिक नाटक रणजित मल्ल ने लिखे। इनके बनाए 19 नाटकों का पता अब तक लगा है। काठमांडू में सबसे प्रसिद्ध नाटककार वंशमणि झा हुए। पाटन में सबसे बड़े कवि और नाटककार सिद्धिनरसिंह मल्ल (1620-1657) हुए।

नेपाली नाटकों की परम्परा 1768 ईस्वी में नष्ट हो गई, जब महाराज पृथ्वीनारायण शाह ने वहाँ के मल्ल राजाओं को हराकर गुरखों का राज्य स्थापित किया।

मध्यकाल-2 (1600-1660)

मैथिली नाटक मिथिला के राजदरबारों में गीतिनाट्य परंपरा बन रही थी जिसको 'कीर्तनिया नाटक' कहते हैं।

कीर्तनिया नाटक का आरम्भ प्रायरू शिव या कृष्ण के चरित्र का कीर्तन करने से हुआ। परंतु वे धार्मिक नाटक नहीं होते थे। कीर्तनिया का अभिनय रात को होता था तथा इसका अपना विशेष संगीत हुआ करता था, जिसे नादी कहते हैं।

कीर्तनिया नाटकों के आरंभ में भी केवल मैथिली गानों को संस्कृत नाटकों में रखा जाता था। ये गान संस्कृत श्लोंकों या वाक्यों का अर्थमात्र ललित भाषा में स्पष्ट करते थे। हाँ, कभी-कभी स्वतंत्र गान का भी उपयोग होता था। क्रमशः लगभग संपूर्ण नाटक मैथिली गानमय होने लगा।

कीर्तनिया नाटककारों को तीन कालों में विभक्त किया जा सकता हैं-1350-1700 तक, 1700-1900 तक और 1900-1950 तक।

पहले काल में विद्यापति का गोरक्षविजय, गोविंद कवि नलचरितनाट, रामदास का अनंदविजय, देवानन्द का उषाहरण, उमापति का पारिजातहरण और रमापति का रुकमणि परिणय गिने जा सकते हैं। इसमें सबसे लोकप्रिय और प्रसिद्ध उमापति उपाध्याय (18वीं शताब्दी) हुए।

दूसरे काल के मुख्य नाटककार हैं- लाल कवि, नंदीपति, गाकुलानंद, जयानंद कान्हाराम, रत्नपाणि, भानुनाथ और हर्षनाथ। इनमें लाल कवि का गौरी स्वयंवर और हर्षनाथ का उषाहरण तथा माघवानंद अधिक प्रसिद्ध और साहित्यक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

तीसरे काल के लेखक विश्वनाथ झा, 'बालाजी', चंदा झा और राजपंडित बलदेव मिश्र हैं। इनके नाटकों में प्राचीन कवियों के गानों और पदों की ही पुनरुक्ति अधिक हैं, नाटकीय संघर्ष का नितांत अभाव है।

मध्यकाल-3 (1600-1690ई.)

मैथिली नाटक (असम में) सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में मैथिली नाटक का एक रूप असम में भी विकसति हुआ, सुखन जिसे अंकिया-नाट कहते हैं। यह उपर्युक्त दोनों नाटकों की परंपराओं से भिन्न प्रकार का हुआ। इसमें लगभग संपूर्ण नाटक गद्यमय ही होता था। सूत्रधार पूरे पूरे नाटक में अभिनय करता था। अभिनय से अधिक वर्णनचमत्कार या पाठ की ओर ध्यान था। इन नाटकों का उद्देश्य मनोविनोद मात्र नहीं था, वरन् वैष्णव धर्म का प्रचार करना था। अधिकतर ये नाटक कृष्ण की वात्सल्यमय लीलाओं का वर्णन करते थे। इनमें एक ही अधिक अंकर नहीं होते थे।

अंकिया नाटककारों में शंकरदेव (1449-1558), माधवदेव और गोपालदेव के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध शंकर देव हुए। इनका रुक्मणीहरण नाटक असम में सबसे अधिक लोकप्रिय हैं।

मध्यकाल-4 (1600-1890)

गद्य साहित्य- इस काल के प्राचीन दानपत्र एवं पत्रों से मैथिली गद्य के स्वरूप का विकास जाना जा सकता है। इनसे उस समय के दास प्रथा संबंधी विषयों का पूर्ण ज्ञान होता हैं।

विद्यापति परंपरा के अतिरिक्त जो गीतिकाव्यकार हुए उनमें भज्जन कवि, लाल कवि, कर्ण श्याम प्रभृंति मुख्य हैं। पद्य का एक नया विकास लंबे काव्य, महाकाव्य, चरित और सम्मर के रूप में हुआ इनके लेखकों में कृष्णजन्म कर्ता मनवोध, नंदापति रतिपति और चक्रपाणि उल्लेखनीय हैं।

तीसरी धारा काव्यकर्ताओं की वह हुई जिसमें संतों ने (विशेषकर वैष्णव संतों ने) गीत लिखे। इनमें सबसे प्रसिद्ध साइब रामदास हुए। इनकी 'पदावली' का रचनाकाल 1746 ई. है।

आधुनिक काल

सन् 1860 ई में मिथिला में आधुनिक जीवन का सूत्रपात हुआ। सिपाही विद्रोह से जो अराजकता छा गई थी वह दूर हुई। पश्चिमी शिक्षा का प्रचार होने

लगा, रेल और तार का व्यवहार आरंभ हुआ, स्वायत्त शासन की सुविधा हुई तथा मुद्रणालयों की स्थापना होने लगी। इसी समय कतिपय साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं की स्थापना हुई जो नव जाग्रति के कार्य को पूर्ण करने में संलग्न हुई। फलस्वरूप लोगों की अभिरुचि प्राचीन साहित्य के अन्वेषण और अध्ययन की और गई और नवीन युग के अनुरूप साहित्य की नींव पड़ी।

नवयुग के निर्माण में कवीश्वर चंदा झा (मृत्यु 1907 ई।) का नाम सबसे महत्वपर्ण है। इनके महाकाव्य 'रामायण' की रचना से मैथिली भाषा का गौरव ऊँचा हुआ।

आधुनिक युग गद्य का युग है। मैथिली समाचारपत्रों ने गद्य के विकास में महत्वपूर्ण सहायता दी। इसीलिये मैथिलहितसाधन, मिथ्थिलामोद, मिथिलामिहिर और मिथिला के नाम मैथिली गद्य के इतिहास में अमर हैं। मैथिली लेखशैली की वैज्ञानिक पद्धति का निर्ण म. भ. डॉ. श्री उमेश मिश्र, रमानाथ झा और वैयाकरणों के द्वारा (विशेषत: दीनबंधु झा द्वारा) हो जाने से आधुनिक गद्य का रूप परिपक्व हो गया है।

किन्तु मैथिली के सर्वाङीन विकास में बाबू भोलालादास का, जो योगदान है वह अप्रतिम है। उन्होने न केवल मैथिली को विश्वविद्यालय के अध्यापन क्षेत्र में प्रवेश दिलवाया अपितु मैथिली में लिखने हेतु अन्यान्य लेखको को प्रेरित किया और मैथिली में अनेक कथाकारो और निबन्धकारो के जन्मदाता साबित हुए। मैथिली के प्रथम व्याकरनाचार्य और बाल साहित्यकार अगर बाबू भोलालाल दास को माना जाय तो कोइ अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह भी उन्ही की देन है कि मैथिली भारतीय सन्विधान की 8वीं अनुसूची में स्थान प्राप्त कर सका।

उपन्यास और कहानी आधुनिक युग की प्रमुख देन है। इन क्षेत्रों में पहले अनुवाद अधिक हुए, जिनमें परमेश्वर झा के सामंतिनी आख्यान का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आरंभ्भ में रासबिहारीलाल दास, जनार्दन झा, भोला झा और पुण्यानंद झा की कृतियों प्रसिद्ध हुई। इधर आकर हरिमोहन झा ने 'कन्यादान' और 'द्विरागमन' में मैथिली उपन्यास को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। व्यंग्य, चामत्कारिक भाषा और सजीव चित्रण इनकी विशेषताएँ हैं। 'सरोज यात्री', 'व्यास', झा प्रभृति गत दशक के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। इन्होंने सामाजिक जीवन के निकटतम पहलुओं को दिखलाने की चेष्टा की है। 21वीं सदी में गौरीनाथ का उपन्यास दाग खासा चर्चित रहा है।

'गल्पलेखकों में विद्यासिंधु', 'सरोज', 'किरण', 'भुवन' आदि उल्लेखनीय कलाकर (हरिमोहन झा हास्य रस की अत्यंत हृदयग्राही कहानियाँ लिखते हैं)। यंगानंद सिंह, नगेंद्रकुमार, मनमोहन, उमानाथ झा और उपेंद्रनाथ झा हमारे उच्च श्रेणी के कहानीकार है। रमाकर, शेखर, यात्री और अमर कल्पनाशील कहानियाँ लिखते हैं।

निबंध के स्वरूप आदि में देशोन्नति की भावना व्याप्त है। गंगानंद सिंह, भुवन जी, उमेंश मिश्र प्रभृति गंभीर लेख लिखते हैं। भाषा और साहित्य पर लिखनेवालों में दीनबंधु झा, डॉ. सुभद्र झा, गंगापति सिंह, नरेंद्रनाथ दास प्रभृति अग्रगझय हैं। दार्शनिक गद्य क्षेमधारी सिंह, डॉ. सर गंगानाथ झा आदि ने लिखा है।

आधुनिक मैथिली काव्य की दो मुख्य धाराएँ है, एक प्राचीनतावादी और दूसरी नवीनतावादी। प्राचनतावादी कवि महाकाव्य, खंडकाव्य, परंपरागत गीतिकाव्य, मुक्तक काव्य आदि लिखते हैं। इनमें मुख्य कवि चंदा झा, रघुनंवदनदास, लालदास, बदरीनाथ झा, दत्तबंधु, गणनाथ झा, सीताराम झा, ऋद्धिनाथ झा और जीवन झा हैं। नवीन धारा में देशभक्ति का काव्य, आधुनिक गतिकाव्य, वर्णनात्मक और हास्यत्मक काव्य गिनाए जा सकते हैं। इनमें यदुवर और राधवाचार्य, भुवन, सुमन, मोहन और यात्री, एवं अमर तथा हरिमोहन झा उल्लेखनीय हैं।

मैथिली के गौरवर्पूण इतिहास में पध के साथ साथ गध साहित्य का अनुपम योगदान है। यहाँ के ग्रामीणाँ में गोनु झा के चतुराई की कहानियाँ अत्यन्त लोकप्रिय है। यहाँ की भूमि देवस्पर्श की धनी है। यहाँ की भूमि राम सिया के पावन विवाह की साक्षी बनी। यहाँ इस विवाह से संबंधित लोक गीत अति लोकप्रिय हैं।

13

मगही भाषा

मगही या मागधी भाषा भारत के मध्य पूर्व में बोली जाने वाली एक प्रमुख भाषा है। इसका निकट का संबंध अवधी भोजपुरी और मैथिली भाषा से है और अक्सर ये भाषाएँ एक ही साथ बिहारी भाषा के रूप में रख दी जाती हैं। इसे देवनागरी लिपि में लिखा जाता है। मगही बोलने वालों की संख्या (2002) लगभग 1 करोड़ 30 लाख है। मुख्य रूप से यह बिहार के गया, पटना, राजगीर, नालंदा, जहानाबाद, अरवल, नवादा, शेखपुरा, लखीसराय, जमुई, मुंगेर, औरंगाबाद के इलाकों में बोली जाती है।

मागधी उस प्राकृत का नाम है, जो प्राचीन काल में मगध (दक्षिण बिहार) प्रदेश में प्रचलित थी। इस भाषा के उल्लेख महावीर और बुद्ध के काल से मिलते हैं। जैन आगमों के अनुसार तीर्थकर महावीर का उपदेश इसी भाषा अथवा उसी के रूपांतर अर्धमागधी प्राकृत में होता था। पालि त्रिपिटक में भी भगवान बुद्ध के उपदेशों की भाषा को मागधी कहा गया है।

मगही का धार्मिक भाषा के रूप में भी पहचान है। कई जैन धर्मग्रंथ मगही भाषा में लिखे गए हैं। मुख्य रूप से वाचिक परंपरा के रूप में यह आज भी जीवित है। मगही का पहला महाकाव्य गौतम महाकवि योगेश द्वारा 1960–62 के बीच लिखा गया। दर्जनो पुरस्कारो से सम्मानित योगेश्वर प्रसाद सिन्ह योगेश आधुनिक मगही के सबसे लोकप्रिय कवि माने जाते है। 23 अक्टूबर को उनकी जयन्ति मगही दिवस के रूप में मनाई जा रही है।

मगही भाषा में विशेष योगदान हेतु सन् 2002 में डॉ. रामप्रसाद सिंह को साहित्य अकादमी भाषा सम्मान दिया गया।

ऐसा कुछ विद्वानों का मानना है कि मगही संस्कृत भाषा से जन्मी हिन्द आर्य भाषा है, परंतु महावीर और बुद्ध दोनों के उपदेश की भाषा मागधी ही थी। बुद्ध ने भाषा की प्राचीनता के सवाल पर स्पष्ट कहा है- 'सा मागधी मूल भाषा'। अत: मगही 'मागधी' से ही निकली भाषा है। इसकी लिपी कैथी है।

विशेषताएँ

प्राकृत व्याकरणों के अनुसार मागधी प्राकृत के तीन विशेष लक्षण थे--

(1) र के स्थान पर ल का उच्चारण, जैसे राजा झ लाजा य

(2) स श ष इन तीनों के स्थान पर श का उच्चारण, जैसे परुष झ पुलिश, दासी झ दाशी, यासि झ याशि य

(3) अकारांत 'ब्दों के कर्ताकारक एकवचन की विभक्ति 'ए', जैसे नर झ नले।

मगधी प्राकृत में लिखा हुआ कोई स्वतंत्र साहित्य उपलब्ध नहीं है, किंतु खंडशरू उसके उदाहरण हमें प्राकृत व्याकरणों एवं संस्कृत नाटकों जैसे शकुतंला, मुद्राराक्षस, मृच्छकटिक आदि में मिलते हैं। भरत नाट्यशास्त्र के अनुसार गंगासागर अर्थात्ब गंगा से लेकर समुद्र तक के पूर्वीय प्रदेशों में एकारबहुल भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा है कि राजाओं के अंत:पुर निवासी मागधी बोलें, तथा राजपुत्र सेठ चेट अर्द्धमागधी। मृच्छकटिक में शकार, वसंतसेना और चारुदत्त इन तीनों के चेटक, तथा संवाहक, भिक्षु और चारुदत्त का पुत्र ये छह पात्र मागधी बोलते हैं।

आधुनिक मगही (मागधी) काल औपनिवेशिक समय में आरंभ होता है। इस काल में लोकभाषा और लोकसाहित्य सम्बन्धी अध्ययन के परिणामस्वरुप मगही के प्राचीन परम्परागत लोकगीतों, लोककथाओं, लोकनाट्यों, मुहावरों, कहावतों तथा पहेलियों का संग्रह कार्य हुआ। साथ ही मगही भाषा में आधुनिक और समकालीन समाज-परिवेश और जीवन संबंधी साहित्य, अर्थात् कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, एकांकी, ललित निबन्ध आदि की रचनाएँ, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं भाषा और साहित्य पर नवीन दृष्टि से अनुसंधान हुए तथा हो रहे हैं।

मगही भाषा-साहित्य

'ए हैंडबुक ऑफ द कैथी कैरेक्टर' (1881), 'लैंग्वेज ऑफ मग्गहिया डोम्स' (1887), अनंत प्रसाद बनर्जी-शास्त्री कृत 'इवोल्यूशन ऑफ मगही' (1922), हरप्रसाद शास्त्री कृत 'मगधन लिटरेचर' (1923), 'द बर्थ ऑफ लोरिक' (मगही) टेक्सट् (1929), प्रो. रामशंकर कृत 'मगही' (1958), प्रो. कपिलदेव सिंह कृत 'मगही का आधुनिक साहित्य' (1969), डॉ. युगेश्वर पांडेय कृत 'मगही भाषा' (1969), डा. श्रीकांत शास्त्री कृत 'मगही शोध' (1969), सम्पत्ति अर्याणी कृत 'मगही भाषा और साहित्य' (1976), रास बिहारी पांडेय कृत 'मगही साहित्य व साहित्यकार' (1976), रास बिहारी पांडेय कृत 'मगही भाषा का इतिहास' (1980), असीम मैत्र कृत 'मगही कल्चररू ए मोनोग्राफिक स्टडी' (1983), डॉ. ब्रजमोहन पांडेय 'नलिन' कृत 'मगही अर्थ विज्ञानरू विश्लेषणात्मक निर्वचन' (1982), 'मगही भाषा निबंधावली (1984), राहुल सांकृत्यायन कृत 'पाली साहित्य का इतिहास' (1993), डा. राम प्रसाद सिंह कृत 'मगही साहित्य का इतिहास' (1998), डा. सत्येंद्र कुमार सिंह कृत 'मगही साहित्य का इतिहास' (2002), एसईआरटी, बिहार टेक्सट् बुक कमिटि, पटना का 'मगही भासा आउ साहित्य के कथा', सरयू प्रसाद कृत 'मगही फोनोलॉजीरू ए डिस्क्रीप्टिव स्टडी (2008), धनंजय श्रेत्रिय संपादित 'मगही भाषा का इतिहास एवं इसकी दिशा और दशा' (2012) और डॉ. लक्ष्मण प्रसाद कृत 'मगही साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' (2014)।

मगही लोक साहित्य

डॉ. उमशंकर भट्टाचार्य कृत 'मगही कहावत' (1919), जयनाथ पति और महावीर सिंह कृत 'मगही मुहावरा बुझौवल' (1928), डा. विश्वनाथ प्रसाद कृत 'मगही संस्कार गीत' (1962), सम्पत्ति अर्याणी कृत 'मगही लोक साहित्य' (1965), डॉ. राम प्रसाद सिंह कृत 'मगध की लोक कथाएं अनुशीलन' (1996), डॉ. राम प्रसाद सिंह कृत 'मगही लोक गीत के संग्रह' (1998), इनामुल हक कृत 'मगही लोकगाथाओं का साहित्यिक अनुशीलन' (2006) घमंडीदास कृत मगही रामायण आदि।

मगही गीत-काव्य

प्रबन्ध काव्य एवं महाकाव्य– जनहरिनाथ (हरिनाथ मिश्र) कृत 'ललित भागवत' और 'ललित रामायण' (1893), जवाहिर लाल कृत 'मगही

रामायण' (), रामप्रसाद सिंह कृत 'लोहा मरद' (), योगेश्वर प्रसाद सिंह 'योगेश' कृत 'गौतम' (), योगेश पाठक कृत 'जरासंध' () आदि।

खण्ड काव्य– मिथिलेश प्रसाद 'मिथिलेश' कृत 'रधिया' (), रामप्रसाद सिंह कृत 'सरहपाद' () आदि।

मुक्तक गीत एवं काव्य– जौन क्रिश्चियन कृत 'सत्य-शतक' (1861), जगन्नाथ प्रसाद 'किंकर' कृत 'मगही गीत संग्रह' (1934), मुनक्का कुँअर कृत 'मुनक्का कुँअर भजनावली' (1934), श्रीनंदन शाली कृत 'अप्पन गीत', योगेश्वर प्रसाद 'योगेश' कृत 'इँजोर' (1946), रामनरेश प्रसाद वर्मा कृत 'च्यवन' (), स्वर्णकिरण कृत 'जीवक' (), 'सुजाता' (), सुरेश दूबे 'सरस' कृत 'निहोरा' (), कपिलदेव त्रिवेदी 'देव' कृत 'मगही सनेस' (1965), रामविलास रजकण कृत 'वासंती' (1965), रजनीगंधा' (1968), 'दूज के चान' (1979), 'पनसोखा (1979), योगेश्वर प्रसाद 'योगेश' कृत 'लोहचुट्टी' (1966), रामसिंहासन सिंह 'विद्यार्थी' कृत 'जगरना' (1967), रामपुकार सिंह राठौर कृत 'औजन' (), राम प्रसाद सिंह कृत 'परस पल्लव' (1977) डॉ राम सिंहासन सिंह कृत 'अँचरा के छाँव मेंश(2015) आदि।

मगही कथा (कहानी) साहित्य

तारकेश्वर भारती कृत 'नैना काजर', जितेन्द्र वत्स कृत 'किरिया करम', श्रीकान्त शास्त्री कृत 'मगही कहानी सेंगरन', राजेश्वर पाठक 'राजेश' कृत 'नगरबहू', लक्ष्मण प्रसाद कृत 'कथा थउद', रामनरेश प्रसाद वर्मा कृत 'सेजियादान', अभिमन्यु प्रसाद मौर्य कृत 'कथा सरोवर', अलखदेव प्रसाद अचल कृत 'कथाकली', सुरेश प्रदास निर्द्वेन्द्ध कृत 'मुरगा बोल देलक', राधाकृष्ण कृत 'ए नेउर तू गंगा जा', रामनन्दन कृत 'लुट गेलिया', ब्रजमोहन पाण्डेय 'नलिन' कृत 'एक पर एक', रामचन्द्र अदीप कृत 'गमला में गाछ' और 'बिखरइत गुलपासा', दयानंद प्रसाद 'बटोही' कृत 'कफनखोर', शिव प्रसाद लोहानी कृत 'घोटाला घर', रामविलास रजकण कृत 'कथांकुर', मिथिलेश कृत 'कनकन सोरा', मुद्रिका सिंह कृत 'जोरन' आदि।

मगही कथा (उपन्यास) साहित्य

मगही में प्रकाशित उपन्यासों की सूची इस प्रकार है - जयनाथ पति कृत 'सुनीता' (1927), 'फूल बहादुर' (1928) और गदहनीत (1937), डा. राम

प्रसाद सिंह कृत 'समस्या' (1958), राजेन्द्र प्रसाद यौधेय कृत 'बिसेसरा' (1962), राम नन्दन कृत 'आदमी आ देवता' (1965), बाबूलाल मधुकर कृत 'रमरतिया' (1968), द्वारिका प्रसाद कृत 'मोनामिम्मा' (1969), चन्द्रशेखर शर्मा कृत 'हाय रे उ दिन' (), 'सिद्धार्थ' () और 'साकल्य' (), शशिभूषण उपाध्याय मधुकर कृत 'सँवली' (1977), श्रीकान्त शास्त्री कृत 'गोदना' (1978), उपमा दत्त कृत 'पियक्कड़' (), सत्येन्द्र जमालपुरी कृत 'चुटकी भर सेनुर' (1978), रामनरेश प्रसाद वर्मा कृत 'अछरंग' (1980), केदार 'अजेय' कृत 'बस एक्के राह' (1988), रामप्रसाद सिंह कृत 'नरक-सरग-धरती' (1992), रामविलास 'रजकण' कृत 'धूमैल धोती' (1995), डा. राम प्रसाद सिंह कृत 'बराबर के तरहटी में' (), 'सरद राजकुमार' () और 'मेधा' (), मुनिलाल सिन्हा 'सीसम' कृत 'प्राणी महासंघ' (1995), बाबूलाल मधुकर कृत 'अलगंठवा' (2001), आचार्य सच्चिदानन्द कृत 'बबुआनी अइँठन छोड़ऽ' (2004), परमेश्वरी सिंह 'अनपढ़' कृत 'बाबा मटोखर दास' (), मुनिलाल सिन्हा 'सीसम' कृत 'गोचर के रंगे गोरू गोरखियन के संग' (), रामबाबू सिह 'लमगोड़ा' कृत 'उनतीसवाँ व्यास' () और 'टुन-टुनमें-टुन' (), परमेश्वरी सिंह 'अनपढ़' कृत 'शालिस' (2006), रामनारायण सिंह उर्फ पासर बाबू कृत 'तारा' (2011) और अश्विनी कुमार पंकज कृत 'खाँटी किकटिया' (2018)

मगही के प्रमुख साहित्यकार

मगही विद्वान और साहित्यकार श्रीकान्त शास्त्री आधुनिक मगही साहित्य की चेतना का आरम्भ श्रीकृष्णदेव प्रसाद की रचनाओं से मानते हैं। आधुनिक मगही साहित्य को विविध विधाओं के जरिए कवियों, लेखकों, नाटककारों, कहानीकारों, उपन्यासकारों एवं निबन्धकारों ने समृद्ध किया है। इनमें पुरानी और नयी पीढ़ी दोनों साहित्यधर्मी समान रूप से मगही में सृजनरत है।

ऐसे मगही साहित्यकारों में जयनाथ पति, श्रीकान्त शास्त्री, श्रीकृष्णदेव प्रसाद, रामनरेश, पाठक, जयराम सिंह, रामनन्दन, मृत्युञ्जय मिश्र 'करुणेश', योगेश्वर सिंह 'योगेश', राम नरेश मिश्र 'हंस', बाबूलाल 'मधुकर', सतीश मिश्र, रामकृष्ण मिश्र, रामप्रसाद सिंह, रामनरेश प्रसाद वर्मा, रामपुकार सिंह राठौर, गोवर्धन प्रसाद सदय, सूर्यनारायण शर्मा, मथुरा प्रसाद 'नवीन', श्रीनन्दन शास्त्री,

सुरेश दूबे 'सरस', शेषानन्द मधुकर, रामप्रसाद पुण्डरीक, अनिक विभाकर, मिथिलेश जैतपुरिया, राजेश पाठक, सुरेश आनन्द पाठक, देवनन्दन विकल, रामसिंहासन सिंह विद्यार्थी, श्रीधर प्रसाद शर्मा, कपिलदेव प्रसाद त्रिवेदी, 'देव मगहिया', हरिश्चन्द्र प्रियदर्शी, हरिनन्दन मिश्र 'किसलय', रामगोपाल शर्मा 'रुद्र', रामसनेही सिंह 'सनेही', सिद्धेश्वर पाण्डेय 'नलिन', राधाकृष्ण राय आदि के नाम प्रमुख हैं।

14

छत्तीसगढ़ी भाषा

छत्तीसगढ़ी भारत के छत्तीसगढ़ राज्य में बोली जाने वाली एक अत्यन्त ही मधुर व सरस भाषा है। यह हिन्दी के अत्यन्त निकट है और इसकी लिपि देवनागरी है। छत्तीसगढ़ी का अपना समृद्ध साहित्य व व्याकरण है। छत्तीसगढ़ी 2 करोड़ लोगों की मातृभाषा है। यह पूर्वी हिन्दी की प्रमुख बोली है और छत्तीसगढ़ राज्य की प्रमुख भाषा है। राज्य की 82.56 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में तथा शहरी क्षेत्रों में केवल 17 प्रतिशत लोग रहते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि छत्तीसगढ़ का अधिकतर जीवन छत्तीसगढ़ी के सहारे गतिमान है। यह अलग बात है कि गिने-चुने शहरों के कार्य-व्यापार राष्ट्रभाषा हिन्दी व उर्दू, पंजाबी, उड़िया, मराठी, गुजराती, बाँग्ला, तेलुगु, सिन्धी आदि भाषा में एवं आदिवासी क्षेत्रों में हलबी, भतरी, मुरिया, माडिया, पहाड़ी कोरवा, उराँव आदि बोलियों के सहारे ही संपर्क होता है। इस सबके बावजूद छत्तीसगढ़ी ही ऐसी भाषा है, जो समूचे राज्य में बोली व समझी जाती है। एक दूसरे के दिल को छू लेने वाली यह छत्तीसगढ़ी एक तरह से छत्तीसगढ़ राज्य की संपर्क भाषा है। वस्तुतः छत्तीसगढ़ राज्य के नामकरण के पीछे उसकी भाषिक विशेषता भी है।

छत्तीसगढ़ी के प्रारम्भिक लिखित रूप के बारे में कहा जाता है कि वह 1703 ईस्वी के दन्तेवाड़ा के दंतेश्वरी मंदिर के मैथिल पण्डित भगवान मिश्र द्वारा लिखित शिलालेख में है।

छत्तीसगढ़ी साहित्य

श्री प्यारेलाल गुप्त अपनी पुस्तक ' प्राचीन छत्तीसगढ़' में बड़े ही रोचकता से लिखते है - ' छत्तीसगढ़ी भाषा अर्धमागधी की दुहिता एवं अवधी की सहोदरा है ' छत्तीसगढ़ी और अवधी दोनों का जन्म अर्धमागधी के गर्भ से आज से लगभग 1080 वर्ष पूर्व नवीं-दसवीं शताब्दी में हुआ था।

डॉ. भोलानाथ तिवारी, अपनी पुस्तक ' हिन्दी भाषा' में लिखते है - ' छत्तीसगढ़ी भाषा भाषियों की संख्या अवधी की अपेक्षा कहीं अधिक है और इस दृष्टि से यह बोली के स्तर के ऊपर उठकर भाषा का स्वरुप प्राप्त करती है।ष

भाषा साहित्य पर और साहित्य भाषा पर अवलंबित होते है। इसीलिये भाषा और साहित्य साथ-साथ पनपते है। परन्तु हम देखते है कि छत्तीसगढ़ी लिखित साहित्य के विकास अतीत में स्पष्ट रूप में नहीं हुई है। अनेक लेखकों का मत है कि इसका कारण यह है कि अतीत में यहाँ के लेखकों ने संस्कृत भाषा को लेखन का माध्यम बनाया और छत्तीसगढ़ी के प्रति जरा उदासीन रहे।

इसीलिए छत्तीसगढ़ी भाषा में जो साहित्य रचा गया, वह करीब एक हजार साल से हुआ है।

अनेक साहित्यकों ने इस एक हजार वर्ष को इस प्रकार विभाजित किया है–

(1) गाथा युग (सन् 1000 से 1500 ई. तक)
(2) भक्ति युग - मध्य काल (सन् 1500 से 1900 ई. तक)
(3) आधुनिक युग (सन् 1900 से आज तक)

ये विभाजन साहित्यिक प्रवृत्तियों के अनुसार किया गया है यद्यपि प्यारेलाल गुप्त जी का कहना ठीक है कि - साहित्य का प्रवाह अखण्डित और अव्याहत होता है।' श्री प्यारेलाल गुप्त जी ने बड़े सुन्दर अन्दाज से आगे कहते है - ' तथापि विशिष्ट युग की प्रवृत्तियाँ साहित्य के वक्ष पर अपने चरण-चिह्न भी छोड़ती है–प्रवृत्यानुरुप नामकरण को देखकर यह नहीं सोचना चाहिए कि किसी युग में किसी विशिष्ट प्रवृत्तियों से युक्त साहित्य की रचना ही की जाती थी। तथा अन्य प्रकार की रचनाओं की उस युग में एकान्त अभाव था।

यह विभाजन किसी प्रवृत्ति की सापेक्षिक अधिकता को देखकर किया गया है। एक और उल्लेखनीय बत यह है कि दूसरे आर्यभाषाओं के जैसे छत्तीसगढ़ी में भी मध्ययुग तक सिर्फ पद्यात्मक रचनाएँ हुई है।

छत्तीसगढ़ी पूर्वी हिंदी की तीन विभाषाओं में से एक है। यह रायगढ़, सरगुजा, विलासपुर, रायपुर, दुर्ग, जबलपुर तथा बस्तर आदि में बोली जाती है। संभलपुर में तथा उसके आसपास छत्तीसगढ़ी लरिया कहलाती है। छत्तीसगढ़ी भाषा मराठी तथा उड़िया भाषाओं से प्रभावित हुई है।

छत्तीसगढ़ी साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्त्व वर्तमान हैं। इस साहित्य में अनेक लोककथाएँ हैं, जिनके मूल भाव भारत की अन्य भाषाओं में भी सामान्य रूप से पाए जाते हैं। कहीं कहीं स्थानीय तथा सामयिक ढंग से इन कथाओं की रोचकता बढ़ गई है। छत्तीसगढ़ी पँवाड़ों के प्रबन्धगीत किसी न किसी कहानी पर आधारित हैं। पँवाड़ों के केंद्रविन्दु बहुधा ऐतिहासिक है। वीरगाथाओं में राजा वीरसिंह की गाथा प्रसिद्ध है। इसमें मध्यकालीन विश्वासों की प्रचुरता है। कुछ गीतों में देवता के पराक्रम का वर्णन है। श्रवणकुमार संबंधी 'सरवन' के गीत तथा 'सरवन' की गाथा प्रसिद्ध है। छत्तीसगढ़ी में ऋतुगीत, नृत्यगीत, संस्कारगीत, धार्मिक गीत, बालकगीत तथा अन्य प्रकार के विविध गीत पाए जाते हैं। लोकोक्तियों तथा पहेलियों की भी कमी नहीं है।

कबीर दास के शिष्य और उनके समकालीन (संवत 1520) धनी धर्मदास को छत्तीसगढ़ी के आदि कवि का दर्जा प्राप्त है, जिनके पदों का संकलन व प्रकाशन हरि ठाकुर जी ने किया है। बाबू रेवाराम के भजनों ने छत्तीसगढ़ी की इस शुरुआत को बल दिया।

पद्य साहित्य

छत्तीसगढ़ी के उत्कर्ष को नया आयाम दिया–पं. सुन्दरलाल शर्मा, लोचन प्रसाद पांडेय, मुकुटधर पांडेय, नरसिंह दास वैष्णव, बंशीधर पांडेय, शुकलाल पांडेय ने। कुंजबिहारी चौबे, गिरिवरदास वैष्णव ने राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में अपनी कवितीओं की अग्नि को साबित कर दिखाया। इस क्रम में पुरुषोत्तम दास एवं कपिलनाथ मिश्र का उल्लेख भी आवश्यक होगा। 70 के दशक में पं. द्वारिका प्रसाद तिवारी, बाबू प्यारेलाल गुप्त, कोदूराम दलित, हरि ठाकुर, श्यामलाल चतुर्वेदी, कपिलनाथ कश्यप, बद्रीविशाल परमानंद, नरेन्द्र देव वर्मा, हेमनाथ यदु, भगवती सेन, नारायणलाल परमार, डॉ. विमल कुमार पाठक, लाला जगदलपुरी, केयूर भूषण, डॉ. सुरेश तिवारी, बृजलाल शुक्ल आदि ने छत्तीसगढ़ी साहित्य की विषय विविधता को सिद्ध कर दिखाया।

छत्तसीगढ़ी भाषा और रचनाओं को लोकप्रिय बनाने में दानेश्वर शर्मा, पवन दीवान, लक्ष्मण मस्तुरिहा, रामेश्वर वैष्णव और विमल पाठक ने न केवल कवि सम्मेलनों के मंचों में अपना लोहा मनवाया अपितु उन्होंने सार्थक एवं अकादमिक लेखन भी किया है, जो इस प्रदेश के जन-जन के मन में रमे हैं। इधर डॉ. सुरेन्द्र दुबे ने देश-विदेश के मंचों में कविता पढ़कर छत्तीसगढ़ी का मान बढ़ाया है। छत्तीसगढ़ी के विकास में विद्याभूषण मिश्र, मुकुन्द कौशल, हेमनाथ वर्मा विकल, मन्नीलाल कटकवार, बिसंभर यादव, माखनलाल तंबोली, रघुवर अग्रवाल पथिक, डॉ. सुरेश तिवारी, ललित मोहन श्रीवास्तव, डॉ. पालेश्वर शर्मा, श्री राम कुमार वर्मा बाबूलाल सीरिया, नंदकिशोर तिवारी, मुरली चंद्राकर, प्रभंजन शास्त्री, रामकैलाश तिवारी, एमन दास मानिकपुरी का विशेष योगदान रहा है। डॉ. हीरालाल शुक्ल, डॉ. बलदेव, डॉ. मन्नूलाल यदु, डॉ. बिहारीलाल साहू, डॉ. चितरंजन कर, डॉ. सुधीर शर्मा, डॉ. व्यासनारायण दुबे, डॉ. केशरीलाल वर्मा, डॉ. निरुपमा शर्मा,उर्मिला शुक्ल इनका छत्तीसगढ़ कविता के क्षेत्र में एक अलग स्थान है। मृणालिका ओझा, डॉ. विनय पाठक ने भाषा एवं शोध के क्षेत्र में जो कार्य किया है वह मील का पत्थर है।

गद्य साहित्य

छत्तीसगढ़ी का गद्य साहित्य भी निरन्तर पुष्ट हो रहा है। इसके प्रमाण में हम हीरू के कहिनी, (पं. वंशीधर शर्मा), दियना के अंजोर (शिवशंकर शुक्ला), चंदा अमरित बगराईस (लखनलाल गुप्त), कुल के मरजाद (केयूर भूषण), छेरछेरा (कृष्णकुमार शर्मा), प्रस्थान (परदेशीराम वर्मा), को प्रस्तुत कर सकते हैं, जो उपन्यास कृतियाँ हैं। खूबचंद बघेल, टिकेन्द्र टिकरिहा, रामगोपाल कश्यप, नरेन्द्रदेव वर्मा, विश्वेन्द्र ठाकुर सुकलाल पांडेय, कपिलनाथ कश्यप, नन्दकिशोर तिवारी के नाटक, शायमलाल चतुर्वेदी, नारायणलाल परमार, डॉ. पालेश्वर शर्मा,श्री राम कुमार वर्मा, परदेशीराम वर्मा, डॉ. सुरेश तिवारी, उर्मिला शुक्ल छत्तीसगढ़ की महिला कहानीकारों में बहु चर्चित नाम डॉ. बिहारी लाल साहू की कहानियों, जी.एस. रामपल्लीवार, परमानंद वर्मा, जयप्रकाश मानस, सुशील यदु एवं राजेन्द्र सोनी के गद्य व्यंग्यों को भी इसीशृंखला में रखा जा सकता है।

जयप्रकाश मानस द्वारा लिखित कलादास के कलाकारी को प्रसिद्ध विद्वान स्व. हरि ठाकुर ने छत्तीसगढी भाषा का प्रथम व्यंग्य संग्रह माना है। स्व. रवीन्द्र कंचन की छत्तीसगढ़ी रचनाएँ देश की विभिन्न पत्रिकाओं में साग्रह छापी जाती

रही हैं। यह छत्तीसगढ़ी की संप्रेषणीयता एवं प्रभाव का ही प्रतीक है। समरथ गंवइहा, रामलाल निषाद, जीवन यदु, गौरव रेणु नाविक, डॉ. पी.सी. लाल यादव, नारायण बरेठ, राम प्रसाद कोसरिया, हफीज कुरैशी, ठाकुर जीवन सिंह, शिवकुमार यदु, एमन दास मानिकपुरी, चेतन भारती, पंचराम सोनी, शत्रुहनसिंह राजपूत, मिथलेश चौहान, रमेश विश्वहार, परमेश्वर वैष्णव, डॉ. सुरेश तिवारी, देवधर महंत, डॉ. सीताराम साहू, डुमनलाल ध्रुव, पुनुराम साहू, भरतलाल नायक, राजेश तिवारी, रुपेश तिवारी, तीरथराम गढ़ेवाल, राजेश चौहान आदि छत्तीसगढ़ी के समर्थ रचनाकार हैं। यहाँ प्रदीप कुमार दाश 'दीपक' जी के छत्तीसगढ़ी का प्रथम हाइकु संग्रह ('मइनसे के पीरा'-2000) तथा डॉ. राजेन्द्र सोनी के बहुआयामी लेखन का जिक्र करना उचित होगा, जिन्हें छत्तीसगढ़ी में प्रथम लघुकथा संग्रह (खोरबहरा तोला गांधी बनाबो), प्रथम क्षणिका संग्रह (दूब्बर ला दू असाढ़), हाइकू संग्रह (चोर ले जादा मोटरा उतिअइल 2001) रचने का गौरव प्राप्त है।

बोली में मधुरता

छत्तीसगढ़ी बोली बहुत ही मधुर है। इस बोली में एक अपनापन है, जो साफ महसूस कर सकते हैं। हिन्दी जानने वालों को छत्तीसगढ़ी बोली समझने में तकलीफ नहीं होती- 'उसने कहा' को छत्तीसगढ़ी में कहते हैं 'कहीस', 'मेरा' को कहते हैं 'मोर', 'हमारा' को 'हमार', 'तुम्हारा' को 'तोर' और बहुवचन में 'तुम्हारष। छत्तीसगढ़ी में केवल लोक साहित्य है। उड़िया तथा मराठी को सीमा पर की छत्तीसगढ़ी में 'ऋ' का उच्चारण 'रु' किया जाता है। कुछ शब्दों में महाप्राणीकरण, अघोषीकरण, स का छ का स आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

15

गढ़वाली भाषा

गढ़वलि भारत के उत्तराखण्ड राज्य में बोली जाने वाली एक प्रमुख भाषा है। जो की विलुप्ती की कगार पे है, क्योंकि लोग बड़ी मात्र में पलायन कर रहे है इसका बड़ा कारण है रोजगार और बुनियादी जरूरते। लोग शहरो में रह रहे है।अगर आप किसी भी पहाड़ी गांव में जायेगे तो वहां पर ज्यादा मात्र में वृद्ध लोग ही मिलेंगे। हम मानते है कि बुनयादी जरूरतों के लिए पलायन करना पड़ रहा है परंतु लोगो को ये भी समझना होगा कि आने वाली पीढ़ी को हम अपनी संस्कृति और भाषा से वंचित रख रहे है। हालांकि अगर पहाड की राजधानी गैरसैण को बनाया जाये तो यहां के निवासियों को बाहर जाने की जरूरत नहीं होगी। तब जब राजधानी पहाड में बनेगी तब रोजगार के बहुत से माध्यम उपलब्ध होंगे। एवं पलायन में भी कमी आयेगी।

जब पहाड का बहुआयामी विकास होगा तो यहां से शहर गये हुए पहाडी लोग भी यहां वापस आने लगेंगे। एवं फिर से अपनी गढवाली भाषा की संस्कृति को अपने आने वाली पीढी को सुपुर्द कर पायेंगे।

गढ़वाली की बोलियाँ

1. गढ़वळि भाषा के अंतर्गत कई बोलियाँ प्रचलित हैं यह गढ़वाल के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में भिन्न भिन्न पाई जाती है।

2. जौनसारी, जौनसार बावर तथा आसपास के क्षेत्रों के निवासियों द्वारा बोली जाती है।
3. मार्छी, मर्छा (एक पहाड़ी जाति) लोगों द्वारा बोली जाती है।
4. जधी, उत्तरकाशी के आसपास के क्षेत्रों में बोली जाती है।
5. सलाणी, टिहरी के आसपास के क्षेत्रों में बोली जाती है।
6. श्रीनगरिया, गढ़वळि का परिनिष्ठित रूप है।
7. राठी, पौड़ी क्षेत्र के राठ क्षेत्र में बोली जाती है।
8. चौंदकोटी, पौड़ी में बोली जाती है।

गढ़वाली भाषा का इतिहास

गढ़वाली भारत के उत्तराखण्ड राज्य में बोली जाने वाली एक प्रमुख भाषा है। गढ़वाली बोली का क्षेत्र प्रधान रूप से गढ़वाल में होने के कारण यह नाम पड़ा है। पहले इस क्षेत्र के नाम केदारखंड, उत्तराखंड आदि थे। यहाँ बहुत से गढ़ों के कारण, मध्ययुग में लोग इसे 'गढ़वाल' कहने लगे। ग्रियर्सन के भाषा- सर्वेक्षण के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या 6,70,824 के लगभग थी। यह गढ़वाल तथा उसके आसपास टेहरी, अल्मोड़ा, देहरादून उत्तरी भाग, सहारनपुर उत्तरी भाग), बिजनौर उत्तरी भाग तथा मुरादाबाद उत्तरी भाग आदि के कुछ भागों में बोली जाती है। गढ़वाली की बहुत–सी उपबोलियाँ विकसित हो गई हैं, प्रमुख श्रीनगरिया, राठी, लोहब्या, बधानी, दसौलया, माँज- कुमैया, नागपुरिया, सलानी तथा टेहरी हैं। 'श्रीनगरिया' 'गढ़वाली' का परिनिष्ठित रूप है। गढ़वाली में साहित्य प्रायरू नहीं के बराबर है, किंतु लोक- साहित्य प्रचुर मात्र में है। इसके लिए नागरी लिपि का प्रयोग होता है।

वर्तमान गढ़वाल में बाहरी लोगों के बस जाने के कारण विभिन्न धर्म एवं जाति के लोग रहते हैं। व्यापक रुप में इन्हें निम्नवत् वर्गीकृत किया जा सकता है-

1. कोल या कोल्ता या डोम– कोल या कोल्ता को द्रविड़ उत्पत्ति का माना जा सकता है। कोल या कोल्ता लोगों का रंग काला होता है, ये पहले गढ़वाल के जंगलों में रहते थे और वहीं शिकार एवं भोजन की तलाश करते थे। वर्तमान में ये जंगलों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर खेती करने लगे हैं और वहीं बस गये हैं। ये दानव, भूत-पिशाच, नाग और नरसिंह की पूजा करते हैं।

ये लोग अनुसूचित जाति के अंतर्गत आते हैं। परंपरागत रुप से मोची, बढ़ई, झाड़ू मारने वाला, बुनकर, लुहार आदि का काम करते हैं। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद सरकारी सेवा और राजनीति सहित विभिन्न व्यवसायों एवं कार्यों में प्रतिनिधित्व का अच्छा खासा अवसर इन्हें मिला है।

2. राजपूत– गढ़वाल के राजपूतों को आर्य उत्पत्ति का माना जाता है। ऐसा कहा जाता है कि ये लोग या तो दक्षिण या हिमाचल प्रदेश से सटे भागों से आए, जहां ये लोग कश्मीर के रास्ते हिन्दूकुश से आए। गढ़वाल में बसने वाले राजपूत मुसलमानोंमुगलों के आक्रमण से बचने के लिए राजस्थान से भागकर भी आए हैं। ये लोग उस समय गढ़वाल में रहने वाले कोल, कोल्ता और डॉम से युद्ध कर उन्हें परास्त किया। शुरु में राजपूतों ने नए तकनीक से कृषि की शुरुआत की। बाद में इन लोगों ने अलग पेशा अपनाया। इन लोगों नें कई राजाओं के सेना में भारी संख्या में प्रवेश लिया।

वर्तमान में राजपूत प्राय: व्यवसायों एवं कार्यों में देखा जा सकता है जैसे– कृषि, व्यवसाय, सरकारी सेवा आदि। कई गढ़वाली राजपूत भारतीय सशस्त्र बल खासकर सेना में भर्ती हैं।

3. ब्राह्मण– ऐसा माना जाता है कि यहां रहने वाले ब्राह्मण पहले पुजारी थे जो मैदानी भाग से आए थे या गढ़वाल के धार्मिक स्थानों को देखने आए थे।

भारत के मैदानी भागों में शासन कर रहे मुस्लिम आक्रमणकारियों से बचने के लिए राजपूत और ब्राह्मण दोनों गढ़वाल की घाटियों में घुस गए। उन लोगों ने गांव एवं कॉलोनी की स्थापना की और उनका नाम उसी स्थान के आधार पर रखा जहां से वो लोग आए थे। कुछ उदाहरण निम्नांकित है–

(अ) अजमेरपट्टी और उदयपुर पट्टी,एवं

(आ) तेलंगाना के आधार पर तेलंगी,

अन्य स्थितियों में, लोगों ने अपना कुलनाम वही रखा या अपना नाम भी उस स्थान के अनुसार रखा जहां से वो लोग आए थे। कुछ उदाहरण हैं–

अ) मैसूर (कर्नाटक) के आधार पर कर्नाटक और तेलंग एवं

आ) राजस्थान एवं महाराष्ट्र के रावत और जोशी

4. जनजाति– गढ़वाल की जनजातियाँ ऊपरी भागों में रहती हैं जैसे–उत्तरी प्रदेश। उनमें से कुछ की उत्पत्ति मंगोलिया से है, जो खानाबदोश या अर्द्ध–खानाबदोश की तरह जीवन जीते हैं। यद्यपि आजकल इन लोगों ने स्थिर जीवन जीना शुरु

कर दिया है और पशुपालन, कृषि, व्यापार एवं अन्य व्यवसायों से जुड़ गया है। गढ़वाल के प्रमुख जनजातियों के नाम निम्नवत् हैं–

(अ) जौन्सर-बावर का जौन्सरी

(आ) उत्तरकाशी के जाढ़,

(इ) चमोली के मारचस,

(ई) वन गुजरभोटिया,

भोटिया व्यवसायी एवं पर्वतीय होते हैं। उत्तरांचल के भोटिया के बारे में कहा जाता है कि उनकी उत्पत्ति राजपूत से है, जो कुमाऊं एवं गढवाल से आए और ऊंची घाटियों में बस गए। भोटिया तिब्बत सीमा पर पूरब में नेपाल से पश्चिम में उत्तरकाशी तक है।

जो बद्रीनाथ के निकट मानापास और नितिपास के निकट रहते हैं उसे क्रमशः टोलचास और मरचास कहते हैं। उंटाधूरा के पास जोहरी और सौकस रहते हैं। जौहर के दक्षिण में भोटिया या जेठोरा भोटिया हैं, जो खेतिहर हैं। भोटिया नंदा देवी, पंचा चुली आदि के शिखर की पूजा करता है और जिनका झुकाव हिन्दूत्व की ओर है, वो गबला (मौसम का देवता), रुनिया और सुनिया देवता (जो पशुओं को बीमारियों से बचाते हैं) और सिधुआ तथा बिधुआ देवता (जो खोये हुए पशुओं को ढूँढने में मदद करता है) की पूजा करते हैं।

जाढ़

जाढ़ एक जनजातीय समुदाय है, जो उत्तरकाशी जनपद के ठंढे सूखे स्थानों पर रहते हैं। नेलंग एवं जढंग–दोनों गांव लगभग 3400 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। जाड़े के दिनों में पूरा समुदाय इस ऊंचे जगह से चले जाते हैं। कुछ परिवार यहीं वापस बस जाते हैं, जिन्हें डुंडा कहते हैं जबकि बांकी ऋषिकेश के जंगलों के आस-पास चले जाते हैं।

पास सटे हिमाचल प्रदेश एवं उत्तरकाशी के अन्य भागों में बसे लोगों के साथ इस समुदाय के लोगों का बहुत ही अच्छा सामाजिक और आर्थिक संबंध होता है। इस जाति के प्रायः लोग अपने को उच्च जाति के मानते हैं और बुनने का काम कोल पर छोड़ते हैं, जिन्हें नीचे जाति का समझा जाता है।

जाढ मंगोल निवासी के लक्षण होते हैं और तिब्बती भाषा बोलते हैं। वो गढवाली और पौरी भी बोलते है।

जौन्सारी

देहरादून के आधा उत्तरी भाग को बावर कहते हैं और वहां रहने वाले लोगों को जौंसारी कहते हैं। वो अपने आप को आर्य का शुद्ध वंशज मानते हैं। इस क्षेत्र का संबंध काफी पुराने संस्कृति से है, जो उत्तरी भारत में फैला था खासकर भारतीय इतिहास के वेदिक, महायान, कुषाण और गुप्त काल में।

ये लोग कुछ अलग रीति रिवाज को आज भी मानते हैं, जो किसी भी पड़ोसी (गढ़वाल, कुमाऊं, हिमाचल प्रदेश) से अलग है। यहां तक की इनकी वास्तुकला भी अद्वितीय है, जिसमें लकडियों का इस्तेमाल बड़े ही आकर्षक रुप में होता है।

जौन्सारी का सबसे प्रमुख उत्सव माघ मेला है। उत्सव के दौरान ये लोग ठल्का या लोहिया पहनते हैं, जो एक लंबा कोट होता है। ठंगल चुस्त पायजामे की तरह होता है। दिगवा या टोपी एक पारंपरिक पोशाक है, जो सिर पर पहना जाता है, यह ऊन का बना होता है। महिलाएँ घागरा, कुरती और धोत पहनती है साथ ही ढेर सारे आभूषण भी पहनती है।

जौन्सारी अब भी बहुपति रिवाज अपनाती है, जो महाभारत काल में पांडवों ने किया था जिनके पास एक साझा पत्नी थी द्रौपदी।

वन गुजर

यह खानाबदोश मुस्लिम की एक जनजाति है, इनके बारे में कहा जाता है कि ये लोग सिरमौर की राजकुमारी के दहेज के साथ गढ़वाल आए। ये जनजाति कश्मीर से हिमालय तक, हिमाचल प्रदेश से गढ़वाल तक फैले हैं। वे अभी भी कई उन सांस्कृतिक रश्मों को मानते हैं, जो इस्लाम धर्म अपनाने से पहले मानते थे। ये शुद्ध शाकाहारी होते हैं, मुख्यतः अनाजों के साथ दूध के उत्पादों का इस्तेमाल करते हैं।

ये एक जगह से दुसरे जगह घूमने वाले होते हैं। ये गर्मियों में अपनी भैंस एवं गाय के झुंडों के साथ ऊंची पहाड़ों के चारागाह पर चले जाते हैं और जाड़े में नीचे के जंगलों में वापस चले आते हैं। तीर्थयात्रा वाले मौसम में खपत होने वाले दूध का बहुत हिस्सा इन्हीं लोगों द्वारा दिया जाता है। ये लोग जंगली विद्या में निपुण होते हैं।

बोली पर अन्य भाषाओं का प्रभाव

गढवाली भाषा इंडो आर्यन भाषा वर्ग के अंतर्गत आता है जबकि उत्तरी भाग में रहने वाला भूटिया तिब्बत-बर्मा वाली भाषा बोलता है, जो अन्य गढ़वाली और तिब्बतन बोली के लिए सुबोध नहीं है। गढ़वाली की निकटतम भाषा कुमाउनी या कुमाउनी से सटे पूर्वी पहाड़ी केन्द्रीय उपसमूह है जिसका विस्तार हिमाचल प्रदेश से नेपाल तक है। उत्तरांचल के विभिन्न स्थानों पर कुमाउनी की तरह गढ़वाली में भी कई क्षेत्रीय बोलियां शामिल है। गढ़वाली भाषा के लिए देवनागरी लिपि का इस्तेमाल होता है। गढ़वाली के अन्तर्गत कई बोलियां है, जो मुख्य भाषा से भिन्न हैकृ जौन्सार-बाबर और क्षेत्रीय निवासियों की जौन्सारी भाषा–मारचस का मारची या भोटिया बोली–उत्तरकाशी के भागों में जाढ़ी–टेहरी के भागों में सैलानी। गढ़वाली भाषा पर अन्य कई भाषाओं का प्रभाव है।

गढवाल के दक्षिणी भाग में तिब्बत और चीन का भोटिया बोली, संस्कृत या हिन्दी या अन्य हिन्दुस्तानी भाषा बोली जाती है।

गढवाल के पूर्वी भाग में कुमाउनी और नेपाली भाषा बोली जाती है।

हिमाचल प्रदेश से सटे भागों में पश्चिमी पहाड़ी भाषा बोली जाती है।

गढ़वाली भाषा पर इन सभी भाषा एवं बोलियों का प्रभाव देखा जाता है क्योंकि विभिन्न भाषा भाषी के लोग जो एक सीमा से दुसरे सीमा में आवाजाही करते हैं, यहां बस गए हैं। दुसरी तरफ गढ़वाल के निवासी भी उन दुसरे क्षेत्रों में जाते हैं, जो वहां की भाषा से प्रभावित हो गए हैं और धीरे-धीरे आपस में हिलमिल गए है।

गढ़वाली की उत्पत्ति

ऐसा माना जाता है कि गढ़वाली की उत्पत्ति निम्नलिखित श्रोतों से हुई है–

(अ) सौरसेनी प्राकृत, जो राजस्थानी और बृजभाषा का उद्गम श्रोत भी माना जाता है।

(आ) पश्चिमी या केन्द्रीय पहाड़ी भाषा।

(इ) संस्कृत या इसका बदला स्वरुप।

ऐतिहासिक वर्णन

गढ़वाल का ऐतिहासिक रिकॉर्ड 6बीं शताब्दी से उपलब्ध है। कुछ पुराने रिकॉर्ड भी हैं जैसे गोपेश्वर में त्रिशूल, पांडुकेश्वर में ललितसुर। सिरोली में

नरवामन लिपि, राजा कंकपाल गढ़वाल के इतिहास और संस्कृति को प्रमाणिक बनाते हैं। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि यह भूमि आर्यों की जन्मभूमि है। ऐसा कहा जाता है कि लगभग 300 ई.पू. खासा कश्मीर, नेपाल और कुमाऊं के रास्ते गढ़वाल पर आक्रमण किया। अपनी सुरक्षा के लिए छोटे-छोटे किला बनाकर रहते थे जिसे गढ़ी कहा जाता था। बाद में खासा स्थानीय शासकों को हराकर किलों पर अपना आधिपत्य जमा लिया।

खासा के बाद, क्षत्रियों ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया और खासा को परास्त कर अपना साम्राज्य स्थापित किया। फिर सैकड़ों किलों को संगठित कर बावन गढ़ी का की स्थापना की। क्षत्रिय के सेनापति कंटुरा वासुदेव ने गढ़वाल के उत्तरी सीमा पर अपना साम्राज्य स्थापित किया और जोशीमठ में राजधानी की स्थापना की। इस तरह गढ़वाल में कत्युरा राजवंश की नींव पड़ी। उनका साम्राज्य गढ़वाल में वर्षों तक चला। कत्युरी राजवंश के काल में आदि गुरु शंकराचार्य गढ़वाल का भ्रमण किया और जोशीमठ की स्थापना की जो शंकराचार्य द्वारा स्थापित चार प्रमुख पीठों में से एक है। अन्य तीन पीठ द्वारिका, पूरी और श्रृंगरी में स्थापित हैं। उन्होने भगवान बदरीनाथ की प्रतिमा बदरीनाथ में पुनः स्थापित किया। एक कथानक के अनुसार बदरीनाथ की यह प्रतिमा नारद कुंड में छिपा हुआ था। पं. हरिकृष्ण के अनुसार रातुरी राजा भानुप्रताप गढ़वाल में पंवार राजवंश का प्रथम शासक था जिन्होंने चानपुर-गढ़ी को अपनी राजधानी के रुप में स्थापित किया। गढ़वाल के बावन गढ़ों में यह सबसे शक्तिशाली गढ़ था।

8 सितंबर 1803 के दिन आया विनाशकारी भूकंप ने गढ़वाल राज्य के आर्थिक और प्रशासनिक ढ़ाँचा को कमजोर कर दिया। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर अमर सिंह थोपा और हैस्टीडल चंतुरिया के नेतृत्व में गोरखा ने गढ़वाल पर आक्रमण कर दिया। फिर उन लोगों ने आधा गढ़वाल पर अपना आधिपत्य जमा लिया। 1804 से 1815 तक यह क्षेत्र गोरखा शासन के अधीन रहा।

पुल्लिंग और वचन

पुल्लिंग एकवचन प्रायः उकारांत होता है और बहुवचन प्रायः ऽऽकारांत होता है। (ऽ प्रायः अ की तरह उच्चारित होता है और ऽऽ अ का दीर्घ उच्चारण है न कि आ। गढ़वाली में अ का दीर्घ उच्चारण और आ दोनोँ भिन्न हैँ।) जैसे डालु (पेड़)-डाल।

16

खोरठा एवं पंचपरगनिया भाषा

खोरठा एक भाषा है, जो भारत के झारखण्ड प्रदेश के कुछ भागों और बांग्लादेश के कुछ भागों में बोली जाती है। खोरठा भाषा झारखंड के दो प्रमंडलों (उत्तरी छोटानागपुर और संथाल परगना) के अधिकांश की मातृभाषा होने के साथ-साथ झारखंड के चौबीस जिलों में से पंद्रह जिलों की पूणत: या अंशत: संपर्क भाषा है। झारखंडी भाषाओं में से खोरठा ऐसी भाषा है, जो समुद्र (फरक्का के पास) और दामोदर नदी से संबंध रखती है। साथ ही यही ऐसी अकेली झारखंडी भाषा है जिसका भाषा क्षेत्र विदेश (बंगला देश) से संबद्ध है।

जहाँ तक खोरठा भाषी जन समूह का प्रश्न है, तो खोरठा भाषा झारखंड के दो प्रमंडलों (उत्तरी छोटानागपूर और संथाल परगना) के अधिकांश की मातृभाषा होने के साथ-साथ झारखंड के चौबीस जिलों में से पंद्रह जिलों की पूणत: या अंशत: संपर्क भाषा है। अन्यत: इस खोरठा भाषी जनसंख्या को समझने के लिए हम जे.पी.एस.सी. (झारखंड लोक सेवा आयोग) के परीक्षार्थियों की संख्या से ज्ञात कर सकते हैं कि झारखंड के सबसे बड़े क्षेत्र की भाषा खोरठा भाषा है। तभी तो जे.पी.एस.सी. में नौ झारखंडी भाषाओं के कुल परीक्षार्थियों में से सिर्फ खोरठा परिक्षार्थी ही लगभग पैंतालीस प्रतिशत थे और बाकी आठों भाषाओं के परीक्षार्थी कुल पचपन प्रतिशत थे।

खोरठा के आदि कवि और भाषा का झारखण्ड में द्वितीय राजभाषा का दरजा है।

खोरठा के आदि कवि श्रीनिवास पानुरी की 92वीं जयंती 2012 में पर मंदाकिनी उच्च विद्यालय बड़ा जमुआ के मैदान में श्रद्धांजलि समारोह सह कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि भू-राजस्व मंत्री मथुरा प्रसाद महतो ने कहा कि खोरठा भाषा को द्वितीय राजभाषा का दरजा तो दिया गया, लेकिन इसको धरातल पर पहुंचाने के लिए बाल वर्ग से पठन-पाठन की जरूरत है।

खोरठा भाषा में तीनों कालों के सभी भेदों में किसी एक ही क्रिया प्रायः आठ सौ रूप होते हैं। जो प्रायः अद्वितिय है।

खोरठा भाषा कर्मि डॉ. ए. के. झा ने सर्वप्रथम झारखंडी भाषाओं की आंतरिक एकता की खोज की ओर 'खोरठा सहित सदानी बेयाकरण' लिखा।

पंचपरगनिया भाषा

'पंचपरगनिया' भाषा झारखण्ड प्रदेश की एक मुख्य भाषा है। इस भाषा को इस प्रांत में द्वितीय राजभाषा के रूप में राज्य सरकार द्वारा सूचीबद्ध किया गया है। यह भाषा मुख्यतः छोटानागपुर के पठारी क्षेत्र में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा है और यहाँ इसका विशेष महत्त्व है। पंचपरगनिया भाषा, पाँचपरगना (दो शब्द 'पाँच' और 'परगना' शब्द से निर्मित है) क्षेत्र- सिल्ली, बुण्डू, बारेन्दा, राहे, तमाड़ आदि परगनों के लिए रीढ़ है। पाँचपरगना क्षेत्र वर्तमान समय के प्रशासनिक इकाई के रूप में अनगड़ा, सिल्ली, सोनाहातु, राहे, बुण्डू, तमाड़ तथा अड़की प्रखण्डों तक इसका व्यापक फैलाव है। इसी संबंध में भोजपुरी भाषा-साहित्य के लेखक डॉ. उदय नारायण तिवारी ने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है कि 'राँची की पूर्वी क्षेत्र सिल्ली, सोनाहातु, बुण्डू, तमाड़ एवं राहे को पाँचपरगना कहते हैं।' यहाँ बसने वाले सभी समुदायों (आदिवासियों और मूलवासियों) के लिए यह भाषा आम बोलचाल, व्यापार, शिक्षा, संपर्क और संचार का सबसे उपयोगी माध्यम है। इसके साथ ही यह एक अंतर-प्रांतीय भाषा भी है।

पंचपरगनिया, भारोपीय कुल की भाषा है और भारतीय आर्य भाषाओं से इसका सीधा संबंध है। भारत में जिस समय आर्यो का आगमन हुआ, उस समय संस्कृत भाषा का उद्‌भव हो चुका था। संस्कृत का प्राचीनतम रूप हमें वेदों में मिलता है, जो उस समय के जन-भाषा के रूप में व्यवहृत थी। समय के अंतराल में ज्यों-ज्यों संस्कृत भाषा अलंकृत और समृद्ध होती गयी, धीरे-धीरे यह भाषा जनजीवन से उसका संबंध दूर होता चला गया। एक समय ऐसा आया कि संस्कृत

भाषा आमलोगों के लिए कठिन हो गई, क्योंकि संस्कृत की साहित्यिक भाषा के विकास के साथ मूल भाषा का भी विकास हुआ, जो आर्यो की भाषा थी। ऐसा संभव है कि आमजनों की भाषा, द्रविड़ भाषा के बहुत से शब्द आकर समाहित हो गए होंगे। जब साहित्यिक भाषा और जन-भाषा का स्वरूप नितांत भिन्न हो गया तो स्वाभाविक है उनके अलग-अलग नामकरण भी हो गए। महात्मा गौतम बुद्ध के समय संस्कृत साहित्य की भाषा थी और जनता की भाषा को 'पाली' कहा जाता था। इसी भाषा का परिवर्तित रूप 'प्राकृत' कहलाने लगा। सम्राट अशोक के काल में अनेक धर्म-लिपियाँ 'प्राकृत' भाषा में उपलब्ध हैं। महावीर स्वामी तथा गौतम बुद्ध ने भी अपने धर्म-उपदेशों के लिए 'प्राकृत भाषा का सहारा लिया, वस्तुतः 'प्राकृत' जनभाषा थी, फलस्वरूप इसका साहित्य और अधिक लोकप्रिय हुआ।

पंचपरगनिया भाषाविद् प्रो. परमानंद महतो ने अपनी पुस्तक 'पंचपरगनिया भाषा', प्रकाशक- जनजातीय भाषा अकादमी बिहार सरकार, राँची, वर्ष-1990 के पृष्ठ सं. 10-12 तक में लिखा है 'प्राकृत' भाषा में स्वतंत्र रूप से काव्य और धार्मिक ग्रंथों की रचनाएँ हुई, किन्तु साहित्यिकता से बोझिल होते ही इसका संबंध भी आमजनों से छूटता गया। अधिकांश विद्वानों की प्राकृत भाषा लेखनीय और व्यवहारिक रूप में अशुद्ध प्रतीत होती थी। अतः विद्वानों ने उसे 'अपभ्रंश भाषा' की संज्ञा दी जो बाद में प्राकृत से भी अधिक लोकप्रिय हुई। अपभ्रंश में भी व्याकरण की नियमबद्धता और कृत्रिमता तथा साहित्य की अलंकृति आ गई, जिससे वह भी निष्प्राण हो गई। प्राकृत भाषा की तरह अपभ्रंश के भी दो भेद हो गये-1. परिनिष्ठित अपभ्रंश और 2. अशुद्ध अपभ्रंश। पहले समूह के परिनिष्ठित अपभ्रंश विद्वानों की भाषा थी और अशुद्ध अपभ्रंश लोक-भाषा थी।

अपभ्रंश भाषा-साहित्य में भाषागत भेद बहुत कम मिलते हैं, क्योंकि समस्त अपभ्रंश साहित्य एक परिनिष्ठित भाषा में है। विशेषकर उत्तर कालीन व्याकरणों ने अपभ्रंश के देश-भेद के आधार पर अनेक भेद बताए हैं। डॉ. तगारे ने अपने 'हिस्टोरिकल ग्रामर ऑफ अपभ्रंश' में अपभ्रंश के तीन भेद बताए हैं-1. दक्षिणी 2. पश्चिमी तथा 3. पूर्वी। वस्तुतः भारतीय आर्य भाषा की पूर्ववत्ती परंपरा के अनुसार अपभ्रंश के भी केवल दो क्षेत्रीय भेद थे- 1. पश्चिमी और 2. पूर्वी। जिनमें पश्चिमी अपभ्रंश परिनिष्ठित थी तथा पूर्वी अपभ्रंश उसकी विभाषा मात्र थी। अपभ्रंश के इससे अधिक भेदों की सही शर्त नहीं मानी जा सकती है।

पूर्वी अथवा मागधी अपभ्रंश अशुद्ध थी। व्याकरणिक जटिलता इसमें क्रमशः कम हो गई और लोकप्रिय भाषा बनी। इसी मागधी अपभ्रंश से मगही, भोजपुरी, मैथली, बंगला, असमिया, ओड़िया, गुजराती तथा मराठी आर्य भाषाओं का विकास हुआ। इनमें से मगही, मैथली तथा भोजपुरी को डॉ. ग्रियर्सन ने 'बिहारी' नाम दिया। मागधी अपभ्रंश से प्रसूत बिहारी परिवार की अन्य भाषाओं की तरह पंचपरगनिया भी मागधी अपभ्रंश से विकसित एक भाषा है, जो अब तक मगही, भोजपुरी और नागपुरी की विभाषा मानी जाती थी। विद्वानों ने एक अन्य भाषा समुदाय अर्द्ध-मागधी प्राकृत भी माना है, जिसमें वे अवधी, भोजपुरी इत्यादि बोलियों को स्थान देते हैं तथा पूर्वी हिन्दी के नाम से पुकारते हैं। नागपुरी, सदानी भाषा भी इसी पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत आती हैं। पंचपरगनिया का विकास भी इन्हीं भाषाओं के साथ-साथ ही हुआ है। वर्तमान में यह एक स्वतंत्र भाषा के रूप में पहचान बना चुकी है और अपने अस्तित्त्व लिए भाषा-साहित्य के विकास के पथ पर दिन-प्रतिदिन अग्रसर है।

भाषाविद् प्रो. परमानंद महतो ने 'पंचपरगनिया भाषा' नामक इसी पुस्तक के पृष्ठ सं.- 13-16 में लिखा है- साहित्य में कहीं अपभ्रंश का काल सन् 600 से 900 ई. तक माना गया है और इसी काल अवधि को अन्य विद्वानों ने सन् 600 से 1200 ई. तक का समय माना है। प्राकृत और अपभ्रंश जो लोकप्रिय बोली थी, गुजरों और आमीरों समुदायों से बहुत प्रभावित हुई।

एक महत्त्वपूर्ण प्राकृत-गुर्जरी, जिससे आधुनिक गुजराती भाषा का जन्म हुआ यह गुजरों की देन है और आमारी (अहीरी) अथवा आभीर (अहीर) आदि समुदायों से प्रभावित होकर ऊपजी है। छठी सदी के महान भाषाविद् और सौन्दर्यशास्त्री 'दंडी' ने अपभ्रंश प्रकृति को आमीरों (अहीरों) की भाषा के प्रभाव से उत्पन्न पद्य शैली के रूप में परिभाषित किया है। पंचपरगनिया वैय्याकरणी डॉ. करम चन्द्र अहीर की पुस्तक 'पंचपरगनिया निबंध-संग्रह', प्रकाशक- डॉ. करम चन्द्र अहीर, वर्ष- दिसम्बर 2011 के अनुसार 'पंचपरगनिया भाषा का मूल स्रोत 'आभीरी अपभ्रंश' से है और अहीर जातियों का समूह मध्यप्रदेश के 'अहीरवाड़ा' क्षेत्र से पलायन कर झारखंड के पाँचपरगना क्षेत्र में आकर बसे।'

विद्वान 'भंडारकर' का विचार है कि भारत में ईसा मसीह की कथाएँ आभीरों ने ही फैलायी और उसका समावेश कृष्ण गाथाओं में भी कर दिया गया। इनकी जातीय बोली अहीरी थी, जो पाँचपरगना क्षेत्र में आगे चलकर 'खेरवारी'

और 'पंचपरगनिया' कहलायी। यह जाति पाँचपरगना क्षेत्र में अन्य जातियों से पहले यहाँ आई। इस जाति की भाषा में पंचपरगनिया लोकगीत अधिकांश मौखिक और अल्प रूप में संकलित कहीं-कहीं मिलते हैं। यहाँ के सोहराई गीतों के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि ये गीत अहीर जातियों की ही उपज है, जिनका रचनाकाल भी संभवत: 8वीं या 9वीं सदी की होगी। 15वीं सदी से यहाँ के शिष्ट गीतों में पंचपरगनिया भाषा के आधुनिक रूप का प्रमाण मिलना प्रारंभ होता है।

पंचपरगनिया, नागपुरी भाषा की सगी बहन है, ऐसा पूर्व के विद्वानों द्वारा कहा गया है, किंतु इस कथन के सत्यता सिद्ध करने के लिए इसके पूर्वकालीन साहित्य भी उपलब्ध नहीं है। पंचपरगनिया भाषा ने कब अपने आधुनिक रूप को प्राप्त किया, सही-सही नहीं कहा जा सकता है। इतना जरूर कहा जा सकता है कि संभवत: बंगला, ओड़िया, मगही, भोजपुरी, मैथली, नागपुरी आदि भाषाओं के साथ ही पंचपरगनिया भाषा का उद्‌भव और विकास हुआ है, चूँकि सांस्कृतिक और लौकिक धरोहर को सुरक्षित रखने में उपर्युक्त आधुनिक भारतीय भाषाओं की तरह पंचपरगनिया भाषा की निजी मौलिकता है।

पाँचपरगना में अहीर जातियों के आगमन (8वीं 9वीं शताब्दी) के बाद पंचपरगनिया के बीज यहाँ पड़ गए होंगे और चौतन्य महाप्रभु (सन् 1485 ई.) के कृष्ण भक्ति प्रचार के परिणामस्वरूप ये फूले-फले होंगे और 14वीं, 15वीं शताब्दी तक वे सारी विशेषताएँ इसमें आ गई होंगी, जो आधुनिक पंचपरगनिया भाषा में विद्यमान हैं। इस प्रकार पाँचपरगना का अर्थ होता है वे सभी परगने जहाँ तक की संस्कृति, सामाजिक रीति-रिवाज, नैतिकता, पर्व-त्यौहार, नाच-गीत, ताल-लय आदि एक ही प्रकार की रहती है एवं इस भाषा को बोलने वाले और समझने वाले लोग निवास करते हैं।

इसी आधार पर पाँचपरगना का विस्तृत क्षेत्र होता है- अनगड़ा, नामकोम, सिल्ली, बन्ता-हजाम, बसंतपुर, बारेन्दा, सोनाहातु, राहे, बुण्डू, तमाड़, अड़की, चौका, ईचागढ़, झालदा, बाइगनकुदर, बाघमुण्डी, पातकुम, धालभूम, सरायकेला, खरसावाँ, कुचाई आदि परगने। संप्रति इसी प्रकार प्रशासनिक इकाई के रूप में पाँचपरगना क्षेत्र- तमाड़, अड़की, सोनाहातु, राहे, बुण्डू, सिल्ली, अनगड़ा, नामकोम, झालदा, पुरूलिया, बाईगनकुदर, बाघमुण्डी, ईचागढ़, चौका, चांडिल, गम्हरिया, कुचाई, सरायकेला, खरसावाँ, गोबिन्दपुर, पोटका, मुसाबनी, क्योंझर

इत्यादि प्रखण्डों में विस्तारित है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पाँचपरगना का पंचपरगनिया भाषा आधा राँची, आधा पुरूलिया सिंहभूम, पं. बंगाल और ओड़िसा के सीमावर्ती क्षेत्रों में फैला हुआ है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि पंचपरगनिया भाषा, पाँचपरगना क्षेत्र की सबसे अधिक प्रचलित भाषा है। लगभग 15 लाख (पंद्रह लाख) पंचपरगनिया भाषी लोग यहाँ निवास करते हैं। इस भाषा की प्राचीन साहित्यिक परंपरा भी है और इनके स्वतंत्र आधुनिक गद्य-पद्य साहित्य भंडार है। पंचपरगनिया भाषा क्षेत्र के सभी विद्यालयों और महाविद्यालयों जैसी शिक्षण संस्थानों में भी विद्यार्थी इसे शिक्षा का माध्यम बनाकर उच्चतर शिक्षा प्राप्त कर सरकारी गैर-सरकारी सेवाओं का लाभ ले रहे हैं।

यह भाषा पूरे पाँचपरगना क्षेत्र में आदिवासियों और मूलवासियों की मुख्य सम्पर्क भाषा है, जो समूहों को एक सूत्र में बाँध के रखती है। यह भाषा विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच अन्तर प्रांतीय संपर्क, व्यापार, विपणन का मूल साधन है। यह भाषा किसी विशेष धार्मिक परंपरा या आस्था से जुड़ी हुई नहीं है और सभी धर्मावलम्बी इसका प्रयोग करते हैं। यह भाषा व्याकरणिक विशिष्टताओं से भी यह एक स्वतंत्र भाषा है। इस भाषा को लिखने-पढ़ने के लिए डॉ. करम चन्द्र अहीर ने 'झाड़ लिपि' तैयार किया है और साथ ही इस भाषा का 'व्याकरण' और 'साहित्यिक इतिहास' भी लिखा है। वर्तमान समय में पंचपरगनिया में पठन-पाठन अथवा अध्ययन-अध्यापन मुख्यत: देवनागरी लिपि में ही किया जाता है।

❐❐❐